TIGHT BINDING BOOK

# TEXT FLY WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_182991
UNIVERSAL
LIBRARY

# चढ़ती धूप

[ मौलिक सामाजिक उपन्यास ]

अंचल

प्रकाशक

हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन्स, शाहगंज, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण ] १९४५ [ मूल्य ४।।)

प्रकाशक—
गयाप्रसाद तिवारी, बी० काम०,
अध्यक्ष हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन्स,
शाहगंज, इलाहाबाद।

मुद्रक—
गयाप्रसाद तिवारी, बी. काम
नारायण प्रेस, नारायण बिल्डिंग
शाहगंज, इलाहाबाद।

## पहले कुछ शब्द—

'चढ़ती धूप' मेरा पहला उपन्यास है जो देश की विचित्र राजनैतिक और सामाजिक स्थितियों के बीच बन्धुवर गयाप्रसाद तिवारी के उत्साह के कारण इतने अच्छे रूप में प्रकाशित हो रहा है। अब तक मैं कवितायें, कहानियाँ और आलोचनात्मक निबन्ध ही लिखता रहा हूँ। उपन्यास लिखने का यह मेरा सर्वप्रथम प्रयास है—मैं कह नहीं सकता इसमें कितनी सफलता मुझे मिली है। इतना सन्तोष मुझे अवश्य है कि मैं अपने चौदह-पन्द्रह वर्ष के साहित्यिक जीवन में जो सोच और समझ सका हूँ—साहित्य को मानव-समाज की क्रान्तिकारी आर्थिक और राजनैतिक उन्नति का सर्वश्रेष्ठ माध्यम और अस्त्र मानने का जो मेरा प्रगतिशील स्वप्न है उसके प्रति मैं अक्षर अक्षर और वाक्य वाक्य तक ईमानदार हूँ। मेरा बराबर यह विश्वास रहा है कि उपन्यास या समस्त कल्पनात्मक कला-सृजन उस बाह्य संसार का सजीव प्रतिबिम्ब है जिसमें कलाकार रहता और जीवन-संघर्ष करता है। यह प्रतिबिम्ब लेखक और बाह्य जन-जीवन के यथार्थों के अटूट पारस्परिक संपर्क के फलस्वरूप उसकी रचनात्मक चेतना पर पड़ता रहता है। पर कलाकार का काम केवल चित्रण और उद्देश्यहीन चित्रण नहीं है। कलाकार इस बाहरी दुनिया में—जनजीवन की प्रवहवान चिन्ताधारा और कर्मयोजना में जो देखता, सुनता और सहता है—समझता और बूझता है उसके वान्छनीय रूप के प्रति प्रेम और अवांछनीय रूप के प्रति घृणा का सन्देश भी सुनाता है। यह सन्देश होता है समाजी

विषमता और असंगतिय के प्रति विद्रोह का—वर्गगत और जातिगत शोषण के विरुद्ध नवनिर्माणात्मक प्रतिहिंसा का—इतिहास की नवयुग-प्रवर्तक शक्तियों के प्रकाश में एक अधिक कल्याणकारी 'सब के सुख' और समृद्धि की विराट भावना पर आधारित अर्थनीति और समाज-व्यवस्था के बली आग्रह का। मनुष्य का सामाजिक अस्तित्व उसकी चेतना को निर्धारित करता है और यह कहना कि मानव चेतना उसकी जीवनसत्ता को निरूपित करती है गलत है। मनुष्य बराबर इन प्रतिकूल, शोषक और दुखद भौतिक स्थितियों और उन्हें कायम रखनेवाली समाजी शक्तियों से संघर्ष करता आया है—इन विषम शक्तियों को बदलने की क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं के क्रम में वह स्वयं बदलता रहता है। पदार्थवादी यथार्थता के साथ आजीवन चलनेवाला उसका यह संघर्ष क्रान्तिकारी होता है—विप्लव-वृत्तियों और विद्रोह-शिखाओं पर जो आगे बढ़ता है क्योंकि कलाकार को वर्तमान समाजी यथार्थता को आमूल बदलकर स्थान पर उस आदर्शनिष्ठ यथार्थता को जन्म देना है जो परिवर्तनशील समाज और राजतन्त्र की नई-नई माँगें पूरी करे—सर्वहारा वर्ग के हितों के संरक्षण का भार वहन करे। इसके लिए आवश्यक है कि वैयक्तिक पूँजीवाद का अन्त हो और उसकी शक्तियों पर साहित्य और राजनीति दोनों में अधिक से अधिक पैनी, कठोर और आक्रमणात्मक चोट की जाय।

मेरे उपन्यास का घटनाकाल काँग्रेस के सन् १६३२ वाले आन्दोलन के बाद का और विभिन्न प्रान्तों में काँग्रेस मन्त्रिमंडल स्थापित होने के बीच का समय है—जब देश में जोरों के साथ समाजवादी चेतना का उदय हो रहा था और काँग्रेस के भीतर ही एक उग्र समाजवादी दल की स्थापना हो चुकी थी। देश में उस समय चारो ओर फैली निराशा और पराजय-भावना के बीच साम्यवाद की लाल ज्योति ही भारतीय बालकों और युवकों के गिरते मनों को थामे थी—उन्हें नई प्रेरणा और चेतना प्रदान कर रही

थी। मेरी कहानी का नायक निम्न मध्यवर्ग का एक तरुण किशोर है जिसकी उगती हुई बौद्धिक चेतना और पीढ़ियों से चले आ रहे जीवनव्यापी संस्कारों का पारस्परिक घात प्रतिघात और संघर्ष कहानी का ढाँचा है। हाड़-माँस का पुतला मानव जो सदैव अपनी चेतना और अहं का प्रसार चाहता है और अपनी इस व्यक्तिगत प्रसरणशीलता से अधिकाधिक चिपटता जाता है अपनी चढ़ती वय में उस प्रत्येक विचारधारा और कर्मयोजना को अपनाता है जो उसके और बाह्य जगत के संवेदनात्मक चेतनाधार को अधिकाधिक पुष्ट करती है उसकी प्राणमयी रागात्मक उत्तेजना को ऊपर उठाती है। आरम्भ से एक क्रान्तिकारी मानस-गठन को लेकर चलनेवाले तरुण भारतीय विद्यार्थी और उसके हर्ष-विषाद, भूख-प्यास, अश्रु-हास और प्रेम-घृणा का चित्रण ही मेरा लक्ष्य रहा है। एक ओर सदियों की पूँजीवादी विकृतियों में पले अपने जीवनव्यापी संस्कारों से उसकी मुक्त होने की छटपटाहट है दूसरी ओर एक सर्वथा नूतन जीवनदर्शन, समाजशक्ति और राजनीति को अपनाने की—आत्मसात करने की आकुल चेष्टा—इस चेष्टा में बुद्धि के प्रकाश और मन के स्वप्न के अनुरूप सफल न हो पाने की कुन्ठा, ग्लानि और वैफल्य की भाराक्रान्त अनुभूति। पर वर्गचेतना के अहसास और उसके फलस्वरूप समाज के श्रेणीवैषम्य को मिटाकर एक वर्गहीन समाज बनाने के अडिग सकल्प का तेज़ाब जो एक बार पी लेता है वह अपनी चारित्रिक अपूर्णता—विश्वासों अस्पष्टता और चरम क्रान्तिवादी परिणति के अभाव के बावजूद केवल विश्वास एक कभी न टूटनेवाले गहरे इस्पाती विश्वास के बल पर अपने मार्ग पर चलता जाता है। उसके सामने रहता है आत्म-बलिदान का ज्वलन्त आदर्श—सरफरोशी की शोलेभरी आग—अपने व्यक्तिगत सुख-सौख्य और प्रेम की सम्पूर्ति से ऊपर उठकर दूसरों को सुखी और सच्चे सामाजिक अर्थ में स्वतंत्र देखने का अदम्य राष्ट्रीय विश्वास। इसी प्रवर्तनशील सामा-

जिक विश्वास और आत्मत्याग के ताने बाने से मैंने मोहन का चरित्र बुनने की चेष्टा की है। एक प्रेमी की अधीर, आदर्शवादी, निश्चयात्मक और संस्कारजन्य दुर्बलतायें मोहन में होते हुए भी वह कहीं अपने विश्वास की पैनीधार से विमुख नहीं हुआ। अपनी मान्यताओं की आचारिक परिणति और सामाजिक अभिव्यक्ति के मामले में संस्कार-भीरु और वर्तमान कुव्यवस्था का पोषक जान पड़ते हुए भी मोहन वास्तव में वैसा नहीं है। उसकी सारी कमजोरयाँ एक स्वप्नशील प्रेमी की कमजोरियाँ हैं। समाजवादी जागरण के उस उषाकाल में जिसके पूर्व भारतीय राजनीति और समाजविज्ञान में आतंकवादी रसवाद और पवित्रतावादका युग था—जब समाजवाद के प्रति मध्यवर्ग के युवकों का केवल रोमाँटिक आदर्शवाद से रंगीन बौद्धिक और हार्दिक आकर्षण था इससे अधिक की आशा भी न की जा सकती थी। मोहन को व्यक्ति की अपेक्षा एक प्रतीक - एक 'टाइप' के रूप में चित्रित करने की मैंने चेष्टा की है - ऐसा 'टाइप' जिसकी सामाजिक विशेषतायें - व्यक्ति के वर्गगत जीवन की नवयुवकोचित धारणायें— उसकी निजी आशा, निराशा, प्रेम, घृणा, प्रवृत्ति, विरक्ति, भूख, प्यास, इच्छा आकाँक्षा के घात प्रतिघात में सामाजिक पृष्ठभूमि और आचारिक जीवनभूमि के द्वन्द में आपसे आप प्रकाशित हो उठें। मेरी धारणा है ऐसे चरित्रों की सृष्टि से कथा को घटना-प्रवाह और उपन्यास की तलहटी में बहनेवाली जीवनधारा को गति मिलती है। साथ ही नायक के जीवन के स्वरूपदर्शन ( *subjectivity* ) के प्रति अवज्ञा भी मुझे स्वीकार नहीं जिसके न होने से उपन्यास में कल्पना के रंग फीके पड़ जाते हैं और भावना के सौकुमार्य के अभाव में उपन्यास अरोचक तथा प्रभावहीन हो जाता है। दूसरी ओर नायक की वैयक्तिक चेतना में ही उपन्यास का घटना-क्रम केन्द्रित कर देने से उसकी महाकाव्य-सुलभ भावोत्पादकता जाती रहती है जो मेरी समझ में

उपन्यास का सब से आवश्यक गुण है। हिन्दी उपन्यास अँगरेजी और बँगला की देन होते हुए भी हमारी ऐतिहासिक सभ्यता की प्राचीनतम जनकला का आधुनिक रूप है और सच्चे अर्थ में महाकाव्य का उत्तराधिकारी है।

बुद्धि और विश्वास, तर्क और आस्था, कर्मोन्मादना और स्वप्नशीलता, रसवर्षिणी हार्दिकता और सुसंतुलित मस्तिष्क की सतत चिन्तन-क्रिया के पारस्परिक विनियोग से कला में प्रभाव और स्थायित्व आता है। जीवन की अनन्त और अखन्ड उलझनों के बीच मार्ग निकालते समय खाली बुद्धि को पकड़कर ही नहीं जिया जा सकता। विश्वास वादों और विवादों से ऊपर होता है और एक बार सामाजिक निकास पा जाने पर वह जब तब व्यक्ति की अहंपूर्ति का आग्रह करते हुए भी अन्त में जाकर सामाजिक कर्म में ही परिणत होता है। ऐसे विश्वास का प्रतीक मेरा उपन्यासनायक अपनी अपूर्णताओं और चरित्रगत दुर्बलताओं के बावजूद एक बलिदानी और प्रेरक सामाजिक बोध का सृजन करेगा।

मैं आशा करता हूँ उपन्यास से आपका मनोरंजन होगा।

—अंचल

समर्पण—

**कान्तिचन्द्र और चन्द्रकिरण सौनरिक्सा को**

( जिन्हें यह भेंट पाँच वर्ष पहले मिल जानी थी )

# [ १ ]

जून की दोपहरी थी। देहात का कच्चा मकान सूरज की तेज़ किरणों में तप रहा था। मोहन भीतर की दालान में एक लम्बा अँगोछा पहने, जमीन पर चटाई बिछाये, आँखें मूंदे लेटा था। आज तीन दिन से इंटरमिडियेट का परीक्षाफल निकलनेवाला था और रोज तार की प्रतीक्षा रहती थी।

मोहन पड़ा पड़ा अतीत की कटुताओं और आने वाले भविष्य की अनिश्चितता को सोच रहा था। उसकी पूर्ण इच्छा थी कि वह आगे भी यूनिवर्सिटी में जाकर पढ़े और राजनीति तथा अर्थ-शास्त्र में ऊँची ऊँची डिगरियाँ प्राप्त करे। उसके निबन्धों और आलोचनाओं को जब उसके साथी आदर और पूरे-पूरे ध्यान से सुनते थे और प्रोफेसरों से जाकर तारीफ करते थे तब वह कितना पुलकित होता था! क्लास में प्रोफेसर जब मोहन के लेख और परीक्षा प्रश्नों के उत्तर पढ़कर सुनाते थे तो वह जैसे विभोर हो जाता था। उसके गोरे स्वस्थ मुख पर एक अनिर्वचनीय उल्लास की लाली फूट पड़ती थी। परन्तु यदि परीक्षा में उसे प्रथम श्रेणी न मिली तो स्कालरशिप कहाँ रखी है? और यदि स्कालरशिप न मिली तो……!

यहाँ आकर मोहन की चेतना शिथिल पड़ने लगती थी। आगे वह कैसे पढ़ेगा—कैसे होस्टल में रहेगा—उसके पिता अपनी थोड़ी-सी आय में उसे कैसे पढ़ा सकेंगे और फिर सीता का विवाह—यह भी तो एक समस्या है जो मीठे जीर्ण ज्वर की तरह उन्हें घुला रही है।

दौड़ती हुई सीता ने आकर कहा—"भैया! तारवाला आ रहा है। भैया का नतीजा आ रहा है! दौड़ो अम्मा, उसके लिए शरबत बनाओ! मैं पान बनाती हूँ।"

मोहन के दोनों छोटे भाई जो चारपाइयों पर पड़े थे और जिनके सम्बन्ध में सीता और मा में यह तय हो चुका था कि सो गये हैं, न जाने कैसे कूद कर खड़े हो गये और बाहर की ओर झपटे। सीता की मा झपटकर उठ बैठी और दरवाजे पर आकर खड़ी हो गई। मकान से तीस गज दूर करीम डाकिया नन्दू और चन्दू के सिर पर हाथ फेरता हुआ चला आ रहा था। चन्दू और नन्दू में से प्रत्येक चाहता था कि तार उसके हाथ में आजाय। करीम दोनों को बहलाता अपने साथ लिये आता था।

चन्दू और नन्दू उससे निरर्थक प्रश्नों की झड़ी लगाये थे। करीम अफ़ीम के नशे में कुछ सुनता, कुछ न सुनता, एक सधी चाल से चला आरहा था। उसकी गति में एक विचित्र ठहराव था जैसे तार का आना उसके लिए छींक और खाँसी आने से अधिक महत्व नहीं रखता।

मोहन ने और कड़ाई से आँखे मूँद लीं। वह परीक्षा-फल की ओर से अधिक लापरवाह बन जाना चाहता था। उसके दो पर्चे खराब हो गये थे और उसे प्रथम श्रेणी में न आने का विश्वास था। शरीर के भीतर भीतर एक खोखलापन-सा फैल रहा था जिसमें उसका हृदय खोया जाता था।

करीम दरवाजे पर आगया। सीता की मा ने सर का घूँघट तनिक और आगे बढ़ा लिया। चन्दू और नन्दू की उत्सुकता अब अपने पूरे वेग पर आ गई थी। करीम मियाँ भी अंत में टिक न सके। चन्दू ने तार उनके हाथ से छीन ही तो लिया और किलकारी मारता हुआ भीतर की ओर भागा। सीता आकर अपनी मा के पीछे खड़ी हो गई। मा ने सीता से एक बोरा बिछाने के लिए कहा। सीता ने लाकर बिछा दिया। करीम मियाँ उस पर बैठ गये। सीता की माँ ने कहा--"दादा! शरबत बनाये लाती हूँ। आराम से बैठ जाओ।"

करीम मियाँ ने पीनक में झूमते हुए कहा—"मोहन भैया पास हो गये हैं—मुझसे सुन लो। खाली शरबत से मैं नहीं टलूँगा। बड़े भैया कहाँ हैं? जरा उनको तो बुलाओ। तार के फारम पर दस्तखत भी करना

है। अल्लाह जानता है लाट साहब का भी तार होता तो मैं सीऐ धूप में देने न जाता। आज मैं बिल्कुल भुन गया हूँ। खाली यही तार था। सिर्फ इसी के लिए इतनी दूर आना पड़ा।"

सीता शरबत बना कर ले आई। एक बड़े सकोरे में भरकर उसने करीम को दिया। करीम ने दो बार में सीता के हाथ का लोटा साफ कर दिया और कुल्ली कर हाथ से अपनी मूँछें साफ करते हुए बोला—"मोहन भैया कहाँ हैं? क्या इनाम के डर से बाहर नहीं आते? अरे जब बहूजी हैं तो मुझे उनसे क्या मतलब? वे क्यों शरमाते हैं?"

भीतर चन्दू और नन्दू मोहन के दोनों तरफ खड़े थे। मोहन ने तार खोलकर पढ़ लिया था। आदमी का सर्वस्व लुट जाने पर निरुत्साह की जैसी कालिमा उसके चेहरे पर छा जाती है वैसी ही मोहन के मुँह पर फैल गई थी। उसे द्वितीय श्रेणी मिली थी। चन्दू और नन्दू भाई के चेहरे पर यह उजड़ापन देखकर अवाक् खड़े थे। अधिक बोलने और शरारत करने—उछल-कूद मचाने का उनका साहस ही नहीं होता था। क्या भैया फेल हो गये हैं? करीम ने तो रास्ते में उनसे कहा था कि वे पास हो गये हैं। फिर भैया का चेहरा इतना क्यों गिर गया है? बच्चे बेचारे समाज या परीक्षा का श्रेणी भेद अभी क्या समझ पाते!

सीता भी वहीं आकर एक कोने में खड़ी मोहन के चेहरे पर छाई थकावट और अवसन्नता को परख रही थी। मोहन ने तार पढ़ने के बाद उससे एक बात भी न की। वह और भी अधिक गुम-सुम हो गया था। सीता का हृदय अभिमान से कम और आशंका से अधिक फूल रहा था।

तब तक मा ने पुकारा—"अरे मोहन, बाहर क्यों नहीं आता? देख, करीम दादा दस्तखत कराने के लिये बैठे हैं। सीता कहाँ चली गई? जाकर पान तो बना ला। तुम सब भीतर घुसकर क्यों बैठे हो? चन्दू क्या रहा है? नन्दू, बुला तो ला अपने भैया को!"

हारे हुए जुआरी की भाँति लड़खड़ाता मोहन आकर करीम के पास खड़ा हो गया। मा की तीक्ष्ण दृष्टि ने यह तुरन्त समझ लिया कि

नतीजे से मोहन को संतोष नहीं है। उसके चेहरे पर ऐसी उदासी पहले कभी देखी न गई थी।

"बन्दगी भैया। लो, इस फारम पर दस्तखत तो कर दो। गाँव भर के लोगों ने हाथ में तार देखते ही तुम्हारा नतीजा पूछना शुरू कर दिया। यहाँ भी कच्ची गोटी नहीं खेले हैं। दुनिया चराए घूमते हैं। पहले ही बाबू जी से पूछ लिया था कि कहाँ का तार है—क्या मज़मून है। मोहन भैया पास हो गये हैं—यह कहते कहते मेरा मुँह दर्द करने लगा। सिर्फ ममता बेटी ने एक बात पूछी और उसका जवाब मैं न दे सका? मैं भला डिवीजन क्या जानूँ। क्यों भैया, यह डिवीजन क्या बला है। पहले तो यह होता नहीं था। नहीं तो मुझे जरूर मालूम होता और मैंने बाबू जी से पूछ लिया होता। ममता बेटी को यह कहाँ से मालूम हो गया?"

"कुछ नहीं दादा (गाँव के बच्चे, जवान, बूढ़े, सभी करीम को दादा कहते थे) डिवीजन तो पहले भी होता था। जैसे अव्वल-दोयम दर्जे होते हैं, वैसे ही पास होने वाले लड़कों को, नम्बरों के हिसाब से, तीन दर्जों में तकसीम कर देते हैं। ममता ने आपसे ठीक ही पूछा था। वह मेरे पास उठती बैठती है। थोड़ी बहुत अँगरेजी वह मुझसे सीख गई है। इसीलिए उसे यह सब मालूम है। क्या रास्ते में ममता मिली थी?"

"हाँ भैया, वह तो दरवाजे पर ही खड़ी थी। जैसे मेरा ही रास्ता देख रही हो। दूर से देखते ही मेरे पास दौड़कर आ गई। वह तो तार को खोलकर देखना चाहती थी, मगर मैं तीस साल से मुलाज़मत कर रहा हूँ। तुम्हारा तार तो मैं कलक्टर को भी नहीं देखने देता। मैंने साफ कह दिया कि कायदे से तुम यह तार नहीं खोल सकतीं। मगर उसकी बहस तो वकीलों की सी होती है। आखिर मुझे कहना ही पड़ा कि मोहन भैया मुझ पर नाराज होंगे। उनका यह हुकुम है कि उनकी चिट्ठी या तार किसी और को न दिखाया जाय।"

"आपने यह क्यों कह दिया, करीम दादा ! अब वह बैठी मेरे ऊपर कुढ़ रही होगी !"

"क्या करता, भैया ! उसकी जिरह में तो बड़े-बड़े वकील और बैरिस्टर भी उखड़ जायँ। मैं तुमसे सच कहता हूँ कि अगर वह लड़का होती और कालेज में पढ़ी-लिखी होती तो हाईकोर्ट की जज हो जाती।"

मोहन की मा ने लाकर करीम को पान तम्बाकू दिया। मोहन ने फार्म पर दस्तखत किया और जेब से एक अठन्नी निकालकर करीम मियाँ की नज़र की।

"इसकी क्या जरूरत है। मैं आपसे कुछ थोड़े ही लूँगा। मैं तो मालिक और मालकिन के हाथ से लूँगा। आप तो लड़के हैं। मेरे सामने अभी कल तक नंगे घूमते थे। नहीं, इसे आप रख लीजिए।"

"ले लो करीम दादा !" मोहन की मा ने मुस्कराते हुए कहा—"यह अभी कहीं कमाता थोड़े ही है। घर से देता है। जो मिले, ले लो। आगे के लिए झगड़ते रहो।"

मोहन की मा की बात पूरी होने के पहले ही करीम मियाँ अठन्नी अपनी टेंट के हवाले कर चुके थे। मोहन के डिप्टी होने की कामना करते-करते वे जिधर से आये थे, उधर ही चल दिये।

मोहन आकर फिर उसी चटाई पर लेट गया और छत की ओर शून्य दृष्टि से देखने लगा। चन्दू-नन्दू फिर अपनी-अपनी चटाइयों पर लेट गये। केवल सीता बैठी भैया के लिए पान बनाती रही। मा तब तक आकर मोहन के पास बैठ गई।

"क्यों रे, नतीजा मालूम होने पर तू इतना उदास क्यों होगया ? मैंने तो किसी को फेल होने पर भी इतना दुखी होते नहीं देखा। क्या वजीफे की उम्मीद नहीं ?"

मोहन ने गीले स्वर में कहा—"नहीं मा, कोई उम्मीद नहीं। अगर पहला डिवीजन मिला होता तो पूरी आशा थी। इन्ट्रेंस में मिला और मैं वजीफा पा गया। इस बार भी यदि वजीफा मिल जाता तो बी० ए० में भरती होने का कुछ सहारा हो जाता। मेरे दो पर्चे खराब हो गये थे।

तभी मुझे पहले डिवीजन की आशा छूट गई थी। अब मैं अपने साथियों और मास्टरों को कौन-सा मुँह दिखाऊँगा। वे लोग मेरे ऊपर पूर्ण आशा लगाये थे। प्रिंसपल साहब का तो कहना था कि मैं पूरे सूबे में अव्वल आऊँगा। सो अव्वल श्रेणी में पास भी न हो सका।"

"इसमें मुँह दिखाने की क्या बात है!" मोहन की मा ने कुछ चमक कर कहा। "क्या तूने चोरी की है या किसी की लड़की भगाई है? यह तो लगा ही रहता है। कभी अव्वल तो कभी दोयम। हाँ, अगर फेल हो जाता तो मैं कहती शरमाने की बात है। तू तो ऐसी बातें करता है जैसे किसी की हत्या करते या किसी की जेब काटते पकड़ा गया हो। खबरदार ऐसी बात जबान पर न लाना।"

"तुम नहीं समझ सकतीं मा! मेरे लिऐ यह जीवन-मरण का प्रश्न है। बीस रुपये महीने कम नहीं होते। अगर वजीफा मिल जाता तो पन्द्रह-बीस का एकाध ट्यूशन करके मैं मज़े से बी० ए० में भरती हो सकता था। यों तो मुझे अपने ऊपर विश्वास है कि किसी कालेज का कोई लड़का मुझसे आँख नहीं मिला सकता। पहली और दूसरी श्रेणी में पास होने से क्या होता है। मगर यह बीस रुपये का सहारा जाता रहा। बाबू जी ने तो इन्ट्रेंस के बाद ही जवाब दे दिया था। वह भी आखिर क्या करें? सीता की शादी दो साल के अन्दर करनी है। उनके पास अभी तक एक पैसा नहीं है। जैसे-तैसे मुझे एफ० ए० पास करा दिया। अब अगर मुझे आगे नहीं पढ़ाते तो इसमें हँसाई नहीं है। सीता की शादी साल दो साल नहीं होती तो जग हँसाई है।"

"तू अब आगे पढ़कर क्या करेगा। एफ० ए० तूने पास कर लिया, कहीं न कहीं नौकरी मिल जायगी। अब तू पढ़ने की जिद न करना। तेरा पढ़ने का आगे हिसाब बैठेगा नहीं और उन्हें तेरी बात सुनकर अपनी असमर्थता पर दुख होगा।

"कुछ न कुछ सोचूँगा और समझूँगा। जैसा ठीक जान पड़ेगा, करूँगा। इतना ज़रूर होगा कि जितना समय मैं पढ़ने में लगाना

चाहूँगा, उतना न लगा सकूँगा। पैसा पैदा करने और कालेज की फीस जुटाने में मेरा अधिकाँश समय निकल जायगा और किसी न किसी प्रकार पास भर होता जाऊँगा। मेरे सपने साकार न हो सकेंगे। खैर, यह तो जीवन की लड़ाई है। लड़नेवाले के पास सब हथियार हों यह जरूरी नहीं है। गौरव और महत्व तो उसी के चरणों की धूल बनते हैं जो निहत्था, निस्सहाय और निःसम्बल, कठिनाइयों से जूझता है—जीवन की विषमताओं से भिड़ता है।"

सीता तब तक पान लगाकर ले आई। भैया की विषादभारानत आत्मा का सारा कारुण्य उसके चेहरे पर साकार हो उठा था। लाकर चुपचाप उसने पान और तम्बाकू मोहन के हाथ में दिये और हटकर एक ओर दरवाजे के पीछे खड़ी हो गई। ममता से उसने सुन रखा था कि भैया का भविष्य उनके परीक्षाफल के डिवीजन पर निर्भर करता है। आज भैया की प्रत्येक चेष्टा, प्रत्येक मुद्रा और प्रत्येक चिन्ता जैसे चिल्ला-चिल्लाकर घोषित कर रही थी—"डिवीजन बिगड़ गया!"

सीता मोहन की सगी छोटी बहन है। उससे लगभग पाँच वर्ष छोटी है। स्कूल का मुख उसने नहीं देखा। पढ़ने-लिखने में उसकी विशेष गति नहीं। उसने कभी किसी प्रतिभा या मस्तिष्क की तीक्ष्णता का परिचय भी नहीं दिया। मोहन से सदा दूर-दूर-सी वह रहती आई है। एक प्रकार से मोहन की ओर से कभी कोई प्रोत्साहन उसे नहीं मिला। परन्तु अपने भैया के ऊपर उसकी अपार और अगाध भक्ति है। भैया की गम्भीरता, बुद्धि की तीव्रता, चरित्र की उज्ज्वलता और हृदय की महानता की चर्चा उसने इतने भिन्न-भिन्न मुखों और प्रकारों से सुनी है—शहर में और गाँव में दोनों जगह—कि वह मन ही मन ऐसे महान् भाई की बहन होने में बड़े सुख और गौरव का अनुभव करती है। उसे लगता है जैसे भैया के ऊपर वह एक ढाल बनकर छा जाय। सारे अनिष्टों से उनकी रक्षा करती रहे। मोहन ने सीता से कभी अधिक बात नहीं की है, परन्तु उसके हृदय में अपनी बहन के लिये जो स्नेह है

वह उसकी शतधा चितवन में बह उठता है—जब कभी वह सीता की ओर देखता है। सीता से क्या यह छिपा रहता है...?

सीता की भैया के प्रति भक्ति का एक दूसरा कारण भी है। ममता सीता की सखी है। अवस्था में उससे दो वर्ष बड़ी होने पर भी—सीता के हृदय में वह घुल मिल गई है। जीवन के उषःकाल से दोनों एक दूसरे के सामने अपना हृदय खोलती आई हैं। ममता गाँव के एक पुरोहित की एकलौती कन्या है। रूप और बुद्धि का अद्भुत मेल उसमें है। उसके रूप को देखकर एक ओर यदि गाँव का जन-जन मुग्ध है तो उसकी बुद्धि का लोहा मोहन भैया जैसे लोग भी मानते हैं। उसकी तेजस्विता के सामने यदि एक ओर गाँव की बड़ी बूढ़ी प्रपंचिनी दादियों का दिल दहलता रहता है तो दूसरी ओर उसके स्नेह और ममत्व की विह्वल आर्द्रता के कारण गाँव के पशु-पक्षी तक उसकी पगध्वनि और अपनत्व से भरा पुलक-स्पर्श पहचानते हैं। उसी ममता दीदी के मुख से अपने भैया की गरिमा का वर्णन सुन-सुनकर सीता की आत्मा जाग उठी है। जैसे देव प्रतिमा के सामने पुजारिन की सारी तन्मयता, भक्ति, कातरताऔर अर्घदान पुँजीभूत हो उठता है—चेतना का सारा सौन्दर्य सिमटकर एकाकार हो जाता है।

सीता ने किवाड़ की आड़ से देखा—भैया ने पान खाते-खाते फिर आँखें मूँद लीं। एक कठोर चिंता उनके मुख पर फिर फैल गई और फीकेपन की एक विचित्र व्यथा ने भैया का सारा चेहरा घेर लिया। सीता के हृदय में रह-रहकर रुलाई जोर मारने लगी। कठिनता से आँचल अपने मुँह में दाबे आकर अपनी चारपाई पर वह लेट गई। घर में फिर वैसा ही सन्नाटा छा गया। पछुवा हवा तेज़ी से चल रही थी। प्रचंड धूप में तपती हुई सृष्टि एक असहनीय यातना से व्याकुल हो-होकर जैसे रुँधे कण्ठ से आर्तनाद कर उठती थी। लू के तेज़ झोंके खपरैल के छप्पर को चीरकर कभी-कभी भीतर आ जाते थे और शरीर झुलस जाता था।

[ २ ]

करीब पाँच बजे मोहन उठा और सीता को जगा कर पान बनाने के लिये कहा। सीता दोपहर में सो गई थी तब से अब तक सोई ही रही। सीता की माँ कहीं पास पड़ोस में रामायण सुनने चली गई थीं। चंदू और नंदू गायब थे। सीता ने तुरन्त पान बना कर दिया और चप्पल पहन कर मोहन बाहर निकला। धूप की प्रखरता कुछ मंद पड़ गई थी। मोहन सीधा ममता के घर पहुँचा। बाहर बैठे ममता के पिता चश्मा लगाये पत्रा देख रहे थे। पास में तीन या चार जिज्ञासु बैठे थे। एक बार उन्होंने आँख उठा कर ऊपर की ओर देखा और बिना कुछ बोले फिर पत्रा देखने लगे। मोहन सीधा घर के भीतर चला गया।

ममता अकेली बैठी अँगरेजी से हिन्दी में अनुवाद कर रही थी। मोहन को देखते ही सिर पर आँचल डाल कर वह उठी—एक मचिया लाकर जमीन पर डाल दिया। मोहन ने लपक कर ममता के अनुवाद की कापी उठा ली। बैठ कर उसे पढ़ने लगा। अनुवाद करीब करीब पूरा हो गया था। मोहन जेब से कलम निकाल कर उसे ठीक करने लगा।

ममता चार बीड़े पान बना हाथ में तम्बाकू ले आकर मोहन के पास घुटनों के बल बैठ गई। पान देने के लिये हाथ बढ़ाने पर मोहन ने मुँह खोल दिया। ममता ने वैसे ही निर्विकार भाव से पान खिला दिये और तम्बाकू भी मुँह के अंदर छोड़ दी। मोहन भैया का यह तम्बाकू वाला व्यसन उसे नापसंद था। पहले वह इस सम्बन्ध में बहुत बड़बड़ाया भी करती थी मगर जब से मोहन ने उसे एक बार डाट दिया तब से वह कुछ नहीं बोलती।

मोहन को पान खिला कर ममता फिर वैसी ही घुटने के बल जमीन पर बैठ गई। आँगन के एक ओर धूप अभी बाकी थी। मोहन बिना कुछ बोले अनुवाद में संशोधन करने लगा। ममता हिन्दी की किताब हाथ में लेकर और दृष्टि कापी पर जमा कर मोहन के संशोधनों को

समझने लगी। आध घण्टे में मोहन ने यह काम समाप्त कर दिया और कापी ममता के हाथ में दे दी।

ममता कापी और किताब लेकर—अब मोहन के पास से हट कर अपने पुराने बोरे पर बैठ गई। मोहन ने उसकी आँखों में आँखें डाल कर कहा, "मम्मी! तुमने मेरा डिवीजन सुना होगा।"

"हाँ जब करीम ने नहीं बताया तब मैं खुद डाक बाबू के पास गई और जाकर पूछ आई। डिवीजन का शब्द मेरे मुँह से सुन कर वे चकित से हो गये। मैंने उन्हें बाद में बता दिया कि मोहन भैया की छात्रा हूँ। हर साल वे मुझे पिछले दर्जे का कोर्स पढ़ाते चलते हैं। यदि वे सेकेन्ड इयर पास हो गये हैं तो मैं भी लगभग फर्स्ट इयर पास हूँ।"

मोहन जोर से हा हा करके हँस पड़ा। ममता के गोरे मुख पर तरल हँसी कपूर की तरह छाकर रह गई।

"वजीफा मिलने की कोई आशा नहीं। सेकेन्ड क्लास मिलने से फ्रीशिप भी न मिल सकेगी। पढ़ना मैं चाहता हूँ। यूनिवर्सिटी का खर्च कहाँ से चलेगा? यदि ट्यूशन ज्यादा करता हूँ तो पढ़ने का अवकास न मिलेगा। मुमकिन है बी० ए० में डिवीजन और खराब हो जाय।"

पहले बाबू जी से बातचीत करके देखो। शायद वे खर्च देने के लिये तैयार हो जाँय।

"वे कहाँ से देंगे मम्मी? साठ रुपये पाने वाला दफ़र का बाबू शहर और देहात दोनों का खर्च सँभालने के बाद लड़के को यूनिवरसिटी में पढ़ा सकेगा? सीता का विवाह भी तो करना होगा।"

"सीता के विवाह की कौन जल्दी है भैया? तुम भी जब उसके विवाह की जल्दी मचाने लगते हो तो मुझे बड़ा वैसा लगता है। वह तो मुझसे भी दो साल छोटी है।"

मोहन ने वैसे ही संयत भाव से कहा—"अब तुम्हारे भी विवाह का समय आ गया है। सीता के विवाह की चर्चा होने लगी और तुम्हारे विवाह का कहीं जिक्र ही नहीं। तुम्हें शायद बुरा लगता है।"

ममता कुछ बोली नहीं। वैसे ही पूरे खुले हुए हिरनी के से निर्भ्रान्त

नेत्रों से उसकी ओर देखने लगी। मोहन ने आशा की थी ममता कुछ उत्तेजित हो जायगी। चेहरे पर रोष की लालिमा फूट चलेगी। वह कुछ कड़ी बात कहेगी। उसने फिर दुबारा छेड़ते हुये पूछा "ममता! क्या तुम्हें अपने विवाह की चर्चा में दिलचस्पी नहीं है? क्या तुम भी आज कल की कालेज की सुशिक्षिता आधुनिका नारी की भाँति विवाह के नाम से भागती हो और उसे 'इमोशनल स्वीसाइड' मानती हो?"

ममता ने आवेगहीन ठण्डे स्वर में कहा "इस समय जो प्रस्तुत विषय है उसकी चर्चा न कर हम लोग क्यों बहके जा रहे हैं? अच्छा हो कि हम उसी विषय की चर्चा करें और अन्य बातों को किसी फुरसत के समय के लिये स्थगित रक्खें। मेरे विवाह की चर्चा में मैं देखती हूँ जितना रस मुझे मिलना चाहिये उतना तुम्हें मिलता है।"

शाम हो गई थी। ममता की माँ बाहर से घूम कर आ गई। मोहन ने दौड़कर पैर छुए। "बेटा दोपहर को मैंने सुना था पास हो गये—सारा परिश्रम सफल हो गया। अब कहीं नौकरी कर लो और जल्दी ब्याह कर डालो।"

ममता फिर जाकर पान लगाने लगी। उसकी पीठ मोहन की ओर थी। सफेद पतली सारी के भीतर से उसकी पीठ की गौरता छन छन कर फूट रही थी। सिर का वस्त्र खिसक कर गले पर आगया था। बड़े बड़े बालों की बँधी भौंराली वेणी पीछे की ओर फैली जा रही थी। ममता ने पान बनाकर मोहन और माँ को दिये। भीतर जाकर ब्लाउज पहना और मोहन के पास आकर बोली,—"भैया! टहलने नहीं चलोगे?

मोहन ने कहा—"चलो।"

दोनों एक साथ घर से बाहर निकले। ममता की माँ कमरे के भीतर जा चुकी थी। बाहर बैठे पिता ने एक बार फिर दोनों को देखा और पुस्तकावलोकन में लीन हो गये। सड़क पर मोहन ने कहा, "मम्मी! तुम्हारे चप्पल क्या हो गये? महीने भर पहले ही तो लाया था।"

ममता ने निःसङ्कोच कहा—"कल एक मजदूरिन गाय की करबी

काटने आई थी। दिन भर उसे खेतों और खलिहानों में धूप में जलती हुई कंकड़ियों पर खड़े होकर काम करना होता है। उसने मुझसे मेरा या बापू का पुराना जूता माँगा। बापू तो तुम जानते हो खड़ाऊँ ही पहनते हैं। मेरे पास पुराना चप्पल था नहीं। वही तुम्हारा लाया हुआ उसे दे दिया।"

मोहन ने कहा—"तुम्हारा काम कैसे चलेगा ?"

ममता ने कहा—"मेरा काम ? मुझे धूप में निकलना ही कहाँ पड़ता है ? अधिक से अधिक तुम्हारे घर आना होता है। दूर वह है नहीं। आज डाकखाने तुम्हारा नतीजा पूछने जाते समय जरूर कुछ जलन तलुओं में मालूम पड़ी थी। दो चार दिन में आदत पड़ जायगी।"

गाँव के लोगों के लिये ममता और मोहन का एक साथ घूमना इतना स्वाभाविक हो गया था कि उसे एक घटना ही कहा जा सकता है। वरना देहातमें जहाँ आडम्बर, रूपक और रूढिप्रियता ही मनुष्य को समाहत करती हैं एक अविवाहित किशोर और किशोरी का इस प्रकार घूमना कभी भी सहनीय नहीं होता। गाँव के लोगों को ममता की तेजस्विता, पवित्रता और विचारों की ऊँचाई पर पूरा पूरा विश्वास है ( यद्यपि स्त्रियों को, विशेष कर वृद्धाओं को कम है ) और मोहन की सदाचारता और चरित्र की निष्कलुषता पर भी वैसी ही अडिग आस्था है। दोनों निःसंकोच भाव से आगे बढ़ते जाते थे। रास्ते में—"मोहन भैया बधाई है—पास हो गये" की बौछार और मोहन का रुक रुक कर एक एक से बातचीत करना ममता को खल रहा था। वह तो जल्दी से जल्दी जमुना तट पर पहुँच कर शाँत एकान्त में अपने मोहन भैया के साथ प्रकृति का वन्य सौन्दर्य देखना चाहती है। थोड़ी देर में चाँदनी उग आयेगी। उसके पहले वह नदी किनारे पहुँच जाय।

पहुँचते-पहुँचते मोहन ने पूछा,—"मम्मी ! नाव पर चलेगी ?"

"नहीं भैया। चलो यहीं किनारे बालू पर बैठें। नाव पर चलने की मेरी इच्छा नहीं है। आज मेरा जी उदास है। शायद तुम्हारे

डिवीजन के बिगड़ जाने से हो। कल रात में अम्मा और बापू में बड़ी हाय हाय होती रही।"

मोहन ने उत्सुकता से पूछा—"क्यों" !

ममता ने निःसंकोच कहा—"यही मेरे विवाह के संबन्ध में। अम्मा का कहना है मेरे विवाह में देर नहीं होना चाहिये। बापू का कहना है अभी साल दो साल जल्दी क्या है। अभी तो वह सिर्फ सोलह वर्ष की है। अम्मा ने यह भी कहा मम्मी को जितनी स्वाधीनता दी गई है, वह ठीक नहीं है। तुमने उस दिन जो रात को मुझे घर से बुलाया था और यहाँ नदी की तरफ हम तुम घूमते हुये आये थे यह अम्मा को खराब लगा है। उसी बात को लेकर बापू से कहा सुनी होती रही। वे बराबर कहते रहे, मैंने धूप में बाल नहीं सफेद किये। मोहन को मैंने गोदी में खिलाया है। उसके चरित्र का निर्माण जिन उपकरणों से हुआ है, वे सब लगभग मेरे ही दिये हैं। मम्मी तो मेरी लड़की ही है। तुम्हारी जैसी वह नहीं है। बस इसी बात को लेकर अम्मा ने वह उपद्रव किया कि बापू की सारी मधुरता लोप हो गई। रात भर उन्हें अपने इस मज़ाक का अफसोस रहा।"

मोहन—"अन्त में समझौता कहाँ पर हुआ ?"

अम्मा ने कहा—"मैं मोहन पर अविश्वास या ममता पर सन्देह नहीं करती हूँ। पर तुम उसके लिये लड़का क्यों नहीं ढूँढ़ते ?" बापू ने कहा—' लड़का मेरी निगाह में है। साल दो साल में वह तैयार हो जायगा। तब तक विवाह की जल्दी नहीं।"

मोहन ने पूछा—"तब ?"

ममता ने झमक कर कहा—"तब क्या ! कुछ नहीं। मैं क्या रात भर जागने का ठेका लिये थी।"

"देखो ममता ! मुझे बहलाओ मत। मैं तुम्हारा गुरु हूँ, इसे न भूलो। कोई कुमारी लड़की अपने विवाह की चर्चा पूरी सुने बिना सो जायगी, यह मैं कैसे मान लूँ ?।"

"मैंने कह दिया—मैं सो गई थी। ज्यादा मैं नहीं जानती।"

"खैर तुम न बताओ। मुझे जानने की जरूरत भी नहीं है। तुम्हारे विवाह से मुझे मतलब क्या है?"

"अच्छा, तुम मेरे विवाह में आओगे ही नहीं?"

"क्या जरूरत है? जिसके बिना विवाह पूरा नहीं होता वह तो आ ही जायगा।"

ममता हँसते हँसते लोटन कबूतर हो गई। बालू पर खिलखिला कर लेट गई। मोहन का चेहरा बचा कर उसने एक अंजली बालू उस पर फेंक दी।

मोहन ने डाट कर कहा—"क्या बदतमीजी यह है मम्मी! तुम जानती हो मुझे यह खिलवाड़ पसंद नहीं।"

"भैया! कल तक तुम्हें यह पसंद था। तुमने खुद एक अंजली बालू मुझ पर फेंकी थी। आज शायद डिवीजन बिगड़ जाने से तुम ज्यादा संजीदा हो गये हो। फिर बी० ए० के छात्र को गम्भीर होना ही चाहिये।"

हाथ का तकिया बनाये ममता ऊपर आसमान और चाँद देख रही थी। चाँदनी और उसकी देह-कांति मिली मिली सी थी। एक गीत की कड़ी गुनगुनाते हुये उसने फिर एक अंजली बालू मोहन पर फेंकी।

मोहन एकटक ममता का मुँह देख रहा था। बालू पड़ते ही हिमालय की तरह गम्भीर बन कर बोला—"शि··शि··शि··। फिर वही।"

वैसी ही सरल हँसी से ममता लोट पोट होकर और निकट आ गई। मोहन के पैरों को पकड़ कर आँखे मूँद निश्चेष्ट हो गई—जैसे कोई अंधा अपनी लकड़ी थामे हो। मोहन ने कहा—मम्मी देख! नीली चाँदनी में जमना का नीला पानी कैसा सुन्दर लग रहा है। जब कभी मैं चाँदनी रात में जमना के किनारे बैठ कर दूर क्षितिज तक फैली हुई अकूल सीमाहीन जलराशि देखता हूँ तब मुझे लगता है इन लहरों में कितने गीत, कितनी मिठास, कितनी व्यथा, प्रेम की कितनी मधुर वेदना घुली है। वैष्णवों की सारी स्वर लहरी, उनकी आत्मा की सम्पूर्ण

वाणी, उनके उच्छ्वासों का समस्त विह्वल संताप और उनके कलेजे की सारी रस-स्निग्ध जलन जमना के स्थिर नूतन प्रवाह में डोलती फिरती है। लगता है मम्मी! जैसे प्राणों ने प्राणों से बँधना इन्हीं लहरों के मिलन से सीखा है। पुलक परिहास चंचल गोप कुमारियों की विह्वल मुग्धता, धुये से आच्छन्न गृहों के अनुज्वल दीपों के प्रकाश में और भी अधिक सुन्दर लगने वाले उनके मुख मुझे न जाने कब के देखे और समझे से याद आते हैं। भक्ति और प्रेम की जिस अखण्ड एकाग्रता में, आत्मनिवेदन के जिस आनन्दोत्सव को लेकर जीवन और मरण के वे सूत्र बाँधे जाते थे, वे आज भी इन कल्लोलों में गूँथे से लगते हैं!

"सचमुच भैया!" ममता सँभल कर बैठ गई। इस तट पर आकर बैठते ही मुझे भी यही लगता है जैसे आत्मा की आवेदनमयी माधुरी के अकुण्ठित प्रकाश से मेरा समस्त जीवन और यौवन उजागर हुआ जा रहा है। कृष्ण की वह त्रिभुवन-जयी वंशी ध्वनि मुझे इन लहरों की कलकल में बसी सी लगती है। लगता है जैसे संध्या में, मंद वायु में, ताराओं में, आकाश में कितने ही अविजानित मधुर स्वर बज रहे हैं। धरती प्रेम से हिल रही है। चंद्रालोक का यह सुन्दर कम्पित श्वेत कमल जैसे समीर के मुग्ध कल स्वर में बहा-बहा फिरता है। तुम पास नहीं होते तब भी यहाँ अक्सर आती हूँ। चाहती तो हूँ संध्या को घण्टे दो घण्टे के लिये रोज यहाँ आ सकूँ। जब तुम नहीं होते तो लगता है जैसे मेरे जीवन की परिणति अधूरी है। जैसे मेरी सारी चिन्ता, साधना और हृदय की आराधना, मेरे समस्त उच्छ्वास और आवेश अपना आधार और स्पन्दन खो बैठे हैं। ऐसा क्यों होता है?"

मोहन ने ममता की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"मम्मी! जीवन में पूर्णता की एक उत्कट माँग होती है—प्राणों में अखण्डता की एक ललकार उठती है।" शायद मुझे पाकर तुम उस माँग को पूरा कर लेती हो—उस ललकार को शाँत कर पाती हो।"

"साथ ही साथ विरह का जो आभास मुझे जमना की लहरों में, बाँसों के इस घने बन में मिलता रहता है वह तुम्हारे पास न होने से साकार हो उठता है। जमना के प्राणों के क्रन्दन में जो आशा रहती है वह जैसे तुम्हारे पास न होने से बुझ जाती है। दसों दिशाओं की यह परिपूर्ण हँसी रुदन बन जाती है।"

मोहन ने कहा—"अधिक से अधिक मैं यहाँ पंद्रह रोज और रहूँगा मम्मी! फिर बाहर जाऊँगा पढ़ूँगा।"

ममता ने कहा—"छुट्टियों में तो आते ही रहोगे।"

"देखता हूँ तुम्हारे लिये बिना टिकिट भी सफर करना पड़ेगा। पैसा न होने पर आखिर क्या करूँगा? तुम्हें दूसरे तीसरे महीने आकर देखना ही पड़ेगा।" कहते-कहते एक साथ रहने के, जीवन के स्थाई, श्रद्धा से गहरे, स्नेह से मधुर, आनन्द से उज्ज्वल दिन यकायक वेदना से स्तब्ध हो दोनों की आँखों के सामने घूम गये।"

मोहन ने कहा—"चलो मम्मी! घर चलें।"

दोनों उठ खड़े हुए। ममता की पीठ की बालू को झाड़ता हुआ मोहन आगे चल पड़ा। रास्ते में दोनों खामोश रहे। बीच बीच में ममता किसी गीत की कड़ी गुनगुनाती जाती थी। मोहन आज उसकी स्वरलहरी और गीत के बोल की तारीफ न करके तट भूमि पर फैली चाँदनी देख रहा था। चेहरे पर गंभीरता की छाया थी। मोहन का ध्यान दूसरी ओर खींचने के लिए ममता ने कहा—"भैया! सीता तो कुछ पढ़ती लिखती है नहीं। पढ़ने में उसका मन नहीं लगता। कल मैंने घण्टे भर तक पढ़ाने की चेष्टा की पर वह बराबर गप्प लड़ाती रही।"

मोहन ने अनमनेपन से कहा—"पढ़े चाहे न पढ़े। मैंने भी कुछ दिन तक कोशिश की थी परन्तु जब मन ही नहीं लगता—एक जन्मजात विराग जब पढ़ने की तरफ से है तो क्या किया जाय। यदि कभी डाटो, फटकारो तो मुँह फुला लेती है। मा से यह भी सुना है कि अकेले में बैठकर रोया करती है। अजीब लड़की है। इसी लिये मैंने यह काम तुझे सौंप

दिया। मैं जानता था उसे पढ़ाना तेरे लिये क्या सरस्वती के लिये भी कठिन है।

ममता ने दुलार करते हुये कहा—"भैया! मैं कितनी अच्छी लड़की हूँ। देखो मुझे पढ़ाने के लिये तुम्हारे मन में तनिक भी उत्साह न था। फिर भी मैं पढ़ गई। तुम्हारी किताबें और कापियाँ पढ़-पढ़ कर मैं करीब करीब तुम्हारे बराबर हो गई। है न भैया?"

"बल्कि मुझसे भी ज्यादा। बेवकूफ! अपने मुँह से अपनी तारीफ नहीं किया करते।"

सड़क पर सन्नाटा था। ममता शरारतन राह में चलते चलते अपने हाथ से अपनी पीठ ठोकने लगी। ममता को उसके दरवाजे पर छोड़कर मोहन घर लौट आया।

## [ ३ ]

ममता सीधे अपनी कोठरी में चली गई। चौके में मा बैठी रोटी सेंक रही थी। उसके पिता पं० देवदत्त भोजन कर रहे थे। देखते ही उन्होंने स्नेहपूरित कण्ठ से पुकारा—आ बेटी! तू भी। भूख तो लगी होगी। मेरे साथ बैठ जा।

ममता ने कहा—"नहीं बापू! तुम खा लो। मैं माँ के साथ भोजन करूँगी।"

"अच्छा अच्छा। सुन यहाँ तो आकर बैठ। मेरे पास बैठ तो जा।" ममता चुपचाप चौके के बाहर एक बोरा बिछाकर बैठ गई। "मोहन का परीक्षा फल तो आज निकल गया।"

"हाँ, वे द्वितीय श्रेणी में पास हो गये।"

"अब क्या करेगा? सोहनलाल की स्थिति तो ऐसी नहीं है कि उसे आगे पढ़ा सकें। मगर लड़का होनहार है। उसे विश्वविद्यालय जाकर ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये।"

ममता ने तीखे स्वर में कहा—"उन्हें तो विलायत जाकर अफला-तून बनना चाहिये। मुख्य प्रश्न पैसे का है बापू! प्रतिभा इतनी जल्दी

पैसे के रूप में परिणत तो नहीं हो सकती।"

"आज शाम को वह कुछ .उतरा हुआ था। तुमसे तो बातचीत हुई होगी। मैं समझता हूँ कि प्रथम श्रेणी में न आने का उसे गहरा संताप हुआ है। होना भी चाहिये। मुझे भी आचार्य के एक खण्ड में एक बार ऐसा ही धक्का लगा था। मैं इसकी वेदना समझता हूँ। जीवन में यह सब लगा ही रहता है। मनुष्य का सोचा सब का सब, पूरा का पूरा, अगर ठीक उतरने लगे तो जीवन में निराशा और संघर्ष का नाम न रह जाय। उसे आगे पढ़ना चाहिये।"

पति की थाली में रोटी छोड़ते हुये ममता की माँ ने कहा—"क्या करेगा पढ़ कर! सीता की माँ आज कह रही थी कि वह आगे न पढ़ कर कहीं नौकरी करेगा। घर गृहस्थी में चार पैसे का सहारा देगा। व्याह की भी बातचीत चल रही है। लखनऊ में दो जगह। लोग घेर रहे हैं।"

देवदत्त ने कुछ चौंककर कहा—"अच्छा! मुझे पता नहीं था। आज तुम्हीं से यह सब मालूम हो रहा है।"

ममता की माँ ने कुछ खीझकर कहा—"तुम्हें पता क्यों होता। क्या सोहनलाल तुम से सब काम पूछ कर करते हैं?"

"मगर ममता की माँ! एक बात मैं तुम्हें बताये देता हूँ। सोहन लाल कभी बिना मोहन की सहमति के उसका विवाह नहीं करेंगे।"

"मोहन के बाप के आगे सबसे बड़ा लालच है रुपये का। जो अधिक रुपया देगा उसी के यहाँ वह मोहन का विवाह करेगा। आखिर सीता का विवाह भी तो साल दो साल में करना है। पास में पैसा नहीं।"

"तुम नहीं जानती ममता की माँ! मोहन के विचार कितने दृढ़ हैं। जहाँ उसकी इच्छा होगी वह विवाह करेगा। मोहन अपने ब्याह में एक पैसा भी नहीं स्वीकार करेगा।"

"मैं तुम से बहस नहीं करूँगी। बिना सोचे विचारे जो एक बार तुम्हारे ध्यान में आ जाता है वही गाया करते हो। मेरा मत आज तक

तुमसे किसी बात में नहीं मिला है। ममता के विवाह के सम्बन्ध में तुम्हारे कान में जू नहीं रेंगती। कहीं गाँव छोड़ कर बाहर जाते ही नहीं। क्या लड़का दौड़कर तुम्हारे पास आयेगा।"

"मैं एक ऐसा ही लड़का अपनी दृष्टि में रक्खे हूँ। तुम मेरी ममता बेटी को क्या समझती हो? जिसमें ऐसी निरुपम सुन्दरता हो, ऐसी तीव्र बुद्धि हो, ऐसी सूक्ष्म प्रतिभा और ऐसा उज्वल चरित्र हो, उसके लिये संसार में कौन नहीं लालायित होगा। तुम्हें दुनिया का कोई ज्ञान तो है नहीं। सिर्फ चौका और चूल्हा जानती हो। दुनिया कहाँ से कहाँ पहुँच चुकी है इसका तुम्हें क्या पता? समय बहुत आगे बढ़ आया है देवी!"

पं० देवदत्त भोजन कर चुके थे। फिर भी वह चौके में सँभलकर बैठ गये जैसे ममता की माँ के सारे आरोपों का समाधान आज कर देंगे। ममता इस बीच में वहाँ से चुपके उठ गई थी। उसके बापू उसकी प्रशंसा करना शुरू करते हैं तो लक्ष्मी, सरस्वती और शची की स्तुति एक साथ कर डालते हैं।

"आखिर मैं सुनूँ भी तो। कौन सा लड़का है जिसे तुमने ममी के लिये चुना है? जिसके ऊपर तुम्हारा इतना विश्वास है। आज तक तुम ने मुझे कुछ बताया नहीं। कुंडली वगैरह ले आये हो?"

"न मैं उसकी कुंडली मिलने की परवाह करता हूँ और न मुझे नाड़ी बनने की उतनी चिंता है। जीवन के सबसे महान सत्य को खंड खंड करके देखने का मैं अभ्यासी नहीं। सत्य को मैं सदैव सम्पूर्ण देखता आया हूँ। इस मामले में भी विश्वास है मुझसे चूक नहीं पड़ी। ईश्वर के ऊपर मेरा जैसा अडिग विश्वास है वैसा ही मानव आत्मा की पारस्परिक परितृप्ति पर है।"

ममता सामने की कोठरी में पिता के लिये पान बना रही थी। कान उसी ओर थे। वह कुछ कुछ अपने पिता का मंतव्य समझती थी।

फिर भी वह चाहती थी माँ के कान साफ-साफ सुन लें उसके वर का नाम क्या है और उसके पिता कन्या की आत्मा को कितनी गहराई तक समझ चुके हैं।

ममता की माँ खाना बना चुकी थी। वह पति के पीढ़े के पास और खिसक आई और बोली "आखिर बताओ भी। जब-जब बात हुई तब-तब पहेलियाँ सी बुझाते रहे हो। मैं तुम्हें खूब जानती हूँ। लड़की की ओर से जितने निश्चिन्त तुम ऊपर से दीखते हो उतने हृदय से नहीं हो। जैसी हार्दिक निश्चिन्तता तुम्हें है उससे तो यही लगता है कि जाकर टीका चढ़ा आने की देर है।"

"हाँ, लगभग यही बात है।"

"मगर वह है कौन? अपने गाँव में ऐसा है नहीं। यहाँ बिरादरी के घर गिने चुने हैं।"

देवदत्त सचमुच स्त्री की मूर्खता पर क्षुब्ध हो उठे। जीवन भर यह ऐसे ही आँख मूँदकर चलती रही। कोख में नौ महीने रखकर, जन्म देकर, अपने रक्त से पाल कर, लड़की को पान की तरह फेर-फेर कर भी उसके जीवन के सबसे बड़े चेतनाधार से अपरिचित है। जिस जीवन वृक्ष का आधार लेकर वह लतिका की भाँति लहराती हुई पल्लवित पुष्पित हुई उसे यह कैसे नहीं जान पाती? माँ के इस अज्ञान से स्वाभिमानिनी लड़की को कैसी व्यथा हो रही होगी, यह भी पण्डित जी समझ रहे थे। अत्यन्त शाँत स्वर में बोले, "मम्मी के लिये मैंने मोहन को तय कर रक्खा है। मुझे विश्वास है मेरी आशा पूर्ण होगी। उसने मम्मी को उसी प्रकार सँवारा है जैसे शिल्पी अपनी प्रतिमा को सँवारता है। लड़का भी अपने हाथ के बनाये हुये घरोंदे को नहीं बिगाड़ता। मम्मी उसके मन, प्राण, आत्मा में बसी है। उसे छोड़ कर मोहन संसार में चाहे जो पा जाय। हृदय की शांति और आत्मा का विश्राम न पा सकेगा।"

ममता की माँ की आँखों से जैसे एक पर्दा हट गया। दस मिनट तक चुपचाप पति की ओर देखती रही। फिर बोली—तुमने सोहनलाल

से इस सम्बन्ध में बातचीत की ? मैं समझती हूँ तुम्हारी यह मृगतृष्णा ही रहेगी। मोहन की माँ से इसकी चर्चा करूँ ?"

देवदत्त की व्यावहारिकता जोर मार उठी। "नहीं ! अभी किसी से कुछ कहना ठीक नहीं। मैं स्वयं सोहनलाल से बातचीत करूँगा।"

"मुझे मोहन की माँ से अधिक आशा है। अभी पारसाल वह बीमार पड़ी थी तब मेरी बच्ची ने सेवा में दिन रात एक कर दिया था। यदि कृतघ्न न होगी तो इन्कार न करेगी।"

"मैं आदमी का मर्म देखता हूँ। केवल पोथी पत्रा नहीं बाँचा करता। आदमी का मन और आत्मा भी बाँचता हूँ। मुझे मोहन की दृढ़ता पर विश्वास है।"

ममता भीतर ही भीतर उल्लास तृप्ति, आशंका. आनन्द और भय से फूली जा रही थी। क्या परमात्मा उसको इतना बड़ा सौभाग्य दे देगा ? उसने कहीं पढ़ा या सुना था परमात्मा किसी को कोई बड़ा ऐश्वर्य देता है तब उसकी कीमत वसूल करने की नियत भी मन ही मन रखता है। अपना रूप जब वह स्वयं शीशे में देखती थी तो हैरान रह जाती थी। क्या इतना रूप उसके पहले भी विधाता ने किसी लड़की को दिया है ? अपने इस रूप का मूल्य क्या विधाता को वह दे पावेगी जो यह महान सौभाग्य भी उसके ऊपर लादा जायगा। वह तो सच पूछो तो विवाह करना भी नहीं चाहती। ऐसी ही मोहन के चरणों पर पड़ी उससे ज्ञानदान लेते लेते आत्मा के भावुक रस में डूबी वह जीवन बिता देना चाहती थी। उसका हवा जैसा हल्का फुल्का मन जो बस उड़ना ही उड़ना जानता था, आज कुछ भारी सा होने लगा। एक अचीन्ही और अनदेखी झंकार उसके दिल पर लगने लगी। एक अज्ञात पुलकावली से उसका तन मन घिरने लगा। प्रेम का पक्षी जो उसके अस्तित्व के मूल में पैठा था, आज जैसे जीवन की फुनगी फुनगी पर चहक उठा।

माँ ने पुकारा। ममता साथ जाकर भोजन करने लगी।

## [ ४ ]

शाम को खाना खाकर मोहन घर से बाहर निकला।

गाँव में कहीं कोई अखबार नहीं आता था। केवल अपनी स्वल्प आय में से कुछ बचा कर पण्डित देवदत्त 'दैनिक प्रताप' मँगाते थे। सारा गाँव उसे पढ़ता था। गाँव के लखपती बनियों के लड़के आकर बेशर्मी से माँग माँग कर दरिद्र ब्राह्मण का अखबार पढ़ते थे और बीच में यदि ममता की एक झलक पा जाते थे तो अपना आना सफल मान कर मन ही मन घुलते चले जाते थे। आज दिन भर मोहन पड़ोस के एक गाँव में रहा था। वहाँ किसानों की एक बड़ी सभा होने वाली थी। प्राँतीय किसान सभा के सभापति आनेवाले थे। अखबार देखने के लिये वह ममता के घर की ओर चला। पण्डित देवदत्त हाथ की पुस्तक एक ओर रख कर बोले—"आओ भैया ? आज दिन में दिखाई नहीं पड़े।"

"चाचा ! आज मैं देवपुर चला गया था। कानपुर से वर्माजी आ रहे हैं। यहाँ के लोग किसी नेता के आगमन का उपयोग करना भी नहीं जानते। किसान सभा का इतना बड़ा नेता आवे और कुछ भी जागृति न फैले ! कम से कम दस हजार की उपस्थिति न हुई तो सफलता कैसी ? क्या 'प्रताप' भीतर है ? ममता को पुकारिये दे जाय।"

पुकारते ही "आई बापू" कहती ममता 'प्रताप,' चार बीड़े पान और तमाखू लाकर खड़ी हो गई।

मोहन का ऊँचा स्वर उससे छिपा नहीं रहता था। वह तत्काल पान बनाने बैठ गई थी।

"आज दिन में आये नहीं भैया ! कहाँ रहे ? मेरा अनुवाद और कम्पोजीशन भी तुमने शुद्ध नहीं किया। इस समय 'प्रताप' पढ़कर क्या करोगे ? कोई विशेष खबर नहीं है। क्यों न मेरा काम ही देख डालो।"

"आज मैं बहुत थका हूँ मम्मी ! पैर जैसे फटे जा रहे हैं। सिर्फ दस, पंद्रह मिनट अखबार देख कर चला जाऊँगा। तुम्हारा काम कल

देखूँगा। अपना काम रोज किये चलो। मैं देखूँ या न देखूँ। सब एक साथ देख डालूँगा। तुमने किस पर कम्पोजीशन लिखा है?"

"आज मैंने Honesty is the best policy पर लिखा है। बहुत अच्छा तो नहीं बन पड़ा परन्तु तुम्हें असंतोष भी न होगा। तुम देख ही न लो!"

"ला भाई। तुझसे जान बचने पाये तब न!"

"तुम किस झंझट में पड़े हो भैया! थके हो—चुपचाप आँख बंद कर लेटो। इससे कहो 'प्रताप' तुम्हें पढ़ कर सुनाये। तुमने अब इसे काफी पढ़ा लिखा दिया। कौन इसे पत्र की संपादकी करनी है।"

ममता दौड़ कर अपनी कापी और कलम दावात ले आई। एक मचिया भी लेती आई थी। मोहन उसी पर बैठकर उसका निबन्ध शुद्ध करने लगा। ममता नीचे जमीन पर घुटने टेककर प्रणत बैठ गई और ध्यान से मोहन के संशोधनों को देखने लगी। गुरू और शिष्या का यह आदान प्रदान देखने योग्य था। मोहन कभी मुँह से एक शब्द नहीं बोलता था। केवल काटता और लिखता जाता था। ममता एकाग्र बैठी सब समझने का प्रयास किया करती थी।

मोहन ने सहसा अपना व्रत तोड़कर कहा—"मैं तुम्हें कई बार बता चुका हूँ निबन्ध में विषयान्तर नहीं होना चाहिये। जिस विषय पर तुम लिख रही हो उसमें और स्त्री शिक्षा में कौन सा सीधा सम्बन्ध है? गंगा की गैल में मदार के गीत किसे अच्छे लगेंगे?"

ममता कुछ बोली नहीं। वैसी ही चुपचाप बैठी मोहन का मुख देखती रही। आज न जाने क्यों निबन्ध में उसका मन नहीं लग रहा था। केवल बीस तीस मिनट मोहन के पास बैठकर वह उसकी निकटता का सुख पाना चाहती थी। नहीं तो अपने थकेमाँदे भैया को वह हरगिज परेशान न करती। मोहन के लम्बे अस्त-व्यस्त बालों में धूल भरी थी। सफेद खद्दर की कमीज़ जो आज ही सुबह उसने निकाली थी, धूल से एक ही दिन में खाक़ी हो गई थी। बढ़ी हुई डाढ़ी के कुछ बाल धूल के कारण सुनहले हो चले थे। ममता के मन में एक बात

उठी और गिरी—उठी और गिरी। उसे वह बार-बार गिराती है पर वह उठ-उठ आती है। जीवन का शून्य अस्पष्ट भविष्य आँखों के सामने से हट कर नहीं जाता। एक दिन मोहन ने अपने मर्म का गोपन खोलते हुये उसे बताया था कि इलाहाबाद में पुलिस कैसे उसके पीछे पड़ी थी। देहात में भी दो एक बार जमीदारों के गुण्डे उसके पीछे लगे रहे हैं और वह भयंकर रूप से पिटते-पिटते बचा है—यह भी उससे छिपा नहीं है। इन सब बातों के ऊपर जीवन के सारे भेद और स्नेह को पलकों में मजबूती से ढाँपे सामने भैया की जो बल भरने वाली मूर्ति बैठी है वह आज क्यों उसके प्राणों में इतनी स्नेहाभिषिक्त, प्रणयाकाँक्षा से खिलती हुई विह्वलता बरसाये दे रही है।

पण्डित देवदत्त उठकर वहाँ से चले गये थे। गर्मी काफी थी। वे बैठक के सामने मैदान में चारपाई पर लेटे धीरे धीरे विनय पत्रिका के पद गुनगुना रहे थे।

ममता ने पास में पड़ा हुआ पंखा उठा लिया और हवा करने लगी।

ममता को लगा जैसे एक तेज, सफेद, चमकती हुई किरण उसके उठे हुये मुँह पर भरपूर पड़ी। मोहन ने कुछ कठोर स्वर में कहा—"तुम्हारा आज का निबन्ध कुछ ऊट-पटाँग है। इसी पर तुम्हें इतना नाज़ था। पंखा बंद करो। मुझे हवा की जरूरत नहीं।"

कभी कभी मोहन के कण्ठ स्वर से ममता पहचान लेती है कि अमुक बात उसे तत्काल मान ही लेनी है। पंखा झलना बंद कर, उसकी डंडी से जमीन खोदते हुये ममता चुप रही। उसकी कमल की फूली फूली धुली पंखड़ियों सी दोनों आँखें धरती पर टिकी थीं।

"आगे से यदि तुमने ऐसी अनाप शनाप चीज लिखी तो मैं हरगिज़ न देखूंगा। कभी कभी तुम्हें बेवकूफी के 'फिट' आते है मम्मी।"

इस "मम्मी" की स्नेह अरुण आभा उसके चेहरे को उजला कर गई। उसने धीरे से कहा—"आज तुम देवपुर गये थे। वहाँ तुम्हारे लिये जो खतरा है वह मैं जानती हूँ। वहाँ के जमींदार कैसे नृशंस और

पशु हैं यह तुमने मुझे बताया है। उस दिन जमुना तट पर तीन चार आदमियों की छाया देख कर तुम कितने सतर्क हो गये थे और तुम्हारी आँखों में कैसा हिंसक स्पंदन डोल उठा था—यह क्या सब मैंने नहीं देखा था। मैं आज दिन भर उखड़ी उखड़ी सी रही। निबन्ध तो उठते हुये जी को दबाने का एक बहाना था।"

मोहन कुछ ऊब रहा था। बोला—मम्मी! मुझे व्यर्थ की बातें सुनने का अवकाश नहीं। रात को मुझे अधिक से अधिक और गहरी नींद में सो लेना है। कल दिन भर वहाँ काम करने के लिये तैयार हो जाऊँ।

ममता क्रुद्ध उठी। "यदि तुम्हें मेरी बातें व्यर्थ लगती हैं तो मुझे कुछ नहीं कहना है। तुम किसी प्रकार पूरा कम्पोजीशन ठीक कर दो। न देखा जाय तो न देखो।"

मोहन फिर निबन्ध देखने लगा। ममता जाकर दो मिनट में पान बना लाई और उसी प्रकार अपने हाथ से खिलाकर बैठ गई। इस बार वह ध्यान लगा कर अंत तक देखती रही। लेख समाप्त होने पर मोहन लेट कर 'प्रताप' पढ़ने लगा। ममता भीतर से तकिया ले आई। मोहन के सिर के नीचे रखकर मनुहारभरे शब्दों में बोली—"मैं पैर दबा दूँ। आज तो तुम बहुत थके हो।"

"नहीं। कोई जरूरत नहीं। तुम जानती हो मैं व्यक्ति की व्यक्ति द्वारा सेवा पर विश्वास नहीं करता। उसे मैं घृणा की दृष्टि से देखता हूँ। बीमारी या अपाहिज अवस्था की बात दूसरी है।"

ममता वहीं पैरों के पास बैठ कर दीपक की झिपती हुई लौ को देखने लगी। रात को दस बज चुका था। बाहर मैदान में पण्डित देवदत्त अर्धजागृत और अर्धनिद्रित अवस्था में पड़े थे। सोना चाहते थे परन्तु गर्मी के कारण नींद नहीं आ रही थी। भीतर ममता की माँ बैठी चर्खा कात रही थी। तेजस्वी ब्राह्मण को पूजा पाठ से विशेष आय नहीं हो पाती थी। जो धर्म केवल बाहरी आचार विचार को ही सब कुछ समझना सिखाता है उसकी परिणति जिस धर्महीन निष्ठुरता में होती है,

वह पण्डितजी को मान्य न थी। देहाती समाज की स्वार्थपरता, षड़यंत्रपरायणता, प्रतिहिंसा तथा अनुभूतिहीन धर्मनिष्ठा में उन्हें वास्तविक धर्म बोध का सर्वथा अभाव दिखता था। यही कारण था कि गाँव में जहाँ आडम्बर और रूपक ही आदमी को पुजवाता है, विचार स्वातंत्र्य जहाँ आशंका की दृष्टि से देखा जाता है, देवदत्त आचार्य अपने लिये अधिक स्थान नहीं बना पाये थे। बाजारू ढंग के पूजा पाठ में उनका मन भी नहीं लगता था। महान आस्तिक और भक्त होते हुये भी वे लोकाचार के प्रदर्शन प्रकारों से सदा उदासीन रहते थे। यहाँ तक कि चमारों और मेहतरों को भी लोगों ने पण्डितजी की बैठक में एक ही टाट पर बैठे देखा था—बहुत अक्सर देखा था। केवल थोड़े से मौरूसी खेतों का ही उन्हें सहारा था। ममता की माँ को चर्खा कात कर कुछ उपार्जन करना आवश्यक था। ममता को अपने पढ़ने लिखने से फुरसत न मिलती थी। जब तब वह भी माँ का हाथ बँटाया करती थी।

मोहन लेटा प्रताप पढ़ रहा था और ममता उसके पैरों के पास कुछ हट कर बैठी दीपक की लौ का कम्पन देख रही थी। आज वह कितना देखे और कितनी देर तक देखे—समझ में नहीं आता। जी में एक खलबली सी मची है। जैसे कटोरे को किसी ने बाहर से छू दिया हो और उसके भीतर का पानी यहाँ से वहाँ तक काँप गया हो। एक अर्धज्ञात, अर्ध-अज्ञात आवेग के मीठे झोंके ने उसके सोये जीवनतल पर कैसी लालसा भरी सिहरन फैला दी है। उसका समस्त स्त्रीत्व जैसे आज कुटकर और छन कर आँखों में आ गया है। सामने लेटे मोहन पर जब उसकी पलकें झुकती हैं तो आँखों की सारी चमक एक पतली रेखा में आ इकट्ठा होती है और एक बहुत बड़े रस की आर्द्रता इस सिरे से उस सिरे तक फैल जाती है। बीच बीच में श्रमभार से जब मोहन की आँखें झिप जाती है तो उसकी बँधे विराम से चलनेवाली साँस कैसी प्यारी लगती है। इस प्यारी नींद की चौकसी करना कितना मीठा है। आज ममता को सब मीठा ही मीठा लगता है। जैसे सोलह

वर्ष पहले रक्खा गया उसका नाम आज ही सार्थक और सफल हुआ हो।

मोहन को अधिक आलस्य जान पड़ा। अखबार एक तरफ फेंक घुटनों के बल बैठी ममता के सिर पर हाथ फेरता हुआ वह बाहर चला गया।

## [ ५ ]

हवा बिलकुल बन्द थी। उमस के कारण नींद नहीं आ रही थी। मा ने कहा—"मम्मी! सो गई क्या ?"

"नहीं मा।"

"एक बात पूँछू बेटी! सच सच बताना। देख! मा से कुछ छिपाना नहीं होता। प्रश्न तो यह तेरे बापू को तुझसे करना था। वे विद्वान हैं, तू भी पढ़ी लिखी है। मैं निपट गँवार हूँ।"

"पूछो न। मेरी कौन सी बात तुमसे छिपी है। कब तुमसे मैंने दुराव किया है ?"

"तू मोहन से ब्याह करेगी ?" यदि तुझे मंजूर हो तो तेरे बापू को इलाहाबाद सोहनलाल के पास भेजूँ ? यदि तुझे ही न मंजूर हो तो आगे बात बढ़ाने से फायदा ?

ममता को मा के प्रश्न पर हँसी आ गई। "तुमने बापू को पसन्द करके ब्याह किया था। क्या नानी ने तुमसे भी यही सवाल किया था ?"

"मेरी बात छोड़ो। वह जमाना दूसरा था। हम छोटे थे। तू छोटी नहीं। अपना भला बुरा समझती है। काफी पढ़ लिख भी गई है। क्या तू अन्तःकरण से उसके साथ सुखी रह सकेगी। तू तो साथ उठती बैठती पढ़ती लिखती है। मैंने सुना है मोहन किसान मज़दूरों की सभामें बहुत भाग लेता है। सच है यह ? मार पीट में भी आगे रहता है।"

"सच है मा।"

"सुना है तुम दोनो जमना किनारे घन्टों बैठे रहते हो। दुनिया भर की इधर-उधर की बातें किया करते हो। भला पढ़ाने में किसी

बात पर नाराज़ होकर तुझे मारा है ?"

"शायद ही कोई दिन ऐसा जाता हो जब दो चार हाथ मेरे रसीद न करते हों।"

"तूने मुझे बताया क्यों नहीं। बेईमान का यहाँ आना बन्द कर देती। कौन तुझे नौकरी करनी है जो पढ़ाये ही जा रहा है। तू बन्द क्यों नहीं कर देती ?"

"विद्या बिना मार खाये थोड़े आती है मा ! मनुष्य जिस पर अपना अधिकार समझता है—जिसे प्यार करता है उसे ही तो मारता है।... कहते कहते ममता कुछ लजा गई।"

"तो तुझे हर तरह से पसन्द है।"

"मेरी पसन्द से क्या होगा ! वे मुझे पसन्द करेंगे ? इस योग्य समझेंगे कि उनके जीवन की साथिन बन सकूँ। पढ़ाना लिखाना एक बात होती है। दीन दरिद्र ब्राह्मण की लड़की समझ—पड़ोस के नाते भाईचारा मानकर—पढ़ने लिखने की तरफ मेरा असाधारण अनुराग देखकर—मेरी साधनहीनता, बापू का संस्कृत छोड़कर और कुछ मुझे पढ़ा सकने का असामर्थ्य जान कर उन्होंने मुझे पढ़ाया लिखाया।"

"तू तो हर साँस में नई बात कहती है !"

मैं ठीक कहती हूँ माँ ! इतने दिनों तक उनके पास पढ़ लिख कर उनको समझने की कुछ कुछ शक्ति मुझमें आगई है। विवाह से पुरुष नारी के पारस्परिक सम्बन्ध की जैसी भावना होती है उसका आभास मैंने आज तक उनमें नहीं पाया। उनके आदर्शों में—सपनों में—विवाह के लिये स्थान नहीं। जो अपने सामने एक नूतन सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का खाका रखता हो—जो मानव सम्बन्धों को एक नये आधार पर स्थापित करने का स्वप्न देखता हो—जो किसानों मजदूरों की—बल्कि समाज के समस्त वर्गों की विषमता को नष्ट कर देना चाहता हो—जो आमूल राजनैतिक और सामाजिक परिवर्तन का एक अग्रदूत बनने वाला हो उसकी ज्वाला का अनुमान तुम कर सकोगी ? उसे विवाह जैसी क्षुद्र बातों को सोचने का अवकाश कहाँ ?"

"तेरी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं। तू किताबी भाषा बोलती है। मुझे समझा न यह सब!"

"इतनी जल्दी नहीं समझोगी। समय धीरे धीरे समझा देगा। तुम सब जो सोचती हो और निश्चय माने बैठी हो मैं उसकी छाया भी नहीं पा सकती। मुझे उनकी महानता का जैसा बोध है वैसा ही अपनी लघुता का भी।"

"तू तो उसे देवता समझे बैठी है। तुझसे बड़ी चढी बातें करता होगा। तू भी उसी के स्वर में बोलने लगी है। भगवान का नया अवतार न कह दे!"

"अभी तो ऐसा न कहूँगी। पर तुम मुझसे यह सुन लो अम्मा! भगवान के अवतार लेने के पहले ऐसे दो चार पुरुषों का होना आवश्यक है। ऐसी ही पावन आत्मायें आकर पहले भूमि तैयार करती हैं। विनाश, पतन और अनय के गर्त में डूबी इस पृथ्वी को इस योग्य बनाती हैं कि 'संभवामि युगे युगे' की घोषणा करने वाले योगीराज की लोकोत्तर सत्ता का आविर्भाव हो सके। मानवता का पूर्ण उत्कर्ष होने पर ही संसार में देवत्व का अवतरण होगा—इतना तो समझ गई!"

पहले से भी बड़ी उलझन में फँस कर ममता की माँ निरुत्तर हो गई। इतना समझने में उससे चूक नहीं पड़ी कि ममता की इन अनबूझ बातों के भीतर कोई घनी पीड़ा—अन्तस्तल गीला करनेवाली वेदना की वाणी है। उसी का भीतरी बल उसकी सोलह वर्षीया किशोरी को थामे है। वही ममता की दीवानी, प्रेम प्यासी, अंधड़ का वेग लेकर आने वाली जवानी को गुमराह होने से बचाता चलता है और कुछ दूर के बाद आगे न देख पड़ने वाली ऊँचाई की ओर उसे लिये जा रहा है। गाँव की कौन सी लड़की है जिसके एक दो ऐब नहीं विज्ञापित हुए। जो उसे ही क्या जन जन को नहीं मालूम है। परन्तु रात को घन्टों जमुना तट पर एक तरुण के साथ अकेले बैठने वाली और उसके साथ खुल्लमखुल्ला निःसंकोच, निर्विकार भाव से ऊँचा मस्तक, ऊँची चितवन लेकर

गलियों में घूमने वाली इस स्वतंत्र विचारशीला लड़की में इतनी तेजस्विता कहाँ से आगई जो गाँव के प्रपंची विरोधियों को कुछ कहने का साहस नहीं होता ? किसी के प्रति एकनिष्ठ समर्पित होने से जीवन में कितनी सचाई आ जाती है ? भीतर के सत्य को अस्वीकार कर सके ऐसा सामर्थ्य किसमें है ? उनकी इच्छा हुई ममता के गले लग कर फूट पड़ें। ममता की बातों के पीछे उन्हें एक आर्तनाद सुनाई दिया, जैसे जीवन का चरम सत्य पाकर भी नहीं पा रही है और हाथ में आकर भी जैसे सब कुछ हाथ से निकला जा रहा है। उन्हें आसमानमें चमकते ज्वलंत तारों सा चमकीला दीखने लगा, ममता यदि जीवन में सुखी हो सकेगी तो मोहन को पाकर। जिसके लिये वाणी के नीचे स्तर में आत्मा का ऐसा आकुल क्रंदन उत्थित हो उठता हो—जिसके न पाने की या न पा सकने की निराशा जीवन की सब से गहरी जड़ों की आर्द्रता लेकर उत्कट श्रद्धा और भक्ति की शतधा बनकर बह चलती हो—उससे अब कैसे लड़की को अलग किया जा सकेगा ? यह समस्या भी माँ की संवेदनशील आत्मा में घूमने लगी। कोई जरूरी नहीं है कि ममता का विवाह मोहन के साथ हो जाय। मोहन के पिता की दृष्टि रुपये पर है। यदि वे न माने या मोहन ने खुद ही विवाह करने से इन्कार किया तब ? उन्होंने सोचा तो यह था कि मोहन के प्रति ममता ने असहमति या ठण्डापन दिखाया तो उसे समझा बुझाकर राजी करेंगी। अब प्रश्न दूसरा था। यदि किसी प्रकार मोहन के साथ ममता का विवाह न हो सका तो कैसे ममता के जीवन को नष्ट होने से रोका जा सकेगा ? जिसके प्रकाश में छोटा और निरीह बनने में ममता ने अपनी आत्मा का सारा अर्घदान चढ़ा दिया उसे खोकर उसका गतिपथ कैसे चलेगा ?

उन्होंने दुबारा ममता को पुकारा। वह सो चुकी थी।

## [ ६ ]

इसके बाद कई दिन तक ममता और मोहन की भेंट नहीं हुई। मोहन सुबह निकल जाता और एक पहर रात बीते घर लौटता। दिन

भर किसानों में घूम घूम कर अपने नेता के आगमन को सफल बनाने और उनके व्याख्यान में अधिक से अधिक लोगों को एकत्र करने का प्रयास करता। कभी चबेना चाब लेता। कभी किसी के घर में दो चार रोटी, मठा या गुड़ पा जाता। पान का कष्ट उसे वहाँ अवश्य होता था। परन्तु कार्य के उत्साह और लगन में कुछ जान नहीं पड़ता था। रात को घर लौटने पर भोजन करने के बाद फिर अखबार देखने जाने का उत्साह न होता। ममता के यहाँ से अखबार घर पर मँगवा लेता।

ममता के लिये यह बात नई नहीं थी। पहले भी ऐसे अवसर पड़े थे जब हफ्ते हफ्ते भर उसे मोहन से मिलने का अवसर नहीं मिला। किसानों में काम करने में मोहन को सुख और संतोष मिलता था। ममता से यह छिपा नहीं था। वह अपना काम रोज करके रखती जाती थी। जानती थी कि जिस दिन मोहन भैया बैठेंगे घण्टों में देख देंगे।

अंत में वह दिन आ गया। सुबह से ही पंडित देवदत्त को लेकर मोहन निकल गया। रात को आठ बजे के लगभग ममता अपनी कोठरी में पड़ी कम्पोजीशन की किताब पढ़ रही थी। उसे बापू और मोहन भैया का सम्मिलित कंठ सुनाई पड़ा। उसने उठकर बैठक खोल दी। बापू कह रहे थे—"यह मैंने आज जाना कि इतना तर्कसंगत और विचारोत्तेजक व्याख्यान भी इतना जोशीला और ओजस्वी बनाया जा सकता है। लगभग डेढ घंटे बोले होंगे भैया!"

"और ज्यादा चाचा! मैं तो घड़ी बाँधे था। दो घंटे से ऊपर ही बोले। व्यक्तित्व भी कैसा भव्य है!"

"बिना भीतरी शक्ति के व्यक्तित्व नहीं बनता भैया! मुर्दों में प्राण फूँकनेवाली उनकी हुँकार में जो इतना बल है वह बिना साधना के नहीं आया। सुना चलती हुई वकालत छोड़ कर राजनीति में आये हैं। चोटी के विद्वानों में इनकी गणना होती होगी?"

"हाँ चाचा! जैसा वाणी में बल है, वैसा ही कलम में। अँगरेजी और हिंदी में कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। मैंने सब पढ़ी हैं।

अबकी बार आपको भी लाकर दूँगा।"

ममता पास ही खड़ी सब सुन रही थी। मोहन ने कहा—"मम्मी! मुझे ज़ोर की भूख लगी है। सुबह थोड़े से चने और गुड़ खाकर पानी पिया है। अगर दो पराठे और साग यहीं लाकर दे दो तो क्या कहना है!"

"यहाँ क्या खाओगे भैया! चलो भीतर चलो। मैं भी तो खाऊँगा।"

"नहीं चाचा! खाना तो घर में बना रखा होगा। अभी दो पराठे खाना चाहता हूँ। मुझसे अब उठ कर बैठने को कोई न कहे। आप चाहे कुछ नाराज भी हों। मैं यों ही लेटे लेटे खाऊँगा। आप यकीन करें मैं पिछली तीन रातों मिनट भर नहीं सोया।"

ममता एक छोटी सी तश्तरी में साग, अचार और एक गिलास पानी ले आई। खाकर पानी पीते हुये मोहन ने कहा—"अब जरा पान खिलाओ। तुमने खाना खाया या नहीं? खा चुकी हो तो अपना काम ले आओ। कुछ किया या छुट्टी मनाती रहीं।"

ममता कुछ न बोली। तश्तरी और गिलास लेकर भीतर गई। पान तमाखू लाकर मोहन को दिया। एक ओर हटकर खड़ी हो गई। भीतर पंडित देवदत्त पीढ़े पर बैठे भोजन कर रहे थे। ममता की माँ उन्हें परोस रही थी।

पाँच मिनट मोहन आँखे बंद किये पड़ा रहा। पान चबाते हुये उसने आँखे खोलीं। ममता अब भी वैसी ही खड़ी उसकी ओर देख रही थी। मोहन को अपनी ओर देखते देख कर उसने आँखें नीची कर लीं।

"तुमने मेरी बात क्या सुनी नहीं? कोई उत्तर नहीं दिया। इधर तुमने कुछ काम किया? दिखाओ लाकर। खाना न खाया हो तो खा कर आओ। मैं अभी आराम से लेटा हूँ। आज लेटे लेटे ही 'करेक्शन्स' करूँगा।"

दो मिनट चुप रहने के बाद ममता ने झूठ ही कहा—"मैंने कुछ काम नहीं किया।"

"क्यों ? तुमने इतना समय नष्ट कर दिया ! अँगरेजी में न सही हिन्दी में कुछ लिखा होता । क्या कुछ पढ़ती रहीं ? हिस्ट्री में मुस्लिम पीरियड; खत्म किया या नहीं ?"

ममता फिर चुप रही ।

"इस तरह तो तुम कूप मंडूकी बनी रहोगी । मैं दस पंद्रह दिन यहाँ और हूँ । इस बीच में जो कुछ लिखना पढ़ना हो लिख पढ़ लो । फिर मैं कानपुर चला जाऊँगा । तुम्हारी छुट्टी ही छुट्टी है ।"

ममता फिर चुप ।

"बोलो ममता ! पढ़ने लिखने की बातचीत तुम्हें नहीं अच्छी लगती तो और कोई बात करूँ । तुम्हारा यह मौन मुझे कष्ट दे रहा है । मेरा तन और मन दोनों थके हैं । दिमाग पर धुँधले धुँधले से बादल छाये हैं । मुझे तुम्हारी बातों से बल मिलेगा । मेरे मुरझाये दिल दिमाग लहरा उठेंगे ।"

पुजारी की अस्वीकृत तिरस्कृत पूजा प्रतिमा के प्राणों पर छा गई । इस स्वर के सम्मुख—इस आवेदन के आगे कब ममता का मान टिक पाया है ? कब कब उसकी आत्मा मोहन के पैरों पर जाकर नहीं मँडराने लगी है । ममता के हृदय को अपने भीतर छिपा लेने वाला तनाव चुपचाप लौट गया । एक स्फूर्ति सी उसे लगी । वह आकर मोहन के सिरहाने घुटनों के बल बैठ गई ।

ममता का हाथ उठाकर मोहन ने अपने माथे पर रख लिया । चौंक कर ममता ने हाथ हटा लिया—"तुम्हारा माथा इतना गर्म क्यों है ? लगता है तुम्हें ज्वर है ।"

"नहीं मम्मी । ज्वर नहीं है । जेठ की तपती धूप में दौड़ धूप करने से जल रहा होगा । शरीर मेरा इतना साधारण है कि मैं अधिक परिश्रम नहीं कर सकता । परिश्रम नहीं करता तो स्वयं अपनी नज़रों में गिर जाता हूँ । अपनी आत्मा से तो बेईमानी चलती नहीं । क्या माथा ज्यादा गरम है ?"

"हाँ भैया ! बिलकुल जल रहा है । तुम्हारी तो देह भी गरम है ।

ज्वर की दशा में तुमने पराठे खाकर ठीक नहीं किया। दूध पी लेते तो अच्छा था। दो चार दिन कुछ काम न करना।"

"ज्यादा नसीहत नहीं। जानता हूँ तू सब समझती है। ला! एक दो 'एक्सरसाइज' तो देख लूँ। क्या सचमुच तुमने कुछ भी काम नहीं किया?"

"किया है और काफी किया है। पर अभी दो चार दिन मैं तुम्हें कुछ न करने दूँगी। तुम चुपचाप यहाँ लेटो या चलो मैं तुम्हे घर भेज आऊँ।"

"तुम मुझे घर पहुँचाओगी। यह एक ही रही! क्या रास्ते में कोई खतरा है या मैं इतना अशक्त हो गया हूँ कि जा भी नहीं सकता? तुम बैठो! मैं चला जाऊँगा। अभी कुछ देर यहीं लेटने दो। तकलीफ न हो तो कोई कविता सुनाओ या मीरा का कोई गीत।"

ममता ने उसी प्रकार बैठे बैठे गाना शुरू किया—

राना जी मैं तो गिरधर के घर जाऊँ—

गिरधर म्हारो साँचो प्रीतम नेह करूँ उर लाऊँ
रात रहे तब ही उठ जाऊँ भोर भये उठ आऊँ
मेरी उनकी प्रीति पुरानी उन बिन पल न रहाऊँ

मोहन ने आँखें मूँद लीं और सुनता रहा। ममता की वाणी में संगीत का आरोह अवरोह नहीं। परन्तु एक सधी वेदना की कातरता थी। जैसे आवेगहीन शुष्क रजनी की सारी मँडराती विह्वलता खिंची आ रही हो। पण्डित देवदत्त बाहर अपनी चारपाई पर लेटे सुन रहे थे। ममता ने गीत समाप्त कर कहा—"भैया! बस?"

"नहीं। एक और। अभी मेरा जो नहीं भरा।" ममता ने शुरू किया—

मैं तो साँवर के रँगराती

जिनके पिया परदेस बसत हैं, लिख लिख भेजत पाती
मेरा पिया मेरे हृदय बसत है, गुन्ज करूँ दिन राती

और सखी मद पी पी माती, मैं बिन पिये मदमाती
हरी प्रेम को मैं मद पीऊँ, छकी फिरूँ दिन राती

ममता की वाणी में कलावान के अलंकार नहीं हैं। आलाप के प्रसाधन भी नहीं हैं। परन्तु मोहन को लगा जैसे बेला के स्वर का सा घनत्व सम्पूर्ण वातावरण में छा गया है। पृथ्वी की आर्द्रता जैसे आकाश में वाष्प बन कर फैली हो। ममता की स्वरलहरी मोहन के सिर से लेकर पैर तक भरी आ रही थी। एक विचित्र रहस्यमय भावना में वह लवलीन होता जा रहा था। वीणा के तने हुए तारों की भाँति उसका मन झनझना रहा था।

धोती के आँचल से माथे का पसीना पोंछते पोंछते ममता रुक गई। उसने देखा मोहन के माथे पर भी पसीने की टूटी टूटी लकीरें उभर आईं। ज्वर की गर्मी से जलते गोरे मस्तक पर जैसे कच्चे हरे बाँस की वंशी की शीतलता छहरा उठी।

"भैया! बस न? अब तुम या तो यहीं सोरहो और मैं घर में जाकर मा से कह आऊँ। जाना हो तो जाओ।"

मोहन उठकर चल पड़ा। बैठक की साँकल बाहर से बन्द कर ममता भी पीछे पीछे चली। पंडित देवदत्त चारपाई पर पड़े पड़े सो गये थे। मोहन ज्वर की तीव्रता में आगे बढ़ता जा रहा था। पीछे किसी की पदचाप सुनकर बोला "कौन?"

"मैं हूँ।" ममता ने आगे की ओर झपट कर उसके ठीक बगल में आकर कहा।

"मैंने तो तुम्हें मना किया था। ऐसे अँधेरे में बिना लेम्प के आने की जरूरत? एक दफे का कहना क्यों नहीं मानती हो। जाओ लौटो। जबतक तुम घर पर नहीं पहुँच जाओगी मैं यहीं खड़ा रहूँगा।"

ममता पीछे लौट पड़ी।

[ ७ ]

सुबह नौ बजे ममता हाथ में दो एक किताबें लेकर मोहन के

यहाँ आ पहुँची। मोहन की माँ ने देखते ही अत्यन्त स्नेह से कहा—"आओ बेटी! आओ। आज किधर भूल पड़ीं?

"भैया की तबियत कैसी है? कल रात को उन्हें तेज़ बुखार था। नींद आई या नहीं?"

"कहाँ बेटी! रात भर बेचैन रहा। सुबह होते ही फिर निकल गया। बैठो। आता ही होगा। ममता की किताबें उलटते हुए बोलीं—"तुम तो तार वगैरह पढ़ लेती होगी बेटी!"

ममता ने मुस्कराते हुए कहा—"माँ! तुम्हारे गाँव का पोस्ट मास्टर जितना पढ़ा है और अँगरेजी जानता है उससे मैं ज्यादा पढ़ी हूँ।"

"तूने भैया की सारी विद्या उतार ली है। मुझसे एक दफे कह रहा था जिस दर्जे से पास होकर आगे आता है उसकी सारी किताबें तुझे यहाँ दो महीने में तैयार करा देता है। है न बिटिया?"

"मैंने कोई परीक्षा नहीं पास की। पिछले साल इंट्रेंस की परीक्षा में बैठने की बात थी। अच्छे नम्बरों से पास हो जाती। भैया ने मना कर दिया। उन्हें मेरा परीक्षा पास करना नापसंद है। जब उनकी आज्ञा नहीं हुई तब मैंने जोर नहीं दिया। मुझे करना ही क्या है? अभी तो मैं कितना जानती हूँ कितना नहीं जानती यह कुछ ही लोग जानते हैं। अवसर पड़ने पर मैं जो जानती हूँ उसे भूल भी जा सकती हूँ। परीक्षा पास करने की सनद मिलने पर जीवन में ऐसी स्थिति भी आ सकती है जब निबाह होना असंभव हो जाय। अभी इतना पढ़ लिख लेने पर भी मुझे निरक्षर बन जाने में क्या देर लगेगी? भैया तो मेरे बड़े बुद्धिमान हैं न! मेरे भविष्य की अंधी गति को देखकर ही उसे और दाहक न बनाने के लिये शायद उन्होंने मुझे परीक्षा में नहीं बैठने दिया। तब बापू ने काशी की प्रथमा में बैठने के लिये दबाव डाला तब मैंने इन्कार कर दिया।"

मोहन की माँ ने स्त्री हृदय की—यौवन के गहरे और टूटने की

सीमा तक आकर न टूटने वाले—रुक रुक जाने वाले इस स्वर की ललकार को—आहत चुनौती को—पूरी पूरी तरह समझ लिया। "नहीं बेटी ! तुम ऐसी बातें क्यों करती हो ? परीक्षा पास करने में क्या रक्खा है ? मूल बात है योग्यता और ज्ञान। वह अगर पास है तो परीक्षा की सनद हो चाहे न हो। तुम्हें नौकरी करनी नहीं। परीक्षा पास करने की सनद नौकरी की तलाश में काम देती है।"

"नौकरी करने की नौबत भी आ सकती है माँ ! मानव के जीवन की गति कितनी अप्रतिरोध्य है क्या तुमसे छिपा है। जीवन के चारों ओर—विशेषकर स्त्री के जीवन के चारों ओर ऐसा सघन वन है कि कभी कभी किसी ओर मार्ग नहीं सूझता। वह यहाँ जाती है—वहाँ जाती है परन्तु असलमें एक ही जगह जुँये में बँधे कोल्हू के बैल की तरह चक्कर मारती रहती है। ऐसी स्थिति में कौन जाने कब क्या न करना पड़ जाय।"

× × ×

थोड़ी देर में सीता चुन्नू मुन्नू को साथ लिये जमना किनारे से लौटी। उसने आकर जो संवाद दिया उसने सब को आशंकित कर दिया। मोहन घर से निकल कर जमना किनारे गया था। घाट पर बैठा हुआ ठेकेदार से बात कर रहा था। गाँव का एक नवयुवक जल में डूबने लगा। मोहन बिना अपने ज्वर का ख्याल किये पानी में कूद पड़ा। उसको बचा कर जीवित निकाल लाया। देर तक जल में रहने के कारण उसे वेग से जूड़ी आ गई है। बीरबहूटी सी लाल आँखें लिये वह पीछे आ रहा है।

ममता ने स्थिर चित्त से सब सुना। चुपचाप चारपाई बिछाने लगी। मोहन डगमगाते हुए आया। सामने चारपाई बिछी देख लेट गया। पीछे पीछे दो मल्लाह आ रहे थे। उन्होंने पूरी रिपोर्ट दी। वह लड़का जो डूब रहा था मोहन को भी ले डूबा था। दोनों मल्लाहों ने कूद कर उन्हें निकाला था। मोहन के पेट से काफ़ी पानी निकला था। इस समय वह अचेतन अवस्था में पड़ा प्रलाप कर रहा था।

लगभग तीन घंटे बाद मोहन ने आँखें खोलीं। ममता को सामने देखकर पूछा—"मा कहाँ है ?"

"शीतला देवी की पूजा करने गई हैं। आज उन्होंने निर्जल व्रत रक्खा है। रोकने पर भी ऐसी धूप में चली गईं।"

"अरे! अंध विश्वास की हद हो गई! जलती जमीन में, ऐसी कड़ी धूप में, दो कोस जाँयगी और लौटेंगी। सुबह से कहाँ गयी थीं ? अभी तक पानी नहीं पिया! तुम क्या बेहोश थीं ममता ? तुमने उन्हें रोका नहीं ? मेरी तो झपकी लग गई थी। भला शीतला माई में और मेरे बचने में क्या सम्बन्ध ? यदि वे मल्लाह न कूदते तो क्या शीतला माई मुझे और जगन को खुद आकर बचातीं या उनके बाहन आकर रक्षा करते ?"

"मैं क्या कहूँ भैया! उनकी आँखों में जो एक असह्य-सी—अप्राप्त-सी—अत्यन्त अपरिचित किन्तु अत्यन्त प्रिय-सी अनुभूति थी उसकी ओर मुझसे देखा नहीं गया। मैंने दो बार उन्हें जाने से मना किया। बोलीं—"तू है। सीता है। भैया को देखना। मैं वहाँ जाऊँगी। जब तक मैया के पैरों पर सिर रखकर जीभर रो न लूँगी तब तक मेरी आत्मा दबी दबी रूँधी रूँधी सी रहेगी। उन्हीं की मानता मान कर मैंने उसे पाया था। आज उसे वापस लेते लेते वे जाने क्या सोच कर मुझे फिर दे गईं। मैं आज के दिन उनके दर्शन भी न करूँ यह कैसे हो सकता है ?

स्नेहभरी दृष्टि से देखते हुए मोहनने कहा—"शिक्षा और अशिक्षा में यही अतर होता है मम्मी! आज तो तू बड़ी प्यारी लग रही है। आत्म-व्यथा जब चेहरे पर फूट आती है तो सौन्दर्य कितना नम्र हो जाता है और नम्रता भी तब कैसी सुन्दर लगती है। तूने कुछ खाया पिया या नहीं ? तेरा मुँह इतना सूखा सूखा क्यों है ? मैं तो तेरे पास लेटा हूँ।"

ममता सिर नीचा किये बैठी रही। उसकी आँखों में जल भर आया

था जिसे वह मोहन की आँखों की ओट रखना चाहती थी। न जाने कब से यह आँसू उसके स्वप्नों का पीछा करते चले आरहे थे। मोहन का ज्वर वास्तव में घटा नहीं था। ममता का मुँह कोमलता से ऊपर उठाकर मोहन ने अपनी ओर खींचा। आँखों में पैठ कर भीतर तक धँसने का प्रयास किया। मोहन से चार आँखें होते ही ममता की रुलाई फूट पड़ी। हिचकियाँ रुक गईं परन्तु आँखों की टप टप बूँदें नहीं रुकीं।

"तुम बड़ी पगली हो मम्मी! मैं तुम लोगों से परेशान हूँ। एक वह है जो ऐसी दुरन्त दोपहरी में चार मील जलती बालू में चलकर देवी की पूजा करने गई। दूसरी तुम हो जो मेरे सिरहाने बैठी अकारण रोती हो। मैं कहता हूँ अगर आज मैं डूब ही जाता तो तुम्हारा क्या था? जीवन में न जाने कितने लोगों से हम मिलते और बिछुड़ते हैं। मैं इतने दिनों तक तुम्हारे साथ रह लिया यही क्या कम है? मैं यह संतोष तो ले जाता मैंने तुम्हें जिस उज्जवल पथ-ज्योति की ओर प्रवाहित कर दिया है उसे पाकर एक समूचा जन्म सफल होजाता है। धरती में गड़कर धरती के तल को जरा ऊँचा करजाना—भविष्य की पुष्टि के लिये जीवन और वर्तमान को होम देना—अपने को स्वाहा कर देना तुम पहचान चुकी हो। तुम्हें कायरता कैसी?"

ज्वर के आवेग में मोहन कहता गया—"मानता हूँ तुम्हें मुझसे अपार स्नेह है। बचपन से ही मेरे पास तुमने अधिक से अधिक समय बिताया है—जीवन और सत्य के नये नये प्रयोग करने की दीक्षा पाई है। समाज से अलग न होकर—उसके भीतर रहकर—उसकी मंगला-कॉंक्षा में टूटते रहने का आत्मबोध तुम्हें है। परन्तु व्यक्ति से इतना मोह क्यों? व्यक्ति आते हैं, चलें जाते हैं—वर्ग बनते हैं, बिगड़ जाते हैं—जीवन जुड़ते हैं, टूटते हैं—श्रोत उमड़ते हैं, सूख जाते हैं मगर—मगर क्राँति की अंतःशक्ति तो अनश्वर है—आत्मबलिदान की भावना—विद्रोह का पूजाभाव तो शाश्वत है। व्यक्ति को समष्टि के सम्मुख समझा ही क्या जाय? महासागर के सामने एक बिंदु के लिये

तुम रोती हो !"

ममता ने अपने को बहुत रोका है। आज भी वह अपने को रोकेगी। मोहन की सारी बातें सुनेगी। अपने अंतर को विद्ध हो जाने देगी। अपने भीतर की घोर मारक अपूर्ति और दिन प्रतिदिन उत्कट होने वाली अखंड शून्यता को सहन करेगी।

× × ×

चौथे दिन खाना खाकर चारपाई पर लेटे लेटे मोहन के पिता ने कहा—"आज तुम दिन भर कहाँ रहे ? मैं सुबह से आया पड़ा हूँ और तुम गायब !"

"खुशहालपुर के जमींदार किसानों पर बड़ा अत्याचार कर रहे हैं। उनकी लड़की की शादी है। गाँव में हल पीछे पाँच रुपये वसूली का उन्होंने हुक्म दिया है। किसान के लिये यह बड़ी रकम है। मालूम हुआ लड़की की शादी एक बड़े तालुकदार के यहाँ होरही है। पन्द्रह बीस हज़ार का खर्चा कूता जा रहा है। कहाँ से पूरा होगा ? नकद पैसा उनके पास है नहीं। किसानों की सभा हुई है। मैंने साफ साफ कह दिया है किसी भी हालत में तुम्हें यह बेगार नहीं देनी है। तुम खेत जोतते हो—बदले में लगान देते हो। जमींदार को इसके अतिरिक्त तुमसे और कुछ वसूल करने का अधिकार नहीं है।"

"तुम विद्यार्थी हो। तुम्हें ऐसी उग्र राजनीति से क्या मतलब ! किसान जमींदार का सेवक है। जमींदार उसका स्वामी है। जमींदार का काम उसका काम और जमींदार की इज्ज़त उसकी इज्ज़त है। जमींदार की लड़की की शादी यदि एक बड़े ताल्लुकेदार के यहाँ होती है तो उसकी समस्त रियाया का यह कर्तव्य है कि उसके सम्मान की रक्षा करे। उसकी 'रेपुटेशन' को ठेस न लगने दे।"

"आपका मतलब यह है कि जमींदार जोंक की तरह किसानों को चूसता चले। ताली दोनों हाथों से बजती है। जिस वर्ष किसानों की फसल मारी जाती है—भूमि से अभीष्ट पैदावार नहीं होती उस समय जमींदार क्यों नहीं लगान बिलकुल माफ़ कर देते ? यह तो फिर

भी बनियागीरी की बात रही। मेरा कहना तो यह है कि जमींदार एक व्यर्थ की चीज़ है। सरकार और कर-दाता के बीच में इस अनावश्यक कड़ी के रहने की अब आवश्यकता ही क्या है? किसान कोई रियायत नहीं चाहता—कोई भीख नहीं माँगता। वह चाहता है अपने अधिकारों की रक्षा। वे दिन बीत गये बाबूजी! जिनका आप अभी तक सपना देख रहे हैं। आज जमींदार के स्वार्थ अलग हैं। किसानों के स्वार्थों का उनसे मौलिक संघर्ष है। मुझे वह खाका साफ दीख रहा है जिसमें स्टेट की सारी जमीन होगी और किसान का सीधा सम्बन्ध स्टेट से होगा। जमींदारी पूँजीवादी व्यवस्था का अत्यन्त विकृत रूप है। उसे जल्दी से जल्दी समाप्त होना है। समाज अपनी छाती पर पलनेवाले इस महान और घातक पातक को सहन नहीं कर सकता। यह ठीक है अभी मेरी वह स्थिति नहीं आई कि मैं खुलकर राजनीति में भाग ले सकूँ। पर मेरे जीवन का अन्तिम ध्येय वही है। मैं अनुभव करता हूँ मैं एक सजीव शक्ति का फड़कता हुआ कण हूँ।"

"सुनती हो जी! अपने लायक बेटे की बातें! इसीलिये पैदा किया, पाला पोसा और पढ़ाया लिखाया कि यह किसान सभा में काम करे। हमारा अब कोई मोह इसे नहीं है। बुढ़ापे में हम दूसरों के मोहताज रहेंगे। आदमी पहले घर में दिया जलाता है तब मन्दिर में।"

"मेरा मन्दिर मेरा यह देश और समाज है। यदि वही अन्धकार-ग्रस्त रहा तो दो चार दस बीस घरों के टिमटिमाते चिरागों से फायदा? वे कब तक इस अन्धकार के व्यूह के सामने टिकेंगे? मेरे अकेले जाने से क्या होता है। चन्दू नन्दू हैं। वे आपकी सेवा करेंगे।"

'जब तेरा यह हाल हुआ तो उनका कौन ठिकाना"—माँ ने कुछ भारी कंठ और मन से कहा। "तू इतना समझदार—पढ़ा लिखा होकर हमें ठुकरा देगा। वे तो बच्चे हैं। आखिर हैं तो तेरे ही भाई। यदि ऐसे ही बहक गये तो हमारा बेड़ा कैसे पार होगा?"

"मैं तुम्हारा विवाह ठीक कर रहा हूँ। पं० शिवनन्दन लाल मिश्र प्रतापगढ़ के 'लीडिंग' वकील हैं—उनकी इकलौती कन्या है। सुन्दरी,

ढ़ी लिखी और सुशील। मेरे पास वे चार बार आ चुके हैं। अभी दिन हुए मुझसे मिलकर गये हैं। कम से कम दस हजार रुपये गे। इलाहाबाद में तुझे अपने खर्चे से आगे पढ़ावेंगे। इसी लग्न के लये ज़ोर दे रहे थे। मैंने माघ के लिये टाल दिया। मैं लड़की देख चुका हूँ। मुझे पसन्द है। तुम भी चाहो जाकर देख आओ।"

सीता और माँ को यह नहीं मालूम था—माँने कहा—"तुम लड़की देख आये पर मुझे नहीं बताया !"

सीता ने स्वर मिलाया—बाबूजी आधी बात बताते हैं—आधी मन में रख लेते हैं। कैसी लड़की है बाबूजी। पढ़ी लिखी है या मेरी तरह........।

"नहीं अगले वर्ष एन्ट्रेंस का इन्तहान देगी। पास कर लेगी। इस साल नहीं बैठी ! बड़ी सुन्दरी है। उस के आने पर घर में उजाला हो जायगा ! दिया जलाने की जरूरत नहीं पड़ेगी !"

"मेरे ऐसे भाग्य कहाँ ? जब घर में आजाय तब जानूँ। शादी के नाम पर ही यह भौंह टेढ़ी कर लेता है। अब देरी न करो। माघ में मोहन का विवाह करके बैसाख में सीता का भी विवाह करदो। फाँसी कटे।"

"तुम सयानी लड़की के मुँह पर गाली देती हो। शर्म नहीं आती तुम्हें।"

"गाली दे दी ! मैंने क्या बेजा कहा जो तुम इतने लाल पीले पड़ रहे हो ?" सीता ने उत्सुकतापूर्वक कहा—बाबू ! लड़की का फोटो मँगवा लो। मैं भी देख लूँ—अम्मा भी देख लें।"

हाँ हाँ ! फोटो आ जायगा। मोहन ! तुम मेरे साथ चलोगे और इलाहाबाद में पढ़ोगे।"

"मैं निश्चय कर चुका हूँ बाबूजी ! मैं कानपुर में पढ़ूँगा ! किसी बाहरी आदमी से क्या मैं आप से भी सहायता नहीं माँगूगा। मुझे वहाँ कुछ 'पार्ट टाइम' काम मिल जायगा।"

"तुम नहीं समझते। इलाहाबाद यूनिवर्सिटी की बात और है। सरकार

और जनता दोनों में उसका मान है। वकील साहब कह रहे थे प्रान्त के अच्छे और ज़हीन लड़के वहां जाते हैं। उनकी ऐसी इच्छा है। उसका पालन करना भी हमारे लिये ज़रूरी है।"

"कौन वकील साहब—उनसे मुझे क्या मतलब? मैंने अभी आपसे कहा न कि मैं स्वयं उपार्जन करूँगा और पढ़ूँगा। किसी से एक पैसा नहीं लूँगा। मेरी शादी के लिये आप किसी को वचन न दीजियेगा। अभी आठ वर्ष तो इसका प्रश्न ही नहीं उठता! बाद में मैं सोचूँगा और जीवन की जैसी स्थिति देखूँगा वैसा निर्णय करूँगा। आप विश्वास कीजिये आपकी आज्ञा और सहमति के बिना मैं विवाह नहीं करूँगा। मेरे चरित्र पर कभी आप को कहीं कोई आक्षेप सुनने को नहीं मिलेगा।"

"मैं जानता हूँ बेटा! मैं ही क्या सभी लोग जानते हैं तुम्हारे चरित्र की दृढ़ता को। मुझे इस सम्बन्ध में कोई बदगुमानी नहीं है। मैं तो चाहता था तुम्हारा विवाह होने पर दस पाँच हज़ार रुपये नक़द हाथ में आजायँ तो सीता का विवाह कर दिया जाय। उस दिन वकील साहब कह रहे थे कि जो हाई स्कूल में पूरे सूबे में अव्वल आवे वह इन्टर में सेकेन्ड क्लास पावे यह समझ में नहीं आता। मैं भला उनसे क्या कहता कि तुम्हारा सारा समय और दिमाग तो किसान मज़दूर ले लेते हैं। शहर में रहोगे तो—देहात में रहोगे तो—कहीं भी तुम्हें वह शान्ति और एकाग्रता नहीं मिलती जो तुम्हारे जैसे होनहार विद्यार्थी के लिये आवश्यक है।"

"यह मेरे जीवन का अभिन्न अंग है। मुझे फर्स्ट डिवीजन नहीं मिला इसका दुःख मुझे नहीं। मैं इलाहाबाद में नहीं अब कानपूर में पढ़ूँगा। वकील साहब ने मेरे पढ़ने का खर्च देने को कहा तो आपने कैसे इसे सहन कर लिया।" एक भस्म कर देने वाला गर्म निःश्वास छोड़ते हुए मोहन बोला।

"हर्ज ही क्या है? जब उन्होंने तुम्हें अपना दामाद बनाना

स्वीकार किया तभी मैंने उनकी यह बात मानी। कोई दूसरे के लिये थोड़े करता है।"

मोहन उठकर चला गया। पिता कुछ और कहना ठीक न समझकर चुप हो गये! सीता को बुला कर मोहन ने कहा—मेरी चारपाई बाहर चबूतरे पर बिछाना। ऊपर अगर बाबू जी के पास बिछाओगी तो रात को फिर वही वकील साहब और शादी—वकील साहब और शादी! मुझे घोड़ा या गधा बना रक्खा है। बाक़ायदा बाज़ार में खड़ा करके नीलाम न कर लें!

सीता ऊपर छत पर बिस्तर ठीक करने गई तो मुन्डेर के पास खड़ी होकर दिगन्त तक फैले खेतों, तालाबों और खलिहानों को देखने लगी। सामने कुछ फर्लांग पर जमुना की रेती और उसके आगे कृश-गात धारा जो पावस के विरह में जैसे चीत्कार कर रही थी। बादल आते जाते रहते थे और छींटा भी देते थे मगर पानी अभी खुलकर नहीं बरसा था। आस्मान पर अज़ीब वीरानापन छाया था। बादलों के अभाव में सम्पूर्ण व्योम शुष्क-सा लगता था। सीता के पिता और माँ वहाँ आकर बातचीत करने लगे। सीता अनिच्छित भाव से उतर कर चौके में चली आई।

"क्या मोहन की शादी के सिलसिले में ममता की माँ से तुम्हारी बातचीत हुई है।"

"कैसी बातचीत? मोहन के विवाह का बावेला तुम्हीं ने आकर मचाया है। आदमी कहता कम है करता अधिक है। तुमने अभी से गाना शुरू कर दिया।"

"आज देवदत्त ने मुझसे ममता और मोहन के ब्याह की बात उठाई थी।"

तुमने क्या कहा?

"मैं क्या कहता। वकील साहब को वचन दे दिया है यह तो कहा नहीं। यही कहा मोहन अभी विवाह के नाम पर बिगड़ जाता है। आखिर जल्दी क्या है। बेचारे का चेहरा उतर गया! मैंने यह भी

कहा—मोहन ममता को छोटी बहिन की तरह मानता आया है। छुटपन से वह उसे भैया कहती रही है और उसके आसपास छोटी बहिन की तरह मँडराती पली है। सीता को भी मोहन उतना प्यार नहीं करता जितना ममता को। ऐसी दशा में आप ऐसे सम्बन्ध की कल्पना कैसे करते हैं। मैं इसे अनुचित समझता हूँ।"

सीता की माँ साँस रोके सब सुन रही थी। बोली—"तब क्या बोले"?

"घन्टों घूम घुमा कर वही बात करते रहे। मेरी लड़की का जीवन नष्ट हो जायगा। आपने यदि मेरा उद्धार न किया तो कहीं का न रहूँगा! मैं बड़ी आशा लगाये बैठा था। सारा गाँव यह सोचता था दोनों का विवाह होगा। दोनों इसीलिये इतने बड़े होजाने पर भी मिलते जुलते रहे हैं। यह विवाह न होने से बड़ी बदनामी होगी—ममता को बड़ा धक्का लगेगा। उसकी माँ तो खाना पीना छोड़ देगी—यही सब पंडिताऊ लटके छोड़ते रहे। उन्होंने कहा—मोहन की माँ की भी ऐसी इच्छा है। पर तुम सोचो—कुल में धाकर, पुरोहिती वृत्ति और देने को पास में टका नहीं। बहुत करेंगे हज़ार पाँच सौ बटोर लेगें --ज्यादा का डौल है नहीं।"

"मैंने तो यही कहा था कि लड़का और उसके बाप जानें। मैं किस गिनती में हूँ। हाँ! ममता जैसी रूपवती, बुद्धिमती और गुणशीला लड़की को पाकर कोई भी सास अपने भाग्य की सराहना करेगी—यह मैंने ज़रूर कहा था। सो अब भी कहती हूँ। रुपया पैसा उनके पास नहीं है मगर लड़की तो हज़ारों में एक है। तुम्हारे लड़के के रोम रोम में बसी है। भैया भैया कहने से क्या होता है। आखिर और क्या कहे? शहर में होती तो मोहन बाबू कहती।"

"मोहन उससे प्रेम करता है?"

"प्रेम न मैंने किया है न जानूँ क्या होता है। रात को घन्टों उसे लेकर जमना किनारे बैठा रहता है—दिन में घन्टों पढ़ाता लिखाता है—देवी की प्रतिमा की तरह सँवारता रहता है। वह भी उसे देवता से कम नहीं समझती। मेरी इतनी उमर होने को आई पर न ऐसा लड़का

देखा सुना न ऐसी लड़की।"

"यहाँ तक नौबत आ गई है। मुझे कुछ पता नहीं। न तुमने कभी इस सम्बन्ध में कोई चर्चा की।"

"मैं बेवकूफ नहीं जो उसकी शादी की जल्दी मचाये हूँ। मैं भी जानती हूँ जब लड़का खाने कमाने लगे तब उसकी बहू आनी चाहिये। मैं क्या नहीं देखती इसी गृहस्थी को सँभालते और सहारा देते देते तुम असमय में ही बूढ़े हो गये। अभी तो सब पड़ा है। मगर यह सब तो अब ख़त्म होना चाहिये। माना तुम्हारा चालचलन बड़ा अच्छा है—तुम दूध के धोये हो—यह भी माना कि वह सती सावित्री है और सचमुच है भी। इधर तुमने तो बहुत दिनों से उसे देखा नहीं। ऐसी सुन्दरी और तेजस्विनी तो गौरी और चित्रा भी न रही होंगी। उससे बातें करते करते सारी देह काँप जाती है—आँखें नीचे झँप जाती हैं। जैसे सिर से पैर तक आग ही आग है। मगर दुनिया यह सब कहाँ देखती है। पाप तो सीता जैसी सती को भी लग गया जो जगत-जननी थीं। इनकी क्या बिसात है। रात को ८-९ बजे एकान्त में नदी किनारे जाना आना। किनारे बैठ कर बेसिर पैर की बातें करना। दुनिया तो यह सब समझती बूझती नहीं। ऐसी घनिष्टता और एक दूसरे के प्रति चंचलता देखकर यदि समझे कि दोनों का विवाह होने वाला है तो आश्चर्य क्या ?"

"तुमने रोका क्यों नहीं ? तुम हो किस मर्ज़ की दवा ? मैं वहाँ परदेस में नौकरी करूँ या यहाँ बैठ कर बेटा बेटी का चालचलन सुधारूँ। न तुमने रोका—न मुझ से कभी कुछ कहा। अरे ममता की माँ को ही समझा दिया होता !"

"मैं सयाने लड़के लड़कियों से ऐसी बातें नहीं करती। अपने लड़के पर मुझे विश्वास है। जो सड़क पर आँख उठा कर गाँव की किसी औरत को नहीं देखता उसके लिये अपने मन में ऐसी बात कैसे लाऊँ ? लड़की को मैं बचपने से चीन्हती हूँ। सिवाय अपने पढ़ने और मोहन भैया को छोड़कर दुनिया की किसी बात से

उसे लगाव नहीं। कभी आजतक मैंने उसके मुँह से तीसरी बात नहीं सुनी। देवी है—और तुमसे क्या कहूँ! जिस घर में जायगी उसकी पीढ़ियाँ तर जाँयगी।"

"तुम कहो तो वकील साहब को जवाब देकर यही सम्बन्ध करूँ—व्यंग करते हुए मोहन के पिता ने कहा।

"मैं क्यों कुछ कहूँ? तुमने आजतक मेरी कोई बात मानी है? फिर यहाँ तो मैं और तुम एक से विवश हैं। लड़का ऐसा जिद्दी और पत्थर मिज़ा है जिसे दुनिया में किसी के प्रति कोई ममता मोह है ही नहीं! वह खुद तुम्हारा दिमाग ठीक कर देगा। मैं क्यों बीच में बोलूँ?"

"फिर वहीं गया क्या?"

"नहीं! वह झूठ नहीं बोलता। इस समय तो जहाँ कह गया है वहीं गया है। झूठ वह बोला करता है जिसके मन में छल छिद्र होता है। जो जीवन के प्रत्येक क्षण में निष्कपट है उसे झूठ बोलने की जरूरत?"

"इसी ममता के कारण वह विवाह करने से इन्कार कर रहा है? ऊपर से चाहे जितनी सिद्धान्त की बातें करे भीतर अगर प्रेम है तो ढुलक ही पड़ेगा। तुम्हारी बातें सुन कर उसके इन्कार करने का रहस्य समझ में आरहा है। परन्तु यह सब ठीक नहीं है। मेरी सारी उमंगों पर पानी फिर जायगा। वकील साहब जहाँ तक पढ़े, पढ़ाने को तैयार हैं। इसकी प्रतिभा पर मुग्ध हैं—एक बार देखा भी है। विलायत जायगा तो वहाँ का खर्च देंगे। एक ही लड़की है उनके। अपनी छोटी बहिन की शादी की तो लड़के को मालामाल कर दिया। खान्दानी आदमी हैं, बड़े ज़मीदार हैं। बाग बँगले सभी तो भगवान के दिये हैं। सारी जायदाद की मालकिन यही लड़की होगी।"

मा के सामने दूसरा संघर्ष था। ममता उनकी रग रग में बसी थी। सम्पूर्ण प्राणों से वह उसके ऊपर मुग्ध—बल्कि कहा जाय तो न्यौछावर थीं। दूसरी ओर कुलीनता और घर की मर्यादा-वृद्धि का भी ख्याल

था। पैसे का प्रलोभन था। इकलौती और लड़कों से भी प्यारी बेटी सीता का विवाह पैसा होने पर ही इच्छानुसार हो सकेगा। लड़के की दृढ़ता पर कोई वश नहीं। जो वह निश्चय कर लेगा उसे ब्रह्मा भी नहीं टाल सकते। छुटपन में शादी होजाती तो दूसरी बात थी। वह अब सयाना और स्वतन्त्र था। बोलीं—"बाबा! मैं कुछ नहीं जानती। तुम जानो—लड़का जाने। मुझे बहू से मतलब। वह आवेगी तो मुझे सिंहासन पर नहीं बैठा देगी—यह आवेगी तो मेरा खाना पीना नहीं रोक लेगी। इतना जरूर जानती हूँ इसका विवाह हो जाना चाहिये वरना कुछ दिनों में बेहाथ हो जायगा। अभी मौका है। तुम चेत जाओ और उसके कहने सुनने का ख्याल न करो। पहले विवाह करना तो मंजूर करे!"

मोहन के पिता अकड़ने लगे परन्तु लड़के को माँ की अपेक्षा उन्होंने कम समझा था। जिसके प्राणों में युग की सबसे बड़ी पुकार पैठी हुई थी—अपने जीवन का लक्ष्य ही जिसने दूसरों के लिये उत्सर्ग हो जाने में सोच रक्खा था— उसी नारी अंगों और पैसे के दुर्बल बन्धनों में बाँधने की आशा मरीचिका है न! बोलीं—"तुम भूलते हो। दुनिया में मोहन किसी के सामने मस्तक झुका सकता है तो वह है ममता। माँ-बाप, भाई-बहिन, गुरु-शिष्य, किसी को भी वह उतना क्या उसका शतांश भी नहीं मानता। ईश्वर तक पर तो उसका विश्वास है नहीं। अक्सर इसी पर लोगों का मज़ाक उड़ाया करता है।"

"तो कहो पूरा चौपट हो चुका है। मुझे इसकी चालढाल से बड़ा भय लगता है। सरकार की निगाहों पर चढ़ते ही पुलिस के चंगुल में आजायगा। ज़िन्दगी मट्टी हो जायगी। मुझे भी जाते जाते मार जायगा। नौकरी, पेन्शन की आशा और बँधी बँधाई इज़्जत सब नष्ट हो जायगी।

"सो तो एक दिन ममता से कह रहा था—अब मैं बाहरी तौर पर बाबूजी से प्रत्येक प्रकार का सम्बन्ध तोड़ लेना चाहता हूँ। मेरा कोई ठीक नहीं है। किसी भी क्षण पकड़ गया तो मुझ पर मुकदमा चल

सकता है। मगर बाबू को पूरे परिवार का पालन करना है। मैं चाहता हूँ उन पर कोई प्रहार न हो।"

"आज रात को उससे बात करूँगा। कानपूर में मज़दूरसभा और किसानसभा का केन्द्र है। इसीलिये वहाँ जाना चाहता है। पढ़ना लिखना अब समाप्त समझो। मेरे पास रहकर इलाहाबाद में पढ़े। वहाँ बहक नहीं सकेगा।"

[ ८ ]

मोहन रात को दस बजे लौट रहा था। दरवाजे पर खड़ी ममता मानों उसी की राह देख रही थी। मोहन थका था। ममता को देखते ही उसे न जाने कहाँ का बल मिल जाता था। दरवाजे पर उसे खड़ा देख सामने बैठक के चबूतरे पर बैठ गया और बोला—"तुम इतनी रात दरवाजे पर क्यों खड़ी हो? चाचा कहाँ गये?"

"उन्ही का रास्ता देख रही हूँ भैया! तीसरे पहर ही चले गये थे। चिन्ता की क्या बात है? कोई काम ही होगा। तुम कानपूर कब जाओगे?"

"बीस तारीख तक जानेकी सोच रहा हूँ। तुमसे बहुतसी बातें करनी हैं। आज तो थका हूँ। बाबू भी आ गये हैं। लौटने में देर होगी तो डाटेंगे। व्यर्थ की तकरार मुझे नहीं भाती। अब चलूँ न?"

"पान तो खा लो। मैं अभी लाई। और पानी भी?"

ममता जाकर पान बनाने लगी। माँ ने पूछा—"तेरे बापू आ गये? घर के भीतर नहीं आवेंगे क्या?

"नहीं माँ। मोहन भैया आये हैं। पान दे आऊँ तो आती हूँ।"

माँ से कोई बात छिपी नहीं थी। पति से और मोहन के पिता से जो बातचीत हुई थी वह सब उन्हें ज्ञात थी। ममता के मुँह पर कोई शिकन, कोई छाया—कोई चिन्ता नहीं थी। वैसी ही हल्की फुल्की घूमती फिरती थी। माँ देखकर हैरान थी। रह रह उन्हें एक अज्ञात आशंका होती थी। भयंकर तूफान आने के

पूर्व जैसी निस्तब्ध जड़ता और शान्ति वायुमंडल में छा जाती है वैसी ही ममता की चेष्टा में थी। परन्तु माँ की चिन्तना का अन्त नहीं था। ममता ने बाहर जाकर मोहन को पान दिया। चलते हुए मोहन ने कहा—तुमसे मैं कल मिलूँगा। बीस तक चला जाऊँगा। कब आऊँगा फिर निश्चित नहीं। तुम से बातें करनी हैं। यहाँ का काम भी थोड़ा समझा देना है। मेरे जाने के बाद यहाँ जो सभायें हों उनकी रिपोर्ट तुम अखबारों में भेज दिया करना। वही तुम्हें समझाना है। ठीक है न ?"

ममता ने बच्चों की तरह सिर हिला दिया।

मोहन अपनी चप्पलें फटफटाता चला गया।

ममता कुछ बोली नहीं थी। उसकी आँखों के एक कोने में नमी आगई थी! मोहन के ओझल होते ही एक पूरी बूँद आँचल पर गिर पड़ी।

मोहन जब घर पहुँचा तो पिता जाग रहे थे। माँ पैताने बैठी चरखा कात रही थी। मोहन चारपाई पर लेट गया और बोला—"अब अपना चर्खा बन्द करो। मैं सोऊँगा।"

मा उठकर नीचे आँगन में चली आई और अपनी खाट पर लेट गई। सीता चारपाई पर पड़ी करवट बदल रही थी। नींद का पता नहीं था। बाबू में और अम्मा में क्या बातें हुईं यह जानने की बेचैनी उसे थी। माँ को देखते ही उसने पूँछना चाहा परन्तु माँ को आज कुछ खोया खोया-सा लगता था। उनके मुख पर एक अभूतपूर्व भारीपन था। सीता ने बात चलाने की चेष्टा की। माँ ने कुछ उत्साह नहीं दिखाया।

ऊपर पिता ने मोहन से पूँछा—"ममताकी तरफ आज नहीं गये ?"

पिछले ५-६ वर्षों में पिता ने शायद पहली बार ममता का नाम उसके सामने लिया था। मन ही मन कुछ चौंककर बोला—"आज समय नहीं मिला। अभी जब लौट रहा था तो दरवाज़े पर खड़ी थी। दो चार मिनट बात करके चला आया। चाचा कहीं गये हैं। खड़ी उन्हीं

का रास्ता देख रही थी। पूछने लगी—कानपूर कब जाओगे ?"

"आज देवदत्त से मुझसे दो घंटे बातचीत हुई। संभव है ममता ने भी सुना हो या उन्होंने घर में बताया हो। तुमसे कुछ कहती थी ?"

जी नहीं। मुझ से कुछ नहीं कह रही थी। संभव है उसे पता ही न हो। यों बड़ी गंभीर लड़की है वह।

पुत्र की ओर से जिज्ञासा का अभाव देखकर कुछ देर के बाद पिता ने कहा—"अजीब सनकी आदमी है। जिसे यह नहीं पता वह क्या कह रहा है उसे सनकी ही कहा जायगा। इतनी बड़ी पुरोहिती जिससे वर्ष में हज़ारों की आय हो सकती थी चौपट कर दी। माना आप बड़े आज़ाद ख्याल के हैं मगर लोकधर्म भी तो निबाहना पड़ता है। कहने लगे मोहन और ममता का ब्याह हो जाना चाहिये। दोनों अब सयाने हो चले हैं। गोया पहले से सगाई हो चुकी है! लड़की वाला कहीं राह चलते इस तरह की बात करता है? मैंने कह दिया एक प्रतिष्ठित व्यक्ति को वचन दे चुका हूँ। अब वापस नहीं लौट सकता"।

"यह आपने व्यर्थ कहा। आपने यदि वचन दिया है तो ठीक नहीं हुआ। बिना मेरी सहमति के आपने वचन दे दिया! अब यदि मैं विवाह नहीं करूँ—और मैं नहीं करूँगा—तो आपकी स्थिति कितनी भद्दी हो जायगी। यह सब तो सोच लिया होता।"

"मुझे तुम्हारे ऊपर उतना ही विश्वास था जितना पिता को पुत्र पर होता है। लड़की तुम्हें पसन्द आने वाला 'मारजिन' मैंने फिर भी रख लिया है। लड़की मैंने देखी है। ऊँचे से ऊँचे 'स्टेन्डर्ड' वाले आदमी को भी वह नापसन्द न होगी। फिर वचन देना अनुचित कैसा?"

"शादी मेरी होनी है। जीवन उसके साथ मुझे खेना है। अपनी अपूर्णताओं और दुर्बलताओं का मुझे पूरा बोध है। बिना मुझसे बताये और सब बातें समझे आपने वचन क्यों दिया?"

वकील साहब को वचन मैंने जरूर दे दिया है परन्तु तुम्हारे सुख-दुख पसन्द-नापसन्द का प्रश्न सबके ऊपर है। मैं लोभी हूँ—पैसे पर मरता हूँ इसका कारण यही है कि मेरे पास साधारण ढंग से जीवन बिताने लायक पैसा भी कभी नहीं रहा। लेकिन पैसे को अपनी सन्तान के जीवन-मरण से बड़ा समझूँ, ऐसी पिशाचवृत्ति मेरी नहीं है। तुम यदि ममता से प्रेम करते हो—उसके साथ विवाह करना चाहते हो तो मैं अपने दिये हुए वचन पर फिर से विचार कर सकता हूँ।

"मेरे सामने ममता और अममता का प्रश्न नहीं। मैं आजीवन विवाह ही नहीं करना चाहता। ममता मेरे लिये जो है वह सदैव रहेगी। विवाह पर ही पुरुष और नारी का पारस्परिक सम्बन्ध क़ायम हो सके ऐसी मेरी मान्यता नहीं। वह मेरे लिये विवाह से बड़ी है। अपने से अलग करके मैंने उसे कभी नहीं देखा। मैं उसकी पूजा करता हूँ परन्तु उसके उस रूप की नहीं जो बाहर से सबको दिखाई पड़ता है। उसके अन्दर आत्मा का एक तीव्र और रुक्ष रूप है जो सबको दिखाई नहीं देता। पर जिसे वह दिख गया वह उस ओर से आँखें नहीं हटा पाता। आत्मा की अन्तस्तली में—हृदय के ठीक भीतरी भाग में उसकी एक चमकदार लकीर पड़ जाती है। यह लकीर बढ़ते बढ़ते एक अमिट गहरी छाया का रूप ले लेती है। कोई उसे अनमनी उदासिनी कहेगा—कोई ध्यानमग्ना जोगिनी भी समझेगा—कोई उसे लक्ष्मी-स्वरूपा कहेगा। परन्तु सत्य यह है कि वह कुछ नहीं है। वह क्या है यह मैं बता नहीं पाता। क्या नहीं है यह कुछ कुछ जान पाता हूँ। परन्तु........परन्तु........उससे लाभ क्या ?

मर्म से निकले शब्दों में एक चोट होती है जो सीधी और दूर तक जाती है। पिता ने कुछ भाव-विह्वल होकर कहा–"तो तुम उससे विवाह करोगे ? मुझे एतराज़ नहीं। इतना मैं जरूर चाहता हूँ तुम विवाह कर लो।"

"विवाह की बात आप क्यों उठाते हैं ? एक पुरुष और नारी के

सम्बन्ध को क्या आप विवाह से ऊपर उठकर नहीं देख सकते? आप क्या शायद हमारा समाज भी नहीं देख सकता। मुझे इसकी परवाह नहीं। ममता को पाकर मुझे वही सन्तोष मिला है जो एक सम्पूर्ण जन्म को सफलता की संज्ञा दे दे। साधक को जो तृप्ति सिद्धि से मिलती है वह उसने मुझे दी है। आप मेरे ऊपर विश्वास करें या न करें........।"

"नहीं! मैं तुम्हारी बात पर विश्वास करता हूँ।"

"आप से मुझे कोई पर्दा नहीं है। आप को मैं अपने हृदय में क्या मानता हूँ और कहाँ पूजता हूँ यह आप कभी जान नहां सकेंगे क्योंकि में जना ही न सकूँगा। ममता को मैंने अपनी आत्मा के समस्त निमाल्य से प्यार किया है। उसके सामने जाकर मेरी सारी वासनायें और लिप्सायें जैसे एक प्रचंड अग्नि में निमज्जित हो जाती हैं। मैं चाहता हूँ उसका विवाह किसी सुयोग्य और सम्पन्न व्यक्ति के साथ हो जाय। वह सुखी हो। पर मैं यह भी जानता हूँ वह सुखी नहीं हो सकती। वह तो बन्धनों में जकड़ी एक पुकार है—एक चिरन्तन चीत्कार है जो क्षण भर को भी नहीं बुझता। मैं काल्पनिक प्रेम में सुख पाने और शून्य में भावना की सृष्टि करने का प्रयोजन नहीं रखता। मैं जीवन की समस्त नग्नता को एक साथ देखता हूँ। ममता तो एक सतत विलाप है और सदैव इसी प्रकार होती रहेगी। मुझे अवसर मिला है मैंने उसे सुना है और आजीवन सुनूँगा।

पिता कुछ ऊब चले थे। बोले—"तो तुम उसके साथ विवाह नहीं करोगे?"

"कदापि नहीं। मैं विवाह करूँगा ही नहीं। यदि करूँगा तो आपकी अनुमति से—आप के आशीष का मंगल कवच लेकर।"

"मुझे ऐसा लगता है जैसे तुमने पढ़ने लिखने की किताबों की तरह ममता को पढ़ा है। उसके स्पर्श के रत्न की अमूल्यता ने तुम्हारी दृष्टि को लोप कर दिया है। भावों के पंख फैलाकर तुम न जाने किस स्वप्नपुरी के कल्पनालोक में उड़ते हो। दुनिया की गीली मिट्टी पर आओ और मेरी बातों की सार्थकता समझो!"

आप मुझे सुखी देखना चाहते हैं न ! आशीर्वाद दीजिये मेरे सपने कभी न टूटें। मेरे मन की यह दीप्त शिखा कालवायु के प्रचंड से प्रचंड आघात के सम्मुख ऐसी ही जलती चले। आप नहीं जानते मुझे इनमें कितना सुख मिलता है! जीवन के सारे अभावों और आघातों को मैं भूल जाता हूँ। अम्बर की अन्तहीन परिधि को चीरकर आने वाला सान्ध्य विहग जैसे अपने नीड़ में छिप जाता है वैसे ही सामाजिक जीवन की कठोर वास्तविकताओं और निर्मम असंगतियों से पीड़ित मेरा हृदय........ ..।"

थके पिता ने करवट बदली और सो गये। मोहन देर तक जागता रहा। उसे लगा ममता पास बैठी उसके बालों पर हाथ फेर रही है। रात के अँधेरे में भी मोहन की आँखों के भीतर पुतलियों के पानी में ममता की मूर्ति तिरकर आगई। मोहन सोच रहा था—सोचता ही जा रहा था। सोचने का मानव जीवन में क्या कभी अन्त ही नहीं होता ? सहसा ममता के आँचल की चौड़ी लाल किनारी प्रदीप्त अग्निशिखा की तरह उसकी आँखों में जल उठी। मोहन सोच रहा था—बाबूजी ने आज चाचा से क्या कह दिया। ममता ने सब सुना होगा। सोचती होगी—प्रतापगढ़ से दस हजार रुपये लेकर आने वाली वकील की इकलौती कन्या के सामने मेरी क्या बिसात है ? वह स्वर्णा-भरणों से लदी—स्वगौरव से उद्यत, उन्नत ललाट वाली, आधुनिक स्कूल में पढ़ी और सुसंस्कृत—शहर के सब से बड़े वकील की इकलौती लड़की के सामने यह जो एक सफेद धोती पहने आभरणशून्या, अभावों से आजीवन प्रताड़ित और गरीबी की एक अमिट छाप अपने मीठे फीके मुख पर लिये ममता खड़ी है उसकी ओर किसी की दृष्टि भी कैसे जायगी ? आज उन सब लोगों को कैसा आघात लगा होगा ?

मोहन ममता को प्यार करता है। इस प्यार में क्या है—क्या नहीं है यह बताना दोनों के लिये कठिन है। जीवन के इस सब से गहरे और आन्तरिक आधार की—आत्मा की इस सम्पूर्ति की

परिणति क्या विवाह ही में हो सकती है ? ममता नारी है। स्वभाव से ही विसर्जनशील है—समर्पणमयी है। प्रखर बुद्धि होते हुए भी अन्तस से तो प्रकृति है। सब लोगों के जीवन की प्रगूढ़ एकस्वरता उसके जीवन में क्यों आवे ? क्या बिना विवाह के ममता उसकी नहीं हो सकती ? उसकी नहीं रह सकती ? विश्व के बनाये रास्तों पर चलनेवालों के लिये खुद को खोजने की ज़रूरत क्या नहीं रह जाती ? यहाँ जिज्ञासा को शान्ति की दीक्षा क्यों दी जाती है ? प्रश्न यहाँ अवज्ञा का द्योतक क्यो बूझा जाता है ? मोहन जीवन में आँख खोलकर चलता है। अपने अब तक के कर्मों और प्रेरणास्रोतों को वह उधेड़ता रहता है। शुरू से ही ममता के साथ उसे शान्ति मिली है। अपने व्यक्तित्व की पूर्ण इच्छाशक्ति लेकर जो वह अपनेपन की संकीर्ण परिधि से बाहर निकल समाज की गलियों में आ खड़ा हुआ है और समष्टि के सुख दुख का एक दुखता अंग बन गया है यह क्या जीवन का कोई हीन प्रयोग है ? सत्य को सदैव ऐसे ही नूतन प्रयोगों की आवश्यकता है। राजनीति ऐसे ही प्रयोगों की मुखापेक्षी है—समाजशास्त्र ने विकास के इतिहास की पहली कड़ी से लेकर अब तक ऐसे प्रयोगों का स्वागत किया है। जीवन की मान्यतायें और विश्वास ऐसे ही प्रयोगों को लेकर बने बिगड़े हैं—घटे बढ़े हैं। उसमें भी ऐसे ही प्रयोगकर्ता का बल है। ममता से विवाह न करने पर भी समाज की प्रतिष्ठा उसके हाथों क़ायम रहेगी ऐसा वह जानता है।

एक बात और है। मोहन एक प्रेमी की दुर्बलतायें और खतरों की संभावनायें समझता है। उसे अपने जीवन का लक्ष्य ज्ञात है। उसे औरों के साथ मिलकर एक नयी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना है। यदि उसकी पीढ़ी के किये यह न हो सके तो उसमें भरसक योग देना है। मानव जीवन में आज परिवर्तन हुआ है। उसकी आवश्यकतायें—उसकी मान्यतायें बदली हैं। वह पुरानी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था पर क्यों चले ? मोहन को नर के द्वारा नर का, वर्ग के द्वारा वर्ग का और देश के द्वारा देश का शोषण गवारा नहीं।

वह पुरानी व्यवस्था की ईंटों को तोड़ने में अपनी जान दे देगा। वह भी कभी व्यक्तिवादी था। जीवन के सब मार्ग समाज में बन्द पाकर उसे सबसे अधिक खिजलाहट और झुँझलाहट समाज के प्रति होती थी। व्यक्ति के सुख दुख को एक भारी झूठ मान कर जो समाज अपनी संस्कारशीलता, जात, कुल, आचार, चरित्र की मर्यादा के थोथे दर्प में झूमता रहता है—जो आदमी को आदमी से घृणा करना सिखाता है—केवल बाह्य उपादानों—ऊपरी तड़क-भड़क से उसे पुजवाता है वह उसे अपना और अपने जैसे असंख्य युवकों का शत्रु दिखता था। आज उसे विद्रोह की नहीं वरन आमूल परिवर्तन की आवश्यकता लगती है। सामाजिक व्यवस्था के बदल जाने पर व्यक्ति और समाज का संघर्ष जो व्यक्तिवाद की जान है नहीं रह जाता। यह एक ऐतिहासिक आवश्यकता है। एक अभीष्ट प्रयोग है यह। आखिर इतनी सबल और प्राणवान अवरुद्ध भावना के लिये कब तक निकास नहीं मिलेगा? सम्पूर्ण समाज की छटपटाहट कब तक ऐसे ही रुँधी-बँधी रहेगी?

मोहन को आजीवन लड़ना है। उसे लगता है जैसे उसका यह संग्राम एक दो पीढ़ी में समाप्त नहीं होगा। अधिकार की जिम्मेदारी एक दिन में छीनकर नहीं ली जाती। बूँद बूँद कर वह एकत्र की जाती है और फिर सजगता के साथ उसकी रक्षा करनी पड़ती है। आज जो मालिक हैं, जमींदार हैं, पूँजीपति हैं वे एक दिन में मालिक नहीं बन बैठे। उनकी यह श्रेणीगत विरासत है। विकास के अन्धकारमय अतीत से यह चलती आयी है। पर वे तो इसे प्रोज्ज्वल भविष्य के लिये भी छोड़ जाना चाहते हैं। इस विरासत को अपनी सन्तान और अपनी श्रेणी की सन्तान के लिये सुरक्षित रख जाना चाहते हैं। लेकिन पीढियों से पीढ़ियाँ लड़ेंगी। उसने तय किया है कि इसी महान साँस्कृतिक संग्राम का वह एक सिपाही है। शरीर में एक एक बूँद रक्त के रहते—प्राणों में एक एक स्पंदन के चलते और आँखों में एक एक चितवन के होते वह लड़ेगा। उसे चैन नहीं है जब तक

समाज की व्यवस्था की चाभी सब से बड़ी जमात के हाथों में नहीं आती—समाज के धन का—समाज में पैदा होने वाली वस्तुओं का बँटवारा जब तक सबसे बड़े वर्ग की हिताभिलाषा से नहीं होता तब तक संपूर्ण देश और संस्कृति असफल है। मोहन जानता है इस जीवन में एक क्षण का विराम नहीं है—एक क्षण की हिफ़ाज़त नहीं है। किसी भी दिन उसके जीवन का अन्त हो सकता है। ज़मीदारों के गुन्डे किसी भी समय उसे मौत के घाट उतार सकते हैं। तब ममता का क्या होगा? क्या ममता यह आश्वासन दे सकती है कि उसके मरने के बाद वह दुखी नहीं होगी और निष्प्रयोजन न हो जायगी? ऊसर की सृष्टि करने मोहन यहाँ नहीं आया। क्या ममतामें इतना बल है कि नयी पीढ़ी के निर्माण में योग देकर अपना नारीत्व वह सफल कर सके? परन्तु ममता के लिये केवल यह नैतिक साहस का ही प्रश्न नहीं है। जीवन की सब से बड़ी नैसर्गिक शक्ति द्वारा दी हुई थाती को वह कैसे दूसरे को दे सकेगी। ममता के लिये यह असंभव है। मोहन कैसे अपने जीवन से समझौता करे?

मोहन के सामने दो दिन पहले का चित्र घूम गया। ममता इस बार नहीं मान रही थी। परसों की तो बात थी। ममता मोहन के साथ इस बार कानपूर जायगी। मोहन के बहुत समझाने बुझाने के बाद भी जब ममता नहीं राज़ी हो रही थी तो मोहन ने कहा—"यह तो वासना है मम्मी। मेरे पास रहने की इतनी कामना—मेरी निकटता की ऐसी लोलुपता क्या तुम्हें शोभा देती है? वासना नश्वर है—मुरझा जाती है। प्रेम का अपरिवर्त तन्तु—अनश्वर फन्दा—जीवन की अनन्तता का स्मारक बनकर टँगा रह जाता है—प्राणों की स्थिरता क़ायम रखता है। खिंची हुई आह की तरह गर्म और निस्तब्ध वासनाकी रजनी में तुम प्रेम को पाकर सन्तुष्ट न हो सकीं तो फिर यह लिप्सा का शव कब तक और कहाँ तक ढोती फिरोगी? मेरे साथ चलने का अर्थ तुम न जानती हो ऐसी भोली मैं तुम्हें नहीं देखता। किस बल पर—किसके बूते पर तुम्हें ले चलूँ! माँ बाप की सहमति भी इन मामलों में एक

स्थान रखती है। अपनी सयानी लड़की को एक बाहरी आदमी के पास शहर में एक साथ—अनिश्चित अवधि के लिये वे कैसे जाने देंगे? सब बातें सोच तो लिया करो!"

"यह सब टालने की बातें हैं। तुम्हारे साथ चलने से माँ बाप बुरा मानते हैं तो तुम्हारे साथ न चलने से जो उनसे भी बड़े हैं वे बुरा मानेंगे। तुम चाहो तो इनमें कोई बात ऐसी बलवती नहीं जो तुम्हें रोक सके। जो काम मैं नारी होकर कर सकती हूँ वह तुम पुरुष होकर नहीं कर सकते! भैया मेरा कहना मानों—मुझे लेते चलो!"

"मैं तुम्हें सामर्थ्य, अधिकार और आत्मविश्वास के अन्तर्बल से ऊँची उठी देखना चाहता हूँ। तुम्हें एक साधारण से व्यक्ति के सम्मुख इस प्रकार घिघियाते देखकर मुझे क्षोभ होता है। चित्त तो एक बार उनका भी डोल गया था जो हँसते हँसते अपने सिद्धान्तों के लिये फाँसी पर चढ़ गये—जिन्होंने बिना एक आह किये हँसते हँसते विष के प्याले पी लिये या अपने शरीरों से खाइयों को पाटकर अपने साथियों के लिये रास्ता बनाया। तुम्हारी और मेरी गिनती क्या? देखना यह है कि इस धड़कन को—पिपासा से मिलते जुलते इस प्रवृत्ति के गीलेपन को हम जीवन का चरमतत्व न मान बैठें। चित्त मेरा भी व्यथा पाता है—कातर होता है—कभी कभी चीत्कार करने लगता है। तुम्हारा भी यह सब करता होगा और ज्यादा करता होगा क्योंकि तुम प्रकृति हो जिसमें विह्वलता की हरीतिमा अधिक है। लेकिन जीवन एक युद्ध है, यह भी तो नहीं भूलना होगा।"

"परन्तु अपने साथ नहीं भैया! परिस्थितियों और विश्व की अनय-पोषक मान्यताओं के साथ। जिसे अपने साथ जूझने से ही अवकाश न मिला और जिसकी आत्मा अपने ही निविड़तम हुतानल के व्यर्थ क्षारपुन्ज पर आजीवन पहरा देती रही वह क्या कर सकेगा? बहुत बड़ी आत्मप्रवंचना है यह। यदि समाज की व्यवस्था के निर्माण में—नये सपनों के बन्धन में बँधे व्यक्ति के अवरुद्ध प्राण छटपटाते ही रह गये तो उसके जीवन की पूर्णता के अधिकार की रक्षा कहाँ हुई?"

"देखती हो सामने के सूचीभेद्य अंधकार को। सामने की रेती पर ककड़ी की बारियों में आज प्रकाश की रेखायें नहीं दीखतीं। ठीक ऐसा ही भयानक अँधियारा हमारे देश में छाया है। इतना विराट शोषण है—इतना सूक्ष्म और प्रकान्ड अनय है—ऐसी भयंकर दासता है कि कहते नहीं बनता। लोगों की आत्मा तक में गुलामी बस गयी है। दिल टूटे हुए हैं—आँखों की दृष्टि पथरा चुकी है—बुद्धि पर जैसे पाला पड़ गया है। जनता की स्वतन्त्र चेतना मर चुकी है। हमारे बड़े बड़े लकदक नेता जो पूँजीपतियों से रुपया पाने के अभिलाषी रहते हैं इस दोहन को क़ायम रखना चाहते हैं। इनके मायाजाल हमें तोड़ने हैं।"

ममता आगे आगे चल रही थी। पीछे पीछे मोहन यही सब कहता आरहा था। जैसे नौका के पीछे पानी की पुष्ट रेखा बहती चलती है। "तुम्हें मेरी बातें कष्ट देती हैं। सच पूछो तो मैं तुम्हें पाने के साथ ही से कष्ट देता आया हूँ। कभी एक अच्छी सी भेंट भी तुम्हें नहीं दे सका। जीवन के बीहड़ मार्ग पर आगे बढ़ते बढ़ते अपने विराम-स्थलों को तबियत भरके पूज भी नहीं पाया। मेरे पास आज पैसा नहीं जो तुम्हारे लिये चट्टियों का एक जोड़ा मँगादे सकूँ। तुम मेरे साथ चलने को कहती हो। अन्तःकरण की संपूर्णता के साथ तुम्हें प्यार करता आया। पर क्या यही मेरे जीवन की सिद्धि और परिपूर्ति है कि तुम्हारे लिये दैनिक आवश्यकता की वस्तुयें भी न खरीद सकूँ!

"मुझे ज़रूरत काहे की! तुम क्यों ऐसी बातें करते हो?"

"मुझे लगता है मैं तुझे सुखी न बना सकूँगा। तुझे साथ ले चलने का अर्थ है जीवन भर के लिये तुझे ले लेना। लेकिन मुझे अपने ऊपर स्वयं विश्वास नहीं। मैं तो एक सदेह अभिशाप हूँ। मेरे साथ जुड़कर-बँधकर संसार में कोई न फूलेगा फलेगा और न जीवन में भली भाँति जी सकेगा।"..............। मोहन की आँखें तभी आलस से भारी हुई जब आकाश में शुक्र तारा उदित होचुका था।

[ ६ ]

घनीभूत वेदना में एक शक्ति, एक उन्माद, एक नशा होता है। परिणामस्वरूप उसमें एक ख़ुमारी, एक अवसाद, एक प्रतिक्रिया भी आती है। सुबह उठकर मोहनने पिता से कहा—"आशा है आप मेरा अभिप्राय समझ गये होंगे। अब आप इस सम्बन्ध में जब तक मैं कुछ न कहूँ तब तक स्वयं कहकर मुझे संताप न देंगे। मैंने तय किया है मैं कानपूर में पढ़ूँगा। आपके पास प्रयाग में रहकर मैं वह आत्मबल भी विकसित नहीं कर पाऊँगा और घूमकर आपके ही मत्थे पड़ूँगा। मुझे यह स्वीकार नहीं। जीवन की टेक ही यदि मेरे हाथ से छूट गई तो मन को ऊँचा उठाकर आज जो स्वस्थ हवा फेफड़ों में भरकर इतराता फिरता हूँ, वह न रह जायगी। आखिर मैं टिकूँगा कैसे ?"

पिता ने भरसक समझाया परन्तु मोहन टस से मस न हुआ। माँ ने बीच में बोलना छोड़ दिया। तीसरे दिन पिता चले गये। मोहन भी अपनी किताबें ठीक ठाक करके दो चार दिन में कानपूर जाने की तैयारी करने लगा। चलने के दो दिन पहले मोहन को फिर ज्वर आ गया। दिन भर ज्वर में पड़ा रहा। शाम को मुँह हाथ धोकर वह बाहर निकला। जमना किनारे वह जाना चाहता था। मौसम में तरी आ गई थी और इधर पानी भी बरसा था। नदी की धारा में वेग और प्रपात आरहा था। गाँव छोड़कर बाहर जाते समय मोहन एक दो दिन पेश्तर से ही न जाने कैसी उदासी अनुभव करता था। एक आशाहीन व्यक्ति की स्वादहीन अतृप्ति जिसमें सजीवता, सुख, दुःख और उत्कण्ठा कहीं कुछ नहीं होती उसके दिल के भीतर बाहर पैठ जाती थी।

दरवाजे पर खड़ी ममता बछिया की पीठ पर हाथ फेर रही थी। उसकी गोरी गोरी बाँहें चपलतापूर्वक बछिया के एक छोटे बादल के टुकड़े की तरह अघाये शरीर पर घूम रही थीं। आज कई दिन के

बाद मोहन उसे दिखाई पड़ा। मोहन का चेहरा उतरा था और आँखों में शून्यता थी।

"भैया ! तबियत क्या कुछ खराब है ? आओ। बैठक में बैठोगे ! बापू तो हैं नहीं।"

"कहाँ गये ?"

"मुझे मालूम नहीं ! शायद जमना पार गये हों।"

ममता को पता था आजकल बापू की छाती पर कितने मन का पत्थर रक्खा है। जीवन के बीच जिस सूत के सहारे वे टिके थे वह टूट चुका है। सालभर के बाद उन्हें लड़की का विवाह करना है। ममता की माँ उन्हें व्यंग बोल बोलकर जलाया करती थी। ममता सब देखती सुनती और आँखों के आँसू भीतर ही भीतर घोंटकर रह जाती।

"घाट तक चलना चाहता हूँ। दिन में हरारत थी। तबियत पड़े पड़े ऊब रही थी। सोचा तुम्हें बुलवाऊँ परन्तु रह गया।"

"पहले तो ऐसा नहीं होता था भैया ! जब चाहते थे बुलवा लेते थे। इधर मुझसे क्या अपराध हो गया है ?"

"नहीं नहीं। यों ही मम्मी ! सोचा तुम्हें कष्ट क्यों दूँ ? परसों सुबह की गाड़ी से जा रहा हूँ। चलोगी टहलने ?"

"तब तो मुझे बहुत से काम करने हैं। तुम्हारी बहुत सी किताबें मेरे पास पड़ी हैं। उन्हें इकट्ठा करना होगा। घर पर तुम्हारा सामान अस्त-व्यस्त पड़ा होगा। सीता को सोने और गप्प लड़ाने से फुरसत कहाँ ! मैं कल आकर सब ठीक ठाक कर दूँगी।"

"सामान मैंने ठीक कर लिया है। जो किताबें तुम्हारे पास हैं उन्हें रहने दो। मुझे आवश्यकता नहीं। तुम्हें तो मैं मन की चाही किताबें दे नहीं पाता। हिंदी में हैं नहीं। अँगरेजी में है पर बैठकर जब तक मैं तुम्हें न समझाऊँ तुम समझोगी नहीं। जो हैं भी उन्हें खरीदने के लिये पैसा नहीं। अच्छा चलो अब।"

"अभी आई भैया ! दूसरी धोती पहन लूँ। यह

गंदी है। तुम्हारे साथ चलना है इसका भी ख्याल है। पान तो लेती आऊँ न ! कुछ दूध, पानी तो नहीं पियोगे ?"

भीतर जाकर ममता धोती बदलने लगी। धुली धोती पहनकर पान बनाने बैठ गयी। माँ ने पूछा—"मोहन आया है क्या ? मुझे तो उसी का बोल बाहर लगा था।"

"हाँ माँ ! भैया परसों कानपूर जा रहे हैं। आज दिन में उन्हें बुखार आ गया। उनके साथ टहलने जा रही हूँ। खाना बनाना नहीं। सुबह जो मिठाई आई थी वह अभी रक्खी है। मैं खाली दूध पी लूँगी।"

माँ को मोहनसे विरक्ति हो गई थी। घृणा तो उसे नहीं कहेंगे। उन्हें मोहन के साथ लड़की का पहले जैसा घूमने जाना अब तनिक न भाया। सारा वातावरण उन्हें विषाक्त-सा लगता था। बोलीं—"क्या करेगी जाकर। यहीं बैठ न। उसे भीतर बुला ला। बाप तो उस दिन साफ़ जवाब दे गया है। लड़के से भी बातचीत हो जाय।"

ममता ने चतुराई से बात बनाते हुये कहा—"क्या करोगी माँ ! आज वे कष्ट में हैं—तुम भी अभी क्रोध में हो। कहीं कोई लगती हुई बात कह दो तो उन्हें दुख हो और तुम्हें भी। फिर कभी बात कर लेना। वे भी तो परवश हैं। मेरे ही बारे में यदि तुम कोई निर्णय करो तो क्या मैं बीच में बोल सकती हूँ ?"

"सारी बात पैसे की है। मुझसे कान खोलकर सुन ले। आज तेरे बापू के पास पैसा होता तो नाक घिसते सोहनलाल आते और कहते—पण्डित जी ! दोनों में इतना प्रेम है दोनों का विवाह होजाना चाहिये। उस समय वही खुद तुम दोनों के प्रेम की आड़ लेता। खैर मैं न बोलूँगी। मगर तेरा उसके साथ जाना ठीक नहीं। तेरे बापू सुनेंगे तो क्या कहेंगे ?"

"बापू को मैं जानती हूँ माँ ! वे कुछ नहीं कहेंगे। सिर्फ तुम मुझे घूम आने की आज्ञा दे दो। इसके पहले तुमने मुझे कभी नहीं रोका।

आज यदि रोकोगी तो मोहन भैया बुरा मानेंगे। आखिर उनका अपराध क्या है? सच पूछो तो मैं भी उनसे विवाह नहीं करना चाहती। मैंने उन्हें सदैव बड़े भाई की तरह समझा और जाना है। मैं तो सोचती हूँ बड़ा अच्छा हुआ। यदि तुम सोचती हो भैया वकील की लड़की या दुनिया में और किसी लड़की से शादी करेंगे तो यह तुम्हारा भ्रम है। चाचा, चाची ऐसा समझें तो उनकी भूल है। उन्होंने यह जाना ही नहीं भैया किस धात के बने हैं।"

माँ के लिये एक साथ इतने धक्के! लड़की कितनी बड़ी आत्म-प्रवंचना कर रही है उन्हें पता था। भरी गंगा में एक हाथ में मा का दूसरे में पिता का हाथ लेकर वह यदि यह बात कहे तो भी वह विश्वास नहीं कर सकतीं। मोहन किसी लड़की के साथ ब्याह नहीं करेगा, यह भी मानने को वे तैयार नहीं। लेकिन ममता के कण्ठ में आत्मस्वीकृति और आत्मविश्वास का जो दर्प था—सच्चे कंचन की परख का जो एक स्थिर और स्पर्शी आवेग.था उसे न मानना भी तो माँ के लिये, संतान के स्तर स्तर से परिचित हो-कर कठिन है।

वे कुछ बोलीं नहीं। चुपचाप चरखा कातती रहीं।

"मैं जाऊँ न माँ! यह मैं तुम्हें विश्वास दिलादूँ जब तुम मन से मुझे जाने की अनुमति दोगी तभी मैं जाऊँगी। वरना नहीं। भैया से कह दूँगी माँ की इच्छा नहीं है। यह बात मैं उनसे छिपा नहीं सकती। फिर वे आज क्या कभी भी मुझको अपने साथ चलने के लिये नहीं कहेंगे।"

माँ ने लड़की के चित्त की वेदना को पकड़ लिया। वह उसकी आत्मा का कितना अपकार कर रही थीं, समझ गईं। बोलीं—"जा बेटी! जल्दी आना। साथ जाने को मैं कैसे मना करूँ? पर अकेले घर में मेरा जी ऊबता है।"

ममता पान लिये बाहर आई। मोहन कुछ ऊब और उकताहट से बोला—"यह तुम्हारे दो मिनट हैं? देखें कौन सा शृङ्गार तुमने किया

है जो इतनी देर लगी।"

ममता कुछ नहीं बोली। पान देकर साथ साथ चल पड़ी। रास्ते में बाँस की झाड़ियाँ, आम के बगीचे, पाठशाला, तालाब के घाट—सब आज मोहन को रुला रहे थे। गाँव से बाहर जाते समय सदैव उसकी यही गति होती थी। बचपन में उद्देश्यहीन, ज्वलंत उल्लासमय हृदय से वह दिन दिनभर इन्हीं के चारों ओर घूमता फिरता था और छाया की भाँति ममता उसके पीछे पीछे डोलती थी। दोनों हल्के मेघों की तरह दिन दिनभर इन्हीं मंदिरों, बज़ारों, खँडहरों और गाँव को घेरे सुनसान खेतों का चक्कर काटते रहते थे। मोहन को जाने के पहले यह स्मृतियाँ कचोटने लगती थीं। वही दृढ़ और कठोर जनसेवक जिसके व्याख्यान सुनकर निरक्षर, सदियों के लुटे चुसे जर्जर और दलित किसानों में पौरुष, आत्मनिष्ठा, साहस और बलि-भावना का समुद्र लहरें मारने लगता था कभी कभी इतना भावुक हो उठता था कि रास्ते में पड़ते पीपल और बरगद के वृक्षों को देखकर आँसू बहा दे। कौन इस पर विश्वास करेगा?

रास्ते में ममता ने देखा भैया की आँखे दो तीन बार भर भर आईं। एक बार तो एक बड़ा सा आँसू टप से कमीज़ पर गिरा। मोहन ने रूमाल निकाल कर मुँह ढाँप लिया। ममता उस जगह को भी जानती थी जहाँ से यह आँसू गंगोत्री से गंगाजल की भाँति आगे चलते थे। बोली—"भैया! तुम गाँव से बाहर जाते समय हमेशा ऐसे ही उदास और विह्वल हो जाते हो। विचित्र आदमी हो तुम! इतनी भावुकता तो औरतों को भी नहीं शोभा देती। तुम्हारे व्याख्यानों को सुनकर जनता क्रोध और जोश से पागल हो जाती है और तुम रास्ते में एक औरत से आँख बचाकर औरत की तरह रोते हो! क्या यही दिखाने के लिये मुझे घर से लेकर निकले थे?"

"इनके साथ जीवन की जो सबसे सजीव स्मृतियाँ लिपटी हैं उन्हें कहाँ फेकूँ? छुटाये भी तो नहीं छूटतीं।"

ममता का मन विषण्ण हो उठा। बचपन में क्या उनके आमोद

की सीमा थी ? कोकाबेली से भरे तालाबों और तालों के किनारे उन्होंने कितना उत्पात नहीं मचाया और जल को कितना नहीं मथा। आज उन सब की बारी आई है और वे बार बार आँखों के सामने आकर जैसे हृदय को मथ रहे हैं।

"क्या समय आगे ही बढ़ता है ! पीछे दो एक क़दम भी नहीं खिसकता ?"

"समय के पीछे लौटने की जरूरत क्या है ?" ममता ने बाल-चापल्य से कूदते हुए कहा। "जैसे जैसे समय आगे बढ़ा है वैसे वैसे हम भी आगे बढ़े हैं। देखो वह मंदिर भी आगया जहाँसे कुदा कुदाकर तुमने मुझे बचपन में तैरना सिखाया। ऊपर से तुम मुझे फेंक देते थे और बरसात की भरी जमना में मेरे साथ ही कूद पड़ते थे।" याद है न ?

मंदिर में आकर दोनों बैठ गये। बादलों से घिरी चाँदनी रात अभी अभी शुरू हुई थी। बाँसुरी के स्वरों से भरा हुआ-सा जमना का प्रवाह तीव्र वेग से आगे जा रहा था। सड़क के किनारे पथ खो जाने पर मनुष्य जिस प्रकार निरुपाय होकर उसकी ओर देखता रह जाता है उसी प्रकार मोहन दूर दिशा की ओर देख रहा था। सामने लक्ष्यहीन पर्वत श्रेणियाँ जिनका कहाँ से आरम्भ होता है और कहाँ पर अंत, यह सब समझने का उपाय नहीं। केवल मेघों के पार मेघ, पहाड़ों के पार पहाड़ उत्तुँग, कठिन और निर्दय। नहीं ! अब तो लौटने का भी उपाय नहीं है। संगी, बंधु, परिचित सबको छोड़कर आगे बढ़ना है। उस दिन सारा आकाश बादलों के लिये आकुल था। आज मेघों के ऊपर मेघ लदे चले आते हैं। मोहन के मन पर भी घनघटा-सा अवसाद छाया है। दूर बजने वाली किसी अदृश्य की विकल वंशी पर उसे आगे बढ़ना है। सब को छोड़कर चल देना है।' फिर यह जीवन के चारों ओर उगे हुए झाड़ झंखाड़ के प्रति मोह कैसा ? कर्मपथ की प्रखर पुकार के बीच में जो मार्ग रोककर खड़ी हो जाती है उसे यहीं छोड़ अकेले अकेले चलना है।

ममता को मोहन का यह मौन भारी लग रहा है। वह आज न जाने कितना बोलना चाहती है। कहाँ कहाँ की प्रयोजन और निष्प्रयोजन बातें आज उसे करनी हैं। मगर मोहन की गति ऐसी नहीं। उसका मन तो जब आशा से प्रज्वलित होता है तो दावानल बन जाता है—जब बुझता है तो एकदम राख का ढेर। आज वही स्थिति है। आज अपने पर उसका सदाका पूर्ण विश्वास शिथिल हो गया है। सामने तरंग-संकुल जल के ऊपर नक्षत्रों का प्रकाश चमक रहा है—जल-प्रवाह के अविश्रांत शब्द से चारों दिशायें मुखरित हो रही हैं। परन्तु जो एक बार बुझा वह बुझा। मोहन समझ नहीं पा रहा था वह ममता से क्या बात करे।

नारी सदैव से ही पहले बोलती आई है। ममता ने पूछा—"तुम वहाँ जाकर भी ऐसे ही किसानसभा का काम करोगे?"

"वहाँ मेरा कर्मक्षेत्र बढ़ जायगा। मज़दूरसभा में भी मुझे काम करना होगा। वर्माजी जो कहेंगे सब करूँगा। तुम्हें मैंने शायद बताया नहीं उनके इधर दो पत्र आये हैं। उन्होंने बार बार मुझे बुलाया है। जाकर एक सिपाही की तरह रहूँगा। वहाँ तो नियमित ढंग पर काम होता है।"

"यदि तुम चाहो तो मैं अपनी बात एक बार फिर कहूँ। मैं तुम्हारे साथ चलना चाहती हूँ। मुझे क्यों नहीं अपने साथ ले चलते? मेरे रहने से तुम पर कोई भार नहीं पड़ेगा यह विश्वास दिला दूँ।"

मोहन को पहले जैसे सबल और साग्रह कण्ठ से यह सब सुनकर आज जरूर कुछ आश्चर्य हुआ। उस दिन ममता ने कहा था परन्तु बात दूसरी थी। आज तो जब बातें इस स्थिति तक आ गई हैं तब भी वैसे ही हार्दिक और आत्मिक आप्लावन से भरे इस स्वर को वह क्या समझे?

"अब तुम पहले जैसी बालिका नहीं। दुनिया की सारी बातों को समझती बूझती हो। हमारे समाज के जो निश्चयात्मक आधार हैं वे भी तुम्हें ज्ञात हैं। कुछ दिनों में तुम्हारा विवाह होगा और तुम्हें

अपने घर जाना होगा। तुम मेरे साथ चलकर वहाँ अकेले रहोगी और एक दो दिन नहीं वरन् साल छै महीने। जानती हो दुनिया क्या कहेगी? फिर तुम वहाँ करोगी क्या?"

"आज तक तो दुनिया की हिम्मत कुछ कहने की पड़ी नहीं। रात के आठ बजे एकान्त में मैं तुम्हारे पास बैठी हूँ। निस्तब्ध जमना तट पर। यह भी तो दुनिया जानती है। दुनिया जैसे लोगों के बारे में कहती सुनती है वैसे न तुम हो और न मैं। वहाँ रहकर मैं तुम्हारे साथ पढ़ूँगी—खाना बनाऊँगी और घर का प्रबन्ध करूँगी। बाकी जो समय बचेगा उसमें मैं भी देश का काम करूँगी। क्यों? क्या अपनी बनाई प्रतिमा की स्थिरता पर तुम्हें विश्वास नहीं?"

"लेकिन अगर चाचा, चाची रोकें तब? और रोकेंगे ही। वे कैसे तुम्हें मेरे साथ जाने देंगे?"

"तुम्हारे साथ जाने से जो भी मुझे रोकेगा वह मेरे जीवन के सबसे बड़े और सबसे पावन सत्य का विरोध करेगा। फिर उनका काम तो मुझे रोकना है न! मेरे बदले वे स्वयं तो रुक न जायँगे। तुमने बचपन से ही मुझे सत्य की उपासना और अपनी आत्मा की पूजा करने की दीक्षा दी है। आज जब मेरे लिये वही करनेका समय आगया तो क्यों मुझे पीछे ढकेलते हो! तुम केवल मेरी एक दुर्बलता का फायदा उठा रहे हो। तुम जानते हो मैं तुम्हारी आज्ञा के बिना कुछ नहीं कर सकती—यहाँ तक कि तुम्हें पा भी नहीं सकती—यही है न? काश! मुझमें बल होता मैं तुम्हारी आज्ञा का विरोध करके भी अपने को स्थिर रख सकती।"

अपने भाव-शिथिल हाथ में ममता का हाथ लिये मोहन दूसरे हाथ से उसे थपथपा रहा था। ममता की आवेश-आरक्त आँखों से आँखें मिलाकर वह अब शान्त हो गया था। ममता ने एक दो मिनट उत्तर की प्रतीक्षा करके सशक्त कण्ठ से कहा—मेरा मन दर्द से भरा भरा है। यदि कोई अनुचित बात निकल जाय तो मुझे क्षमा करना। मुझे जो नहीं मिलता उसी के भीतर मैं शान्ति पा सकूँ यही तो

तुम चाहते हो। मैं माने लेती हूँ सुख नीरस है और दुःख सार। मुझे तुम्हारे पास रहने में सुख मिलता है। तुम्हारे साथ वहाँ रहने में तुम्हारी सेवा करने में और अधिक मिलेगा। लेकिन सुख की प्यास किसे नहीं होती ?"

मोहन का मन घुट घुटकर रह जाता था जैसे उसे कोई बात कहे न मिलती हो। बोला—"मम्मी ! जिस सुख की चाह तुम्हें है वह सब को होती है। परन्तु वही जीवन का चरम सत्य नहीं है। समाज की एक व्यवस्था है —सामूहिक जीवन का एक तरीका है। और जीवित रहने का, सुख पाने का एक सुसंस्कृत ढंग है। हमारे समाज में एक अविवाहित युवक और युवती का घर से इतनी दूर शहर में अकेले साथ साथ रहना अशोभन समझा जाता है। समाज इस पर आपत्ति करता है और ठीक आपत्ति करता है। उसे हमारे व्यक्तिगत चरित्रबल का पता है नहीं। प्रत्येक के बारे में हो भी कैसे सकता है ? हमें व्यक्ति के सुख और शांति के लिये समाज की एक सर्वमान्य परम्परा नहीं तोड़नी। खुले हृदय से सोचो—समाज के सामने व्यक्तिगत सुख का मोह क्या है ?"

"तो समाज चाहे व्यक्ति पर जितना जुल्म करे और जैसे चाहे उसके हृदय को बाँधे, व्यक्ति को विद्रोह नहीं करना होगा—यही तो तुम्हारा मत है। मैं इसे नहीं मानती ? अपनी शक्ति के सहारे—अपनी उपलब्धि के बल पर मैं समाज की सारी मान्यतायें ठुकराकर भी अपना सिर ऊँचा रख सकती हूँ। तुम मुझे क्यों नहीं साथ ले चलते ?"

मोहन बात को ज्यादा बढ़ाना नहीं चाहता। ममता के अंदर कैसी विद्रोह-शिखा है—अहं की कैसी प्रचंड ज्वाला है उसे पता था। अपनी अशेष स्नेह की पात्री को वह हड्डी हड्डी और मजा मजा तक जानता था। ममता के चित्त में इस समय कौन सी अकथ आकारहीन, अत्यन्त भीतरी क्रिया चल रही है—उसके प्राणों पर कैसी काली काली छाया फैली है वह जानता था। बोला—"मम्मी ! तुम्हें

यहीं रहना है और आगे से कभी मेरे साथ चलने का नाम नहीं लेना है। यही मेरा आदेश है।"

"तुम्हारे आदेश के सम्मुख कब कब मैंने सिर नहीं झुकाया। यहीं तो मैं विवश हूँ—अपने को खो देती हूँ। यहीं मेरी चेतना, मेरा साहस, मेरी प्रखरता, मेरी दृढ़ता मेरा साथ छोड़ देती है। मैं जानती थी तुम यही कहोगे।"

"फिर आज तुमने यह प्रश्न क्यों उठाया?"

"क्योंकि तुमसे और मुझसे दोनों से बड़ी एक सत्ता है। वही मुझसे बार बार कहलाती है। तुम मानों या न मानों यह तुम्हारे अख्तियार है। पर बिना कहे मैं रह कैसे सकती हूँ?"—ममता ने मोहन के पैरों पर हाथ रखकर कहा।

"यह कहने और सुनने की बात नहीं होती। यह तो भीतर ही भीतर पाते रहने और संचित करते जाने की वस्तु है। कहने सुनने से वह हल्की ही पड़ती है।"

ममता कुछ बोली नहीं—पूरे खुले निर्भान्त नेत्रों से मोहन का मुँह देखने लगी। मोहन ने कहा—"जब मन अन्तर्सारशून्य होता है और अतृप्ति की निर्जीवता आत्मा की अपराजयता को विचलित करने लगती है तभी व्यक्ति सुख की चाहना करता है। सुख तो इन सब के ऊपर की चीज है। तुमने क्या इतने दिनों तक यही सोचा समझा है? मुझे तो बड़ा अभिमान था तुम इन मिथ्या प्रतिध्वनियों से ऊपर उठोगी और आत्मा की उन गहराइयों तक पहुँचोगी जहाँ तेरा मेरा या खोना पाना एक हो जाते हैं। जहाँ इस प्रकार की सौदेबाजी के लिये स्थान नहीं रहता। चलो चलें। मेरी देह कुछ भारी लगती है। तुम्हें भी घर जल्दी लौटना है।"

दोनो खोये खोये से घर की ओर लौटे। रास्ते में कोई बात नहीं हुई। घर के पास आकर ममता ने दोनों हाथ जोड़कर मोहन को प्रणाम किया। मोहन ने हाथ जोड़ते हुए कहा—"परसों सुबह जाने के पहले मिलूँगा। शायद चाचा आ ही जायँ।"

# [ १० ]

पंडित देवदत्त मोहन के जाने तक नहीं आ सके। मोहन तीसरे दिन सुबह चलते समय ममता की माँ के पैर छूकर और ममता को किसानसभा का कार्य समझाकर चला आया। एक बजे के लगभग कानपूर स्टेशन पर उतर मोहन सीधे वर्माजी के मकान की ओर चला। वर्माजी कहीं गये हुए थे। नौकर ने सामान उतरवाया। मालूम हुआ वर्माजी दस बजे से निकले हैं। मोहन के आने का उन्हें पता था। चार बजे तक वापस आने को कह गये थे। नौकर ने मोहन को स्नान भोजन कराया। खा पीकर वह लेट गया और ठीक चार बजे वर्माजी के जगाने पर उसकी नींद खुली। सामने कुर्सी पर बैठे हुये वे मुस्करा रहे थे। मोहन ने उठकर दोनों हाथ जोड़ प्रणाम किया। वर्माजी ने प्रत्युत्तरमें नमस्कार करते हुए कहा—"कहो! रास्ते में कोई तकलीफ तो नहीं हुई? मुझे तुम्हारा पत्र मिला था और मैं ने उत्तर भी दे दिया था। मैंने........कालेज के प्रिंसपल से कहकर तुम्हारे लिये स्थान 'रिज़र्व' करा लिया है। रुपये का प्रबन्ध हो गया है। तुम कल कालेज जाना और फीस जमा कर देना।"

"नियमित रूप से मुझे कुछ रुपया मिलता रहे यह भी तो मैंने आपको लिखा था। उसके बिना कैसे मेरा काम चलेगा?"

"वह हो जायगा। अभी तुम आये हो। 'हाफफ्रीशिप' तो कालेज में मिल जायगी यह प्रिंसिपल ने मुझे वचन दिया है। यदि 'फर्स्ट क्लास' होता तो 'फ्रीशिप' भी मिल जाती। महीने में तुम्हें जितने रुपये की जरूरत हो मुझे बता देना। चाहोगे तो ट्यूशन मिल जायगी। चाहोगे तो किसी स्थानीय दैनिक या साप्ताहिक में 'पार्टटाइम' काम मिल जायगा। पिताजी क्या तुम्हारे आये थे?"

"जी हाँ। आये थे। उन्होंने इलाहाबाद में ही पढ़ने पर जोर दिया। मैं उनसे दूर रहना चाहता हूँ। उन्होंने इस बीच में मेरा विवाह भी तय कर लिया था और मेरे भावी ससुर मुझे कालेज का

खर्चा देने को तैयार थे। मैंने इन्कार कर दिया। आजीवन विवाह न करने का मेरा दृढ़ निश्चय है।"

"तुम यहाँ आगये यह ठीक किया। यहाँ तुम्हें बहुत कुछ सोचने और समझने का मौका मिलेगा। देश को तुम्हारे जैसे प्रतिभाशाली और लगनशील युवकों की आवश्यकता है। एक दो की नहीं वरन् लाखों-करोड़ों-की। मैंने तुम्हें देखते ही थोड़ी देर बात करते पर जान लिया तुम एक ज्वाला हो। तुम्हें यहाँ होना चाहिये। आज शाम को मेरे कुछ मित्र आवेंगे। मैं तुम्हारा परिचय उनसे कराऊँगा।"

"आप मेरी प्रशंसा करके मुझे लज्जित न किया करें। एक साधारण विद्यार्थी मैं हूँ और वही बना रहना चाहता हूँ।"

वर्माजी ने मुस्करा कर नौकर को बुलाया। चाय बनाने के लिये उससे कहकर वे फिर मोहन से बात करने लगे।

नौकर ने दो प्याले लाकर टेबिल पर रख दिये। मोहन को एक उठा लेने का संकेत कर वर्माजी चाय पीने लगे। मोहन ने कहा—'मैं तो चाय पीता नहीं।"

वर्माजी ने हँसते हुए कहा—"क्या तुम्हारे लिये भंग बनवाऊँ?"

"जी! मुझे कोई व्यसन नहीं। इन्हें मैं व्यसन ही कहता हूँ। जिसके अभाव में व्यक्ति कुछ ही घण्टों में बेचैन हो जाय वह व्यसन ही तो है। तमाखू खाने का रोग मुझे है पान के साथ। सो भी मैं छोड़ दूँगा।"

"नहीं जी! छोड़ने की क्या आवश्यकता है। आदमी कोई मशीन तो है नहीं। उसे भी तो बीच बीच में कुछ शगल् चाहिये। लो! प्याला उठाओ। ठण्डी हो रही है। मोहन ने चाय का प्याला उठाकर पीना शुरू किया। वर्माजी तब तक प्याला साफ कर चुके थे। जेब से बीड़ी निकालकर सुलगाते हुए बोले—"कौन कौन विषय लोगे तुम?"

"राजनीति, अर्थशास्त्र और इतिहास लेने को सोचा है। कभी सोचता हूँ अँगरेजी ले लूँ। साहित्य का रस मिलता रहेगा।

यह तो बताइये मेरे रहने का क्या प्रबन्ध होगा ? आपके निकट कहीं यदि एक दो कमरे मिल जाते तो अच्छा था। पास में कोई सस्ता-सा बासा होता तो वहाँ खाना खा लेता।"

"तुम्हें कहीं और जाने की आवश्यकता क्या है ? सब से ऊपर एक कमरा है उसी में रहो। खाना यह नौकर बनाता है। विशेष विघ्न तुम्हारे पढ़ने लिखने में पड़ेगा नहीं।"

"आपकी इस कृपा के लिये मैं हृदय से आभारी हूँ। आपके साथ रहकर आपके चरण चिह्नों का अनुकरण करते हुए जीवनपथ पर अकंपित आश्वस्त ऊँचा मस्तक लेकर आगे बढ़ सकूँ—यही आशीर्वाद मुझे देते रहिये। आपके उज्ज्वल नाम पर मेरे कारण कोई धब्बा न लगे यह मेरा पहला धर्म होगा।"

"बड़े भावुक प्रतीत होते हो। इतना बड़ा मकान है। गत वर्ष दो विद्यार्थी यहाँ रहते थे। दोनों एम० ए० करके चले गये। एक तो कालेज में अध्यापक हो गया। दूसरा किसी चुनाव में आ गया। तुम्हारे रहने से मेरा एकाकीपन दूर होगा और मैं भी घर की ओर से निचिन्त रहूँगा। मेरा कोई ठीक नहीं। कभी भी ससुराल के लिये सम्मन आ सकता है। ऐसी दशा में बहन तुम्हारे साथ यहाँ रहेगी।

"क्या आपके कोई बहन है ?"

"हाँ ! तुम्हारी उमर की होगी। मुझसे बहुत छोटी है। मैंने ही उसे पाला है और छुटपन से माता पिता के मरने के बाद से वह यहाँ रही है। रमई मेरा बड़ा पुराना नौकर है। चालीस वर्ष से वह हमारे यहाँ है। उसी ने तारा को पाला पोसा है। लम्बी कहानी है। कभी सुनाऊँगा।"

"आजकल वे कहाँ हैं ? क्या आप उनका विवाह कर चुके हैं।"

"अभी नहीं, इन्टरमीडियट में फेल हो गई। मैंने फिर परीक्षा में बैठने के लिये कहा मगर तैयार नहीं होती। उससे बात करके तुम प्रसन्न होगे। आजकल देहातों में घूम रही है।

व्याख्यान बड़ा अच्छा दे लेती है। इस महीने के अन्त तक आ जायगी। मैं चाहता था ग्रेजुएट हो जाती तो बी. टी. करा देता। विवाह करती या न करती। जनता के कामों से उसे फ़ुरसत नहीं मिलती। यहाँ रहेगी तो दिन दिन भर मिलमज़दूरों की बस्तियों में घूम घूमकर औरतों में बगावत फैलावेगी। बाहर रहेगी तो देहातों में व्याख्यान देती फिरेगी! मेरे साथ प्रायः बाहर जाती है। तुम्हारे साथ रहने से इतना हो जाय कि किसी प्रकार वह फिर कालेज में नाम लिखा ले तो अच्छा हो। पढ़ाई खत्म हो जाने के बाद चाहे जितना देश का काम करे मैं कुछ न कहूँगा।"

मोहन का हृदय वर्माजी के इस बच्चों के से विश्वास से अभिभूत हो उठा। कितना महान और निष्कलुष हृदय है। केवल दूसरी ही भेंट में और दो तीन पत्रों के परिचय के बल पर इतना बड़ा विश्वास वे उस पर कर रहे हैं। बोला—"गत वर्ष जो आपने बताया कि दो साहब यहाँ रहते थे वे क्या पूर्व परिचित थे या मेरी ही तरह केवल एक मुलाकात में यहाँ आ जमे थे।"

"वे लोग तो कुछ भी नहीं थे। कोई भी सार्वजनिक काम नहीं करते थे। तारा को फूटी आँख नहीं भाते थे। दो एक बार उसने उन्हें डाटा भी था परन्तु थे सुशील। कुछ बोले नहीं। यों समझो एक नम्बर के काहिल थे। कालेज से आगये हैं। तारा ने एक दिन कहा—भाई साहब! मेरे साथ चलिये। आज मज़दूरसभा की मीटिंग है। आज कल मिलों में स्ट्राइक चल रहा है। हमें कार्यकर्ताओं की बड़ी कमी है। यदि आप लोग हमारा साथ न देंगे तो क्या आपके मा बाप देंगे? चलिये! आप लोग भी कुछ हाथ बटाइये। मगर पढ़ने का बहाना करके दोनों साहबज़ादे यहीं रह गये। रात को जब ताराने लौटकर पता लगाया तो मालूम हुआ एक साहब सिनेमा गये हैं और दूसरे साहब बगल में रेडियो सुनने गये हैं। इस प्रकार दो तीन बार तारा ने बर्दाश्त किया। एक दिन उबल पड़ी। सैकड़ों बातें सुनाईं। खामोशी से दोनों पी गये। फिर वही रफ़्तार बेढंगी। कभी सिनेमा, कभी

पिकनिक, कभी घूमना, कभी दावत। तारा मन ही मन कुढ़ती रहती थी। उसे तो आजकल के शिक्षित युवकों और विद्यार्थियों से घृणा है।"

जीने पर तीन चार आदमियों के चढ़ने की आवाज़ आई। वर्मा-जीने बिना देखे चिल्लाना शुरू कर दिया—"आइये! आइये!! अब आप लोगों का चार बज रहा हैं।"

चार व्यक्ति आकर सामने बिछे तख्त पर बैठ गये। वर्मा जी ने परिचय कराया—आप श्री अरोड़ा, मज़दूर सभा के संयुक्तमंत्री हैं। अभी अभी तीन वर्ष की सजा काटकर छूटे हैं। आप श्री मोहिले। रेलवेवर्कर यूनियन के प्रधानमन्त्री हैं और यहाँ से 'क्रान्ति' नामक एक साप्ताहिक पत्र भी निकालते हैं। आप कामरेड सारस्वत। प्रान्तीय असेम्बली के मेम्बर हैं और डिप्टी कलेक्टरी छोड़कर आपने हमारी पार्टी को अपना तन-मन-धन (केवल बीबी नहीं) अर्पित किया है। आप कामरेड रिज़वी हैं। उर्दू के प्रमुख क्रान्तिकारी लेखक और कवि। यहाँ प्रेसवर्कर यूनियन के प्रधान हैं।"

मोहन ने चारों को बारी बारी से नमस्ते किया। चारों के चेहरे पर उसे जीवन के उतार चढ़ाव की स्पष्ट रेखायें दिखाई दीं। कष्ट-सहन, आत्मत्याग, स्फूर्ति और लगन चारों के चेहरों से फूट रही थी। एक असाधारण बौद्धिक प्रकाश सभी के व्यक्तित्व पर चमक रहा था।

रिज़वी ने वर्माजी से कहा—"साहबज़ादे का परिचय दो।"

मोहन ने विनयपूर्वक सिर झुका लिया। वर्माजी ने कहा—"फ़तेहपूर जिले की किसानसभा के खास कार्यकर्ता हैं। बी० ए० में पढ़ने आये हैं। हाईस्कूल में प्रान्त में फर्स्ट आये। आई० ए० में आकर लीडरी सूझी। इलाहाबाद में पढ़ते थे। जनता का काम करते करते अपने 'कैरियर' की सुध नहीं रही। नतीजा यह हुआ कि सेकण्ड क्लास आकर रह गया। तुम्हें याद होगा मैं जून में

फतेहपूर गया था। वहाँ के किसानों पर इनका प्रभाव है। मैंने इन्हें सलाह दी तुम कानपूर में आकर रहो और पढ़ो। गम्भीर और मेहनती युवक हैं।"

चारों को हार्दिक प्रसन्नता हुई। रिज़वीने कहा—"भाई! तुम खूब आ गये। आदमी पहचानने में तुम्हें कमाल हासिल है वर्मा! इनके खैरमक़दम में क्यों न चाय का एक दौर चल जाय।"

वर्माजी ने रमई को बुलाकर चाय बनाने को कहा। मोहन की माँ ने थोड़े से शकरपाले और सेव बनाकर बाँध दिये थे। चुपचाप मोहन उठकर रमई से प्लेट माँग लाया और सन्दूक खोल शकरपाले और सेव निकालकर सामने प्लेट में रख दिये। बिना तकल्लुफ़ या धन्यवाद के सबने खाना शुरू कर दिया।

मोहिले ने पूछा—"तारा कब आवेगी? दो हफ्ते से ऊपर उसे गये हुए।"

"परसों पत्र आया था। तीस इकतीस तक आजायगी। मुझे खुशी है जितना पिछले साल दोनों साहबज़ादों से वह नाखुश थी उतना ही मोहन को पाकर खुश होगी। तुम्हें ताज्जुब होगा रिज़वी! मैं तुम लोगों से उमर में करीब करीब दूना हूँ। काँग्रेस का कोई 'सेसन' मैंने छोड़ा नहीं। बहुत से शहरों में काम किया है और सैकड़ों लड़कियों के निकट सम्पर्क में आया हूँ। मगर तारा जैसी लड़की मैंने आज तक नहीं देखी। फैशन, शोक, आराम और नज़ाकत जो औरतों की खास पहचान है जैसे उसे छू नहीं गये। हफ्तों हो जाते हैं सिर पर तेल नहीं डालती। जब धोबी आता है तो मैं ढूँढ़ ढूँढ़ कर उसके मैले कपड़े देता हूँ। आज तक उसने मुझसे धोती ब्लाउज लाने के लिये नहीं कहा। कई जोड़ी चट्टियाँ मैंने लाकर रख दिया है पर उसे तुम लोगों ने अक्सर नंगे पैर देखा होगा।"

"अब मैं कहूँ दादा!" रिज़वी ने कहा—"मैंने जो अपनी नज़्म "इन्क़लाब की रूह" लिखी है उसमें तारा की तस्वीर घूम फिरकर आगई है। एक दिन रात को नौ बजे मुझे मिली।

झपटी हुई पैदल चली जा रही थी। मैंने पुकारा। रुक गई। मैं लपककर सड़क की दूसरी तरफ से उसके पास आया। मालूम हुआ नवाबगंज से पैदल आरही है। मैंने कहा—तेरी सायकिल क्या हुई? बोली—एक मज़दूर के यहाँ पड़ी है। उसे जरूरत थी। मैंने कहा—इक्का क्यों नहीं कर लेती?" बिना किसी तहज़ीबी शर्म या हया के बोली—"पैसा नहीं है। दादा से कहाँ तक माँगू। मुझे अच्छा नहीं लगता।" मैंने निकालकर एक रुपया दिया और कहा—"तेरे हम सब दादा हैं। तू हम लोगो से क्यों नहीं माँग लेती?" इक्का बुलाकर उसे बैठाया और खुद बैठा। रास्ते में मोहिले के यहाँ उतरना था। मिलते ही मैंने मोहिले को बताया।

मोहिले ने कहा—"एक दिन मुझे बुलाने घर पहुँची। खैर! उस दिन तो सायकिल पर थी। धोती कुछ फट गई थी। माँ ने कहा—'बेटी! तेरी धोती फटी है। तू फटी धोती न पहना कर।' बोली—'माँ मैं सच कहूँ मुझे धोती बदलने का ख्याल भी नहीं आता। दादा अभी परसों छै धोतियाँ लाये हैं।' माँ उसे कमरे में ले गईं और एक धुली धोती निकालकर उसे पहनादी। वह फटी धोती अभी तक उनके पास रक्खी है।"

अरोड़ा ने कहा—"मैं उसकी काम करने की ताकत और तरीके देखकर दंग रह जाता हूँ। मजदूरों की बस्तियों में औरतों के क्लास लेती है। बच्चों को अलग पढ़ाती है। न जाने कितनों ने उसके कहने से ताड़ी, शराब और जुआ छोड़ दिया है। मज़दूरिनें उसे देवी की तरह मानती हैं। एक दिन एक बुढ़िया बोली—झाँसी-वाली रानी की अवतार है यह। मुझे हँसी रोकना मुश्किल हो गया।"

मोहन बैठा बैठा सब सुन रहा था। सहसा बातचीत का रुख पलटा। वर्मा से एक एक बीड़ी लेकर चारों ने सुलगाई। मोहिले ने कहा—इधर हमारा काम कुछ सुस्त रहा है। स्कूल और कालेजों के बन्द रहने से हमारे बहुत से 'स्टुडेण्ट कामरेड्स' बाहर चले गये। अब वे आ गये

हैं। हमें जमकर काम करना चाहिये। हमारी पार्टी की 'मेम्बर-शिप' बढ़नी चाहिये। कानपूर में तो काफ़ी है मगर और शहरों में आप और अरोड़ा यदि दूर करें तो बड़ा काम हो। हमारी 'मेम्बरशिप' अगर समस्त प्रान्त में देखी जाय तो अभी बहुत कम है।''

वर्माने दूसरी बीड़ी जलाते हुए कहा—"हमारे पास न तो पैसा है और न कार्यकर्ता। 'मेम्बरशिप' वाजबी वाजबी है। प्रचार के साधनों की दृष्टि से पेपर्स भी हमारे पास कहाँ हैं? यह तो हमारी लगन और कुर्बानी है जिसने हमें मज़दूर किसानोंमें इतना प्रिय बना दिया है कि आज उस वर्ग में हमारा ही नेतृत्व है। कोई भी दूसरी राजनैतिक पार्टी इस सिलसिले में हमारा मुकाबला नहां कर सकती। जहाँ तक अन्य बातों का सम्बन्ध है भीतर भीतर इतनी भयंकर क्रान्तिकारी क्रिया चल रही है कि हम लोग कल्पना नहीं कर सकते। हम लोगों को काम करते जाना है। इतिहास की शक्तियाँ, समय की ताकतें हमारी मदद पर हैं। दुनिया जिस शर्मनाक साये में होकर गुज़र रही है वह ज्यादा दिन टिकने वाला नहीं। लोगों ने यह अनुभव करना शुरू कर दिया है कि यंत्र युग के साथ साथ गुलामी का प्रश्न ज्यादा टेढ़ा और पेचीदा बन गया है। गुलामों पर शारीरिक सख्तियाँ कम होने लगी हैं पर आर्थिक शोषण की फाँसी का फंदा और कस दिया गया है। जहाँ कोड़े थे वहाँ कम मज़दूरी और उसमें भी कटौती आ गई। जहाँ धार्मिक, नैतिक बहिष्कार था वहाँ एक तिक्त, असहनीय सामाजिक घृणा आ गई। जहाँ ब्राह्मण शूद्र थे वहाँ प्रोलेतेरियत और बुर्जुआ हो गये।"

अरोरा ने जेब से एक अधजला सिगार निकालकर जलाते हुए कहा "मैं तो कभी कभी बावजूद इतने मार्क्सवादी साहित्य और विज्ञान की व्याख्या और अनुशीलन के चकित होकर सोचता रह जाता हूँ कि गुलामी की यह तालिका अंतहीन है। अपने अपने पेट के गुलाम सब हैं। फर्क इतना है कुछ की चौबीस घण्टे गुलामी करके भी पेट की गुलामी नहीं छूटती। और कुछ लोगों को कोई काम नहीं करना पड़ता। पहले अन्न-पानी के अभाव में आदमी को मारा जाता था—वह सूख

कर मर जाता था। इसी तरीके को अधिक सभ्य आवरण देकर यों रख दिया गया है कि मज़दूरों को केवल 'लिविंगवेज' दिया जाय। गाँधीवादने निःसंदेह एक नई शक्ति दी है। मगर उसने वस्तुस्थितियों को केवल ऊपरी सतह से छुआ। बुनियादी असंगतियों की ओर उसकी दृष्टि नहीं गई! और जाती भी कैसे? मार्क्सवादी दृष्टिकोण के बिना इस भयंकर शोषण और अमानवीय रक्तपान को समझा ही कैसे जा सकता है!"

वर्माने चीखकर कहा—इतनी जोर से चीखकर कि मोहन जो मन ही मन गाँधीवाद पर एकान्त श्रद्धा रखता था चौंक पड़ा—"तुम गाँधीवाद का नाम मेरे सामने लेते हो! एक वैज्ञानिक क्रान्तिवादी होते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती। गाँधीवाद एक महान विश्रृँखलित करने-वाली शक्ति है। समय का प्रवाह—सन् इक्कीस के आँदोलन से लेकर अब तक का इतिहास यह साबित कर चुका है। बाहरी तौर पर उसने एक प्रतिकूल क्रिया ही की है। धर्म, अंधश्रद्धा, लँगड़े विश्वास और अकल्पनीय भक्ति की भावना को उसने जगाया है जो अर्ध-शिक्षित भारतीय जन-मस्तिष्क के प्रधान चिन्ह हैं। मानता हूँ उसकी 'अपील' इन्सान को बेहोश कर देने वाली है। उसमें बुद्धि की गाँठें टूट जाती हैं—वह निष्प्राण हो जाती है जैसे साँप गाँठें टूटने से मर जाता है। इतने महान राष्ट्र के विराट राजनैतिक जागरण को उसने धार्मिकता के दलदल में फँसा दिया है। अनेक महान और ऊँचे चरित्र के कार्यकर्ता जो जनता को सच्ची राजनैतिक लड़ाई में खींचकर ले जाते और ब्रिटिश पूँजीशाही और साम्राज्यशाही के प्रभुत्व का नाश करते, खद्दर के फेरीवाले होकर रह गये। छोटी छोटी बातों में जेलयात्रा करना और थोड़ा प्रदर्शन कर देना ही देशभक्ति की माप रहा। गाँधीवाद ने दृष्टि को कुंठित किया है—जीवन की आलोचनात्मक शक्ति का मज़ाक उड़ाया है। उसने बुद्धि के विरुद्ध जिहाद किया है। गाँधीजी इतने महान हैं कि अपनी पराजयों को भी जीत साबित कर देते हैं। अपनी असफलताओं की सारी जिम्मेदारी समाज पर छोड़ देते हैं। उनके

उद्देश्य और नियत की पवित्रता पर मैं हमला नहीं करता—कौन पापी ऐसा करने का साहस करेगा। परन्तु उनके कार्यों के प्रभावों ने उस वर्ग की जड़ सदैव मज़बूत की है जिसकी जड़ें खोदने का उद्योग करते वे दीखे हैं।"

मोहिले ने कहा—"अँगरेजी राज्य के पहले हिन्दुस्तान की लाखों झोपड़ियों में कपड़ा काता और बुना जाता था। कपड़े का यह व्यापार जो भारतवर्ष के अस्तित्व के लिये इतना आवश्यक है न जाने कितने और कैसे कैसे अमानुषिक, अवर्णनीय और हृदयहीन तरीकों से जो पशुता को भी लज्जित करते हैं, नष्ट किया गया। स्वयं अँगरेज दर्शकों और लेखकों की कृतियाँ इसका साक्ष्य देती हैं। इसके बाद ब्रिटिश पूँजीवाद और उसके गुलाम भारतीय पूँजीवाद का युग आया। शहरों के रहनेवाले यह बात कम जानते हैं। मगर आप (मोहन) से पूछिये—किस प्रकार भारत की अधनंगी और अधभूखी जनता धीरे धीरे निर्जीवता के कुण्ड में धँसती जाती है। शहर के मध्य वर्ग के लोग यह नहीं जानते उनके थोड़े से चैन व आराम वह दलाली हैं जो उन्हें विदेशी और स्वदेशी शोषण में सहायता देने के लिये मिलती है। यह लाभ, यह दलाली जनता को चूसकर निकाली जाती है। क्या उन्हें पता है क़ानून से स्थापित भारतीय सरकार जो एक औपनवेशिक नौकरशाही है केवल जनता के शोषण के बल पर चलती है। कोई बाह्य रूप—कोई भी शब्दों और तर्कों की उलटफेर, कोई भी आँकड़े क्या उस साक्ष्य को मेट सकते हैं जो गाँवों के निंचुड़े चुसे पंजर खुली दृष्टि और आत्मा को देते हैं? दुनिया के इतिहास में रूस को छोड़कर कहीं ऐसा दर्दनाक गुनाह हुआ है यह याद नहीं आता। और रूस में फलस्वरूप जो हुआ वह मानवता के इतिहास में हिमालय की तरह खड़ा है।"

वर्माने फिर गरजते हुए कहा—(उनकी विशेषता थी कि वे मित्रों में बोलते हुए भी व्याख्यान देने लगते थे)—"गाँधीवाद को अपनाकर जनता ने इतनी कुरबानी की—इतना कष्ट-

सहन किया पर उसे क्या मिला ? गाँधीवाद का मशीनविरोध, उसकी खद्दर की वकालत, जनता को बार बार उसके आदेश कि वह अँगरेज़ और भारतीय पूँजीपतियों के हृदय-परिवर्तन की ईश्वर से प्रार्थना करे—यह सब क्या है ? दुनिया की सबसे बड़ी शोषित जनता के साथ यह मज़ाक कैसा बेरहम है ? गाँधीजी ने देश के प्रगति-चिह्न अभ्युदयशील राजनैतिक जन-आन्दोलनों को केवल व्यक्तिगत सनक के लिये बार बार पीछे हटने का आग्रह किया है । क्या देश और समाज के लिये यह घातक नहीं ? भारतीय स्वतंत्रता सग्राम के महान संघर्ष के बीचोबीच उन्होंने कभी कभी कैसी पराजयवादिता दिखाई है ! मार्क्सवादी प्रकाश के सामने यह तमाच्छादित पक्ष और भी काला नज़र आयगा । जनता की सामूहिक शक्ति को सदैव ही उन्होंने देश के राष्ट्रीय स्वाधीनतासंग्राम की विरोधी धारा में प्रवाहित किया है । चर्खा कातने से ही स्वराज्य मिलेगा—यह जिनकी मान्यता है वे क्यों यह भूल जाते हैं कि भारतवर्ष ने सदियों तक चर्खा काता है— सूत बुना है । फिर भी उस पर सतत और निर्दय आक्रमण होते रहे । विदेशी शासकों के कितने ही राज्यवंशों ने उसपर लगातार राज्य किया । जिस समय अँगरेज भारतवर्ष में आये वह अपनी शक्तिभर उस समय भी चर्खा कात रहा था । फिर भी न तो सीधे सादे सर्वप्रचलित चर्खे या ढाका के फैन्सी मसलिन और न मुर्शिदाबाद के रेशम क्षण भर के लिये भी अँगरेजी आक्रमण और विजय की गति को रोक सके । मगर कौन कहे—कौन समझे । इस ऐतिहासिक महादेश में यह अनर्गलता इसीलिये चल सकी है कि जनता के विश्वास धार्मिक मान्यताओं पर हैं । यही कारण है ब्रिटिश पूँजीवाद और उसीके कलुषित साये के नीचे हिन्दुस्तानी पूँजीवाद की जड़ें पनपी हैं । जनता अब सब समझ रही है । उसकी चेतना पर पड़ा रहस्य और आकाशीय श्रोतों का परदा फट रहा है । वह जान गई है बिना वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को बदले और वर्गहीन समाज की स्थापना किये उसके दुःख दूर न होंगे ।"

मोहन ने कुछ रुकते रुकते दबी ज़बान से कहा—"आप क्यों

यह भूल जाते हैं कि एक क्रान्तिकारी ढंग पर राजनैतिक उथल पुथल मचवाने के बजाय गाँधीजी ने सामाजिक और मानवीय सेवा अधिक करनी चाही है। किसानों की क्रान्तिकारी स्फूर्ति को वैधानिक प्रवाहों की ओर खींचने में उन्होंने अपनी शक्ति लगायी है, यह मैं मानता हूँ। परन्तु वे संत हैं—उन्होंने कष्टसहन किया है, इससे कौन इन्कार करेगा?

अरोड़ा ने कहा—"आपने गाँधीजी की पुस्तकें नहीं पढ़ी हैं। उन्होंने खुद एक बार कहा था कष्टसहन करने से व्यक्ति संत हो जाता है तो प्रत्येक औरत कष्टसहन करती है—मगर वह संत नहीं हो पाती।"

वर्मा ने कहा—"नैतिक और आचारिक मूल्यों पर जोर देना ही वे जानते हैं। राजनैतिक और वैधानिक माँगों पर जोर देना उन्हें आता नहीं। शुरू से किसानों और मज़दूरों के आन्दोलन से उन्होंने अपने को दूर रखा है। पूँजीपति वर्ग के आर्थिक और नैतिक बल के सहारे चलनेवाली कांग्रेस ने श्रमिकों के आन्दोलनों और स्वत्व-रक्षण-चेष्टाओं का सदैव विरोध किया है। किसानों को चाहिये वे जमींदारों के शोषण को स्वीकार करें और प्रतिरोध में आवाज़ न उठायें। यदि ईश्वर है और वे मानते हैं कि है तो जमींदारों का हृदय-परिवर्तन होगा और कयामत के बाद किसानों के दिन लौटेंगे। गाँधी-वाद ने प्रत्यक्ष रूप से किसानों और श्रमिकों को उनके निकटवर्ती शोषणों के लौहचक्र में पिसते रहने को कहा है। उनका आन्दोलन सच्चे अर्थों में कभी जनआन्दोलन नहीं हो सका। यही कारण है इतनी बड़ी बड़ी योजनाओं को लेकर चलने वाला गाँधीवाद सदैव उस शक्ति और शौर्य से वंचित रहा जो—और केवल जो—विजय की ओर ले जा सकता है। उस स्वराज्य का मूल्य क्या जो व्यक्ति के द्वारा व्यक्ति—और वर्ग के द्वारा वर्ग—के शोषण को कायम रक्खे।"

रिज़वी अब तक खामोश बैठे सिगार पी रहे थे। बोले—"तारा

तुम्हारे 'टेबिल टाक' सुन-सुनकर आज हिन्दुस्तान के दोनों बड़े तबकों में क्राँति फूँक रही है। भाई मोहन! ये हम लोगों के और हमारे जैसे सैकड़ों के गुरू हैं। याद कर लो। इनका लक़ब है 'दादा'। इनके पास रहकर इन्सान को रोशनी और आग दोनों मिलते हैं। आधी से ज्यादा इनकी ज़िन्दगी जेलखानों में या कुत्तों की तरह 'अंडर ग्राउंड' रहने में बीती है। इनकी सबसे बड़ी देन है 'तारा'। पूरी निहलिस्ट है। इन लोगों की ट्रेनिंग में तुम देश और समाज की उन ताकतों को पहचानोगे जिनकी शिर्कत के बगैर न किसी मुल्क में क्रांति हुई है, न किसी कल्चर में इन्क़लाब।"

चारों उठकर चल दिये। मोहन और वर्मा नीचे सड़क तक जा कर भेज आये। लौटकर दोनों ने साथ खाना खाया। वर्माजी खाते समय मौन और गंभीर रहे। लगता था जैसे छाती का कोई पुराना दर्द बहुत दिनों के बाद एकाएक उठ पड़ा हो। मोहन को सोने के लिये कहकर वे कहीं चल दिये। दरवाजा बन्द कर रमई ऊपर आया। मोहन ने पूछा—"दादा कब तक लौटेंगे ?"

"कुछ ठीक नहीं। बारह एक तक आ गये तो आ गये, नहीं तो फिर सुबह लौटेंगे।"

मोहन लेट कर पढ़ने लगा। तारा की काल्पनिक मूर्ति आँखों के सामने घूमती रही।

दूसरे दिन मोहन का नाम कालेज में लिख गया। वर्माजी ने रुपये का प्रबंध कर दिया। सुबह वर्माजी से बातचीत करने में, दोपहर कालेज में, शाम उनके मित्रों के साथ और रात पढ़ने लिखने में व्यतीत होती थी। कालेज में क्लासेज शुरू हो गये थे। और नियमित रूप से पढ़ाई आरम्भ हो चुकी थी। वर्माजी के मित्रों की संख्या बहुत बड़ी थी। शहर का प्रत्येक सार्वजनिक कार्यकर्ता उनका मित्र था। कालेजों के विद्यार्थी, अध्यापक, किसान, मज़दूर सभा के कार्यकर्ता, आतंकवादी, कांग्रेस के पदाधिकारी, प्रगतिशील लेखकसंघ के सदस्य, हिन्दू सभा, मुस्लिम-लीग के मेम्बरान, पत्र-संपादक, कवि,

और लेखक सभी का आना जाना लगा रहता था।

वर्माजी के चरित्र और स्वभाव में मोहन को एक असाधारणता दिखाई देती थी। इतना सुलझा हुआ राजनैतिक मस्तिष्क, ऐसी निष्कपट चिन्ताधारा, ओजस्विनी वाणी, आनंदी स्वभाव, तीखी वर्गचेतना, थोथी सामाजिकता और आभिजात्य के प्रति ऐसा प्रखर आक्रोश उसने एक साथ नहीं देखे थे। दूसरी ओर ऐसा सरस कवि-हृदय, एकाग्र अध्ययननिष्ठा, प्राणपूर्ण कार्य-क्षमता, जोरदार लेखन शैली, सजग और संयत तार्किकता, संगठन और जागृत करने की ऐसी ज्वालामयी शक्ति देखकर मोहन चकित था। जैसे नाव के पीछे पानी की रेखायें चलती हैं—जैसे फाल के पीछे हल के दरार चलते हैं—उसी तरह उनके पीछे जनता चलती थी।

सात आठ दिन के बाद एक दिन सुबह उठते ही मोहन ने देखा, वर्माजी अपना झोला और बिस्तरा सँभाल रहे हैं। पूछने पर पता लगा, प्रान्त के एक छोटे से जिले में किसानों की जागृति से अप्रतिभ होकर अधिकारियों ने कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया है और भाँति भाँति के प्रतिबंध लगाकर शेष को घर से बाहर न निकलने और मौन रहने के लिये विवश किया जा रहा है। दूसरी ओर किसानों के एक क्रियाशील वर्ग पर जमींदारों के कर्मचारी और महाजनों के दूत निर्दयतापूर्वक प्रहार कर रहे हैं। पुलिस की ओर से उन्हें पूरा पूरा सहयोग मिल रहा है। प्रान्तीय किसानसभा के सभापति होने के नाते वर्माजी का वहाँ जाना आवश्यक था। देहातों में सनसनी थी। जनता और जमींदारों में किसी क्षण संघर्ष हो सकता था।

मोहन ने कहा—"मैं भी आप के साथ चलूँगा।"

वर्मा ने दो तीन पुस्तकें झोले में रखते हुए कहा—"नहीं। तुम यहीं रहो। आज तारा आ जायगी। मैं इस बार कई जिलों में दौरा करूँगा। अधिक समय लगेगा। तुम पढ़ने लिखने की ओर ध्यान दो।"

मोहन ने कहा—"आपके जीवन से लाखों को शिक्षा मिलती है। आपका व्यक्तित्व मजदूरों और किसानों को अपने संघर्ष में उत्साहित करता है। आपके शब्दों में बिजली है। आपके विचार हमारे प्रकाश-दीप हैं। आपके साथ रहकर अब कालेज में नहीं पढ़ सकूँगा; यह मुझे इन आठ दिनों में ही मालूम हो गया।

[ ११ ]

शाम को कालेज से आकर मोहन ने देखा, सुव्यवस्था और सफाई से उसका कमरा जगमगा रहा है। उसकी और वर्मा की सब किताबें जो इधर उधर कमरे में बिखरी थीं आलमारी के खानों में सजाकर रख दी गई हैं। खाट पर बिस्तरा ठीक तरह से बिछा है। चद्दर और तकिये के गिलाफ बदल दिये गये हैं। मैले कपड़े दिखाई नहीं देते। शायद रमई धोबी के यहाँ दे आया है। टेबिल पर एक सफेद कपड़ा बिछा है और लिखने का सामान ठीक तरह से सजा है। रमई की लापरवाही का रोना वर्माजी अक्सर रोया करते थे। आज कमरे में ऐसी सफाई और व्यवस्था देखकर मोहन को आश्चर्य और हर्ष हुआ। आँख मूँदकर वह खाट पर लेट गया। सुबह से रह रहकर ममता की याद आ रही थी; कमरे की यह सफाई देखकर वह और हरी हो गई।

किसी ने कमरे में प्रवेश किया। मोहन ने आँखें खोलीं। सामने एक अठारह वर्ष की युवती हाथ जोड़े खड़ी थी। उसके रूखे सूखे बाल तेजपूर्ण मुख पर बिखरे थे जैसे दूर्वादल सूरज की ओर अपनी बाहें बढ़ाये हों। आँखों में सीधे अंतस्तल की तह तक उतर जाने वाली तीव्र ज्योति थी। एक अधमैली मोटी साड़ी और वैसा ही ब्लाउज पहने थी। माथे पर पसीने की बूँदे झलक उठी थीं। हाथों में दो दो साधारण चूड़ियाँ थीं। उज्ज्वल—गौर वर्ण और स्वास्थ्य की लालिमा सारे शरीर को दीप्ति प्रदान कर रही थी। रूप और लावण्य जैसे फूटे पड़ते थे। परन्तु एक तीसरे तेज से दोनों झुलसे जाते थे।

मोहन, आदर से उठकर खड़ा हो गया—प्रत्युत्तर में उसने हाथ जोड़कर नमस्कार किया। युवती ने निःसंकोच भाव से सामने पड़ी कुर्सी खींच ली और बैठती हुई बोली—"मेरा नाम तारा है। भाई साहब से आपको मेरे बारे में मालूम हुआ होगा। आज मैं आई तो वे चले गये। आपको कालेज से आये देर हुई क्या?"

"नहीं। अभी आया हूँ। आप कब आईं?"

"मैं एक बजे आगई थी। आपको कोई कष्ट तो नहीं है? भाई साहब और रमई दोनों एक दूसरे से बढ़कर लापरवाह हैं। कमरा तो आपका भानमती का पिटारा हो रहा था। पूरे घर का यही हाल था। अभी मैंने सफाई खत्म की है। अब जाती हूँ नहाने। रमई आप की चाय बना रहा है।"

उत्तर की प्रतीक्षा न कर तारा फुर्ती से चली गई। मोहन तब से उठकर खड़ा ही था। तारा ने एक बार भी उससे बैठने को नहीं कहा। मोहन फिर लेट गया। दस मिनट के बाद रमई चाय के प्याले और पकौड़ियों की तश्तरी रख गया। मोहन ने आँखें खोलीं और मूँदली। कानपूर आने के इतने दिन बाद उसे ममता की याद आई थी—और तेज टीसें लेकर आई थी। सम्पूर्ण मन जैसे एक व्यथा से गुमर गुमर कर रहा था।

तारा बाथरूम से आ गई। देह पर एक अधगीली साफ खद्दर की साड़ी और ब्लाउज था। गीले बाल यत्न से पोंछकर पीछे की ओर फेंक दिये गये थे। गुलबहार की तरह तरल स्निग्धता में धुला मुख और निखर आया था।

मोहन उठकर बैठ गया। तारा ने कहा—"आपने चाय नहीं पी। ठंडी हो गई होगी। आँखें मूँदे मन ही मन कुछ सोच रहे थे क्या?"

सहज और अकृत्रिम माधुरी से मोहन का मुख प्रफुल्लित हो उठा, जैसे चिन्ता की सारी रेखायें उसमें धुल गई हों। बोला—"आपकी प्रतीक्षा कर रहा था। सोचा, स्नान करके आप आती हैं तभी चाय

पियेंगे। चाय मैं पीता नहीं था। यहाँ दादा के साथ रोज पीनी पड़ती है। अब इतना जान गया हूँ, चाय अकेले पीने की चीज नहीं।"

मोहन की ओर तश्तरी और प्याला बढ़ाकर तारा कुरसी के सहारे खड़ी चाय पीने लगी। चाय में पकौड़ी भिगोते हुये उसने कहा—"शाम को आप खाना क्या खायँगे। रमई से बनाने को कह दूँ। नहीं जो मन में आयेगा ऊटपटाँग बनाकर रख देगा।"

मोहन ने कहा—"मुझे खाने पीने की कोई रुचि नहीं है। भूख लगने पर सब कुछ अच्छा लगता है। हाँ कच्चा या जला न हो। यों खा सभी कुछ लेता हूँ।"

तारा उल्लासपूर्वक बोली—"सच! मेरा भी यही हाल है। जीवन में इतने काम हैं, इतनी उलझनें और परेशानियाँ हैं कि खाने पीने की सुघरता और पसंद नापसंद को लेकर क्या सोचा जाय। दादा को तो कभी कभी खाने की याद दिलानी पड़ती है। अपने जिले की किसानसभा के भी तो आप कार्यकर्ता थे। दादा एक बार कह रहे थे।"

"हाँ, थोड़ा बहुत काम मैं करता था। परन्तु पढ़ने से समय ही नहीं मिला। आप इस वर्ष अपना कोर्स मेरे साथ पढ़ लें।

चाय पीकर तारा आराम से टेबिल पर पैर फैलाये बैठी थी। बोली—"जी नहीं, मेरा अब कतई इरादा नहीं है। मैंने जिस जीवन को अपनाया है उसमें सबसे बढ़कर कार्य है प्रचार। वह प्रचार है वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था के—उसके असीम और अविराम शोषण के विरुद्ध। आज के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की समस्त असंगतियों के विरुद्ध।"

"मैं सहमत हूँ। परन्तु आपको स्वावलम्बी बनना है। दादा से अलग होने पर आपका काम कैसे चलेगा? माफ कीजियेगा, पहली मुलाकात में.........."

"कोई हर्ज नहीं। मुझे ये व्यर्थ के संकोच नहीं। कोई भी प्रश्न मुझ से किया जा सकता है। दादा से अलग होने पर मुझे कठिनाई नहीं होगी। साल में आठ धोती चार ब्लाउज मेरे लिये काफी हैं। रहने और खाने की चिन्ता नहीं। कहीं पड़ी रहूँगी। जिसके बच्चों को घन्टे दो घंटे पढ़ा दूँगी वही सुबह शाम खाना दे देगा। तकलीफ तो उन्हें होती है भाई साहब, जिनके कुछ स्वप्न होते हैं—कुछ अरमान होते हैं! मेरे साथ इस प्रकार का कोई बन्धन नहीं। आरम्भ से दादा के जीवन पर अपने को ढाल मैंने कठोर वास्तविकता की दुनिया में शिक्षा पाई है। कालेज की शिक्षा और जीवन को यान्त्रिक बना देनेवाले मान मेरे लिये महत्व नहीं रखते। जब जीवन में ही प्रवृत्ति नहीं तो तृप्ति अतृप्ति का प्रश्न कैसा?"

"आपने अपने लिये जिस पथ को चुना है उसमें आप ऐसे ही अभावों के बीच सदैव रह सकेंगी! क्या आपने यह सोचा है? अभी आपका कितना बड़ा जीवन पड़ा है। दादा यदि यह उचित समझें कि आप पढ़ लिखकर अपने आदर्श के लिये लड़ें तो क्या बेजा है। मैं तो आप सा ही कच्चा हूँ। यह मेरी राय नहीं है। यह दादा की बात है जो उमर में हमसे ढाई गुने हैं और जिन्होंने जीवन में असंख्य चढ़ाव उतार देखे हैं।"

तारा सँभल कर बैठ गई। मोहन कहता गया—"मैंने जीवन के उषःकाल से क्रान्तिकारी होने का स्वप्न देखा है। आज वह सपना कुछ करना चाहता है—जीवन के संघर्ष में ताल ठोंककर उतरना चाहता है—कालेज का यह रूटीन मुझसे भी नहीं झेला जाता। भीतर द्वंद्व चलता है। सुबह मैंने दादा से कहा था—"आपके साथ रहकर पढ़ना लिखना कैसे होगा! लगता है क्रान्ति के लिये व्यक्ति और भावना दोनों आवश्यक हैं। दादा कहते हैं पढ़ो और समय निकालकर पार्टी का काम करो। उनका कहना भी बेमानी नहीं है।........"

तारा ने बीच में अधीरतापूर्वक कहा—"दादा की दुनियादारी और व्यावहारिकता है यह। जिस समय समाज के ढाँचे को आमूल बदलने का प्रश्न है—जीवन के समस्त मूल्यों को नये सिरे से रचने की ज़रूरत है उस समय यह हिसाबीपन मुझे नहीं पसन्द आता। जब मकान में आग लगती है तब गैलन नाप कर पानी नहीं छोड़ा जाता। क्या आप मुझसे असहमत हैं? मैं तब हीन धारणा और अविश्वास से ये वजनी पत्थर छाती पर रखकर कर्म के क्षेत्र में नहीं उतर सकती। दादा से अनेक बार मेरा विवाद हुआ है। मेरे पास समय कहाँ है? मुझे पढ़ना और परीक्षा पास करना बुरा नहीं लगता। मैं जानती हूँ ज्ञान के बिना जीवन मुक्त नहीं होता। ज्ञान को पकड़ने की क्षमता मस्तिष्क में परीक्षार्थी की भाँति साधना किये बिना नहीं आती। खैर! अपने जिले की किसानसभा के हालचाल बताइये।"

"मैं गाँव से बाहर ही रहा। न तो कुछ काम कर सका—न स्थिति का अध्ययन। इतना जानता हूँ किसानों में नई चेतना और आत्मबल का उदय हो रहा है। सदियों का लौहचक्र में वे पिसते रहे हैं और समाज के अन्य सभी वर्गों ने मिलकर बेरहमी से उनका शोषण किया है। आज उनमें भयंकर प्रतिक्रिया हुई है। उनमें प्रतिहिंसा के अंगारे सुलग रहे हैं। वे साम्यवादी व्यवस्था और श्रम-सत्ता की स्थापना का स्वप्न देखने लगे हैं। आवश्यकता है उन्हें धैर्य-पूर्वक विचारशीलता के साथ अपने आन्दोलन को आगे बढ़ाने की—वर्गवाद का स्वस्थ और सर्वकल्याणकारी स्वरूप आगे रखने की। तनिक तनिक सी बातों में उलझ उलझकर अपनी शक्ति और क्षमता का अपव्यय करने के बजाय यदि वे दृढ़तापूर्वक समाज की मूल विकृ-तियों और असंगतियों पर प्रहार करते गये तो उनकी विजय निश्चित है। शिक्षा—शिक्षा--शिक्षा अभी यही हमारा नारा होना चाहिये। सामाजिक आचार-विचारों के निर्जीव बन्धन जिनमें वह बुरी तरह जकड़े हैं, उनकी धार्मिकता, उनके अन्ध-विश्वास सभी उसके शोषण के कारण हैं। बिना शिक्षा के प्रचार के इनसे त्राण नहीं। शिक्षा के आर्थिक

सामाजिक और राजनैतिक पहलू देखने होंगे। राष्ट्र और समाज की सभी क्रियायें भिन्न भिन्न दिशाओं से आकर उसी वर्ग में केन्द्रित हो गई हैं। बिना उसे सबल और स्वतन्त्र बनाये हमारे उद्देश्य की सिद्धि नहीं हो सकती।"

"मुझे किसान और मज़दूर दोनों के बीच में काम करने का अवसर मिला है। मैंने दोनों के जीवन की विभीषिकायें देखी हैं। परन्तु देहातों जैसी गरीबी और रोमांचकारी उजड़ापन मुझे शहरों में देखने को नहीं मिला। जैसे मानव और पशु में कोई अन्तर ही न रह गया हो......... ..... कब तक यह नारकीय स्थिति चलेगी यही मैं सोचा करती हूँ।" मैं ऐसे लोगों का दल तैयार करना चाहती हूँ जो इस आग को अपने रक्त, हड्डी, मज्जा से धधकाते रहें।"

"हमें इन सभी तबकों के भीतर ऐसी प्रचण्ड, बौद्धिक और तटस्थ घृणा का बीज बोना है—जो जीवन के समस्त अगतिमूलक विधानों को ठुकरा सके। हमें साथियों का ऐसा सुदृढ़ संगठन कर लेना है जो जनशक्तियों को लेकर चले और जिसके पीछे मानवता की प्रत्येक इकाई हो। आप सुन रही हैं न ?"

"हाँ हाँ आप कहिये।"

"अधिक नहीं कहना है। पूँजीवाद के खिलाफ असल में यही पहला मोर्चा होगा। मैंने गाँवों में दो साल पहले ऐसे आयोजनों की नींव डाली थी। परन्तु मैं बराबर बाहर रहता था और मुझे सहकर्मी भी नहीं मिले। हम कहीं इस संस्था को सस्ते क्लबों का रूप देकर सन्तुष्ट न होजाँय। हमें वहाँ क्रान्ति की दीक्षा देनी होगी। व्यक्ति-व्यक्ति के सोये अहं को सुलगाकर उसे सामाजिक अहं का रूप देना होगा। पूँजीवाद और श्रमसत्ता के बीच किसी भी दिन छिड़ जाने वाले अखंड संग्राम के लिए हमें सिपाही तैयार करने होंगे।

मैं यहाँ आया हूँ जनआन्दोलन का अनुभव प्राप्त करने। किन परिस्थितियों में आया हूँ यह आप नहीं जानतीं। जीवन के सबसे गहरे, सबसे आन्तरिक और सबसे सुदृढ़ सूत्र को खंड खंड करके आया हूँ। इसका सारा श्रेय दादा को है।

तारा ने कुछ जिज्ञासा के साथ पूँछा—"तो क्या आप क्रान्तिकारी आन्दोलन से बिलकुल उदासीन थे? क्या आप हमारे उन नौजवानाने वतन की तरह थे जो पढ़ लिखकर ऊँची ऊँची सरकारी नौकरियों की लालसा किया करते हैं और किसी बड़े पदाधिकारी की लड़की के साथ विवाह करने का स्वप्न बाँधा करते हैं?"

"नही वैसा तो कभी नहीं था। परन्तु इस सारी क्रिया के मर्म में मैं नही पैठा था। मेरी एक अलग दुनिया थी। जीवन मेरे लिये एक बचाव था। एकाएक मुझे जीवन की कटुता लगी। देहात में रहने और पलने के कारण मैंने देखा—हम सपनों की जिन रंगीनियों को लेकर इतराते घूमते हैं उनके मूल में किनका और कितना आर्तनाद—कितना चीत्कार—कैसी मूक छटपटाहट संचित है। मेरे अन्दर एक संघर्ष पैदा हुआ जो कुछ दिन तक चलता रहा। मेरे सामने एक प्रश्न खड़ा हुआ—दूसरा—तीसरा—फिर यही ताता लगा रहा। मैंने देखा और स्पष्ट देखा—यह मेरा नहीं मेरे जैसे करोड़ों के अस्तित्व का सवाल है। बाद में मार्क्सवाद पढ़ने समझने का मौका मिला। सारे संघर्ष, आत्मपीड़न और अन्तर्द्वन्द का हल मुझे मिल गया। मुझे लगा जीवन का सामाजीकरण—समाज के लिये अपने को उत्सर्ग कर देना ही मानवात्मा की मुक्ति है। जीवन के अन्य सारे दर्शन इसके सामने फीके पड़ जाते हैं—सारी अनबूझ गाठें यहीं आकर खुल जाती हैं। क्रान्तिवाद की जड़ें मेरे अन्तर में जमीं।"

दोनों खाना खा चुके थे। तारा ने कहा—"इसके बाद......"

"अभी बतलाता हूँ। लम्बी, अनगढ़ और उखड़ी पुखड़ी सी एक बेसिलसिलेवार कहानी है।"

मोहन ने पान खाया और बिस्तर पर लेट गया। तारा सामने कुर्सी पर बैठी थी। एक अप्रत्याशित उत्सुकता उसे घेरे थी। जैसे जिस साथी की तलाश उसे थी वह मिल रहा हो।

मोहन बोला—"मैंने इस सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का अध्ययन किया। जीवन में ऐसी भयंकर और नारकीय विषमता हो सकती है मुझे ज्ञात न था। विद्यापति, चन्डीदास, और मीरा के प्रेम निवेदनों को लेकर मैं मस्त रहा करता था। परन्तु मेरी आँखें खुलती गई। गाँव में मेरी एक मुँहबोली बहन है—ममता। उसे भी मैंने आत्मा के इन संघर्षों की झलक नहीं पाने दी। अपने जिले में किसानसभा की स्थापना की। जमीदारों, अधिकारियों और महाजनों का शोषण देख-देखकर मेरे भीतर जलन होती थी। बाद में दादा का जब वहाँ जाना हुआ तो मैं दो तीन दिन उनके साथ रहा और उनकी बातें सुनी—समझीं। मेरे सारे सन्देह दूर हो गये। मेरी समझ में आगया जिस युगान्तरकारी शक्ति को मैं एक घटना मानता था वह मेरे अन्दर है—तुम्हारे अन्दर है—हम सब के अन्दर है। वह व्यक्ति का 'विजन,' विकास या परिणति नहीं है। वह समाज की वस्तु है- समाज की शक्ति है—समाज की परिणति है। वह ऐकान्तिक साधना का फल नहीं—वह सामूहिक अनुष्ठान की ज्वाला है। वह कोई दैवी या आकस्मिक घटना नहीं। वह पैदा की जाती है—विकसित की जाती है। बलिदानों पर उसकी नींव पड़ती है। तेज़ शराब की तरह उसे पीकर व्यक्तित्व को उसमें भुलाया नहीं जाता। वह एक विराट व्यापक प्रेम का सहयोग-सामर्थ्य है जो एक सामाजिक क्रिया है। यही सच्ची क्रान्ति है जो समाज में प्रतिष्ठित पूँजीवादी शोषण की निरन्तर डकैती का विरोध करती है। जितनी भी आज्ञायें और व्यवस्थायें हैं सब पूँजीपति श्रेणी की सरकार ने पूँजीपति श्रेणी के अधिकारों और शासन को कायम रखने के लिये जारी की हैं। इस व्यवस्था का जारी रहना ही इस सरकार की दृष्टि में—इस

न्यायशाला की निगाह में न्याय है।"

मोहन को खाँसी आ गई। चार पाँच मिनट रुककर बोला—"यही नहीं इस व्यवस्था ने—इस सरकार ने—एक ऐसी गन्दी मनोवृत्ति पैदाकी है जो शोषण करने को या शोषण में सहायक होने को ही शिवता और संस्कृति मानती है। कोई साहित्य, कोई कला-आन्दोलन, कोई प्रगतिवार्ता जो इस मनोवृत्ति का उच्छेद करके एक सामाजिक मनोवृत्ति स्थापित करना चाहती है अशिव और असुन्दर करार दी जाती है। रवीन्द्रनाथ को स्टेलिन से बड़ा क्रान्तिकारी माननेवाले अब भी इस देश में मौजूद हैं और अपने को क्रान्ति का ठेकेदार समझते हैं। क्रान्ति को व्यक्तिवाद की संकीर्ण भूमि पर आधारित करके वे इस जनजागरण को मेट देना चाहते हैं। परन्तु हमें सन्तोष है जिस महान जनगण को लेकर हमारा यह आन्दोलन है—सच्ची क्रान्तिकारी प्रतिभा का स्रोत वहीं है। जिस क्रान्ति की हम पूजा करते हैं और जिसके लिये हम अपना सर्वस्व उत्सर्ग करने बैठे हैं वह भावुकता या विलाप नहीं। उसका अनुभव हम सचेतन मस्तिष्क की शिरा-शिरा में करते हैं! उस अन्तः शक्ति के लिये—उस महामहिम विभूति के लिये हमारे अन्दर एक उत्कट पूजा भाव है। यह पूजा होगी हमारे प्रत्येक और अन्तिम रक्तबिन्दु से—हमारी प्रत्येक अनलवाहिनी श्वास से—हमारे प्रत्येक पुन्य से—हमारे प्रत्येक आज के करणीय और अकरणीय कार्य से।"

तारा भावुक थी। श्रद्धा, संभ्रमभाव से मोहन के रूखे सूखे मुख की ओर देख रही थी। बोली—"आपने तो समाँ बाँध दिया। अपने अर्धज्ञान या अज्ञान से मैंने यह रास्ता पकड़ा। आज मैं समझ रही हूँ यह प्रवाह ही मानवता के कल्याण की सतत प्रवहवान धारा है जिसमें मनुष्य अपने ही भीतर घुलना त्यागकर अपने से बाहर आता है। जीवन को अपनाने और अपना बनाने की चेष्टा छोड़कर वह अपने को संसार का बनाने की चेष्टा करता है। वह मँगता से दाता बन जाता है।"

"आपने ठीक समझा है। जीवन का सारा सौंदर्य दान में है। परन्तु

यह दान निष्प्रयोजन और दान के लिये ही नहीं होना चाहिये। जिसके टुकड़ों पर हम पले हैं-जिसका पानी पीकर हमने अपना हलक़ तर किया है—उसके लिये हमें देना है। अपने अन्दर जो अंगारे हम एक आकार-हीन किन्तु घनीभूत भावना के रूप में संचित किये हैं सब उसे दे देने हैं। एक एक झोंका भी हम इस विराट सामाजिक आँधी को दे देंगे तो इसे रोकना असंभव हो जायगा—इसका रुकना नामुमकिन है।"

सहसा तारा को कोई खोई बात मिल गई। "तो ममता आपके गाँव में रहती है? आपने बातचीत में अभी उनका नाम लिया था न! आपने उन्हें अपने आदर्शों पर चलने की दीक्षा दी है?"

"नहीं। मैंने उसे साधारण शिक्षा दी है। उसे मैं इस ओर लाना नहीं चाहता। उसने मेरे साथ यहाँ आने की बार बार जिद की। मैंने उसे मना कर दिया। साल छः महीने में उसका विवाह हो जायगा। किसी योग्य व्यक्ति के हाथों वह पड़े—यही मैं चाहता हूँ। इसके बाद वह गृहस्थी के स्निग्ध मधुर रस से परिचालित जीवन में लीन होकर मुझे भूल जायगी। जीवन का वह परिच्छेद अब समाप्त हो गया है।"

मोहन ने फिर कहा—"हमें अधिक से अधिक और सच्चे से सच्चे चरित्रवान कार्यकर्ता चाहिये। क्रान्ति ही जिनके जीवन का मूलस्वर हो। इसी मूल मंत्र को कंठ कंठ, हृदय हृदय, आत्मा आत्मा में उच्चारित करने के लिये जो कटिबद्ध हों। अब आप जाइये। मैं कुछ पढ़ना चाहता हूँ।

तारा का कमरा ऊपर तिमंजिले पर था। वह अभी बैठना चाहती थी पर मोहन की इच्छा जानकर उठने लगी।

कमरे में दो महिलाओं ने प्रवेश किया। मोहन ने दो एक बार उन्हें शर्माजी के साथ देखा था। एक थीं शहर की मज़दूरसभा के प्रधानमंत्री मेहरोत्रा की पत्नी और दूसरी थीं कम्यूनिस्ट पार्टी की जनरल सेक्रेटरी श्रीमती प्रधान। मि० प्रधान शहर के प्रमुख वकील थे और श्रीमती प्रधान वर्मा की शिष्या थीं।

"तुम कब आई तारा? वर्माजी तो आज होंगे नहीं, कल मुझसे

बाहर जाने को कह रहे थे।

मोहन वहाँ से उठकर चलने लगा। श्रीमती प्रधान ने कहा—"आप कहाँ चले भाईसाहब ? हम लोगों को कोई गोपनीय बात नहीं करनी है। आइये बैठिये। हमारे अगले काम की योजना सुनिये। हमें तो आप लोगों के सहयोग की विशेष ज़रूरत है।"

मोहन बैठ गया। तारा ने कहा—"कोई स्कीम बनाई है क्या ? भाईसाहब बेचारे तो ऐसी लगन से दिन रात यह काम करते हैं कि उन्हें बैठकर स्कीम बनाने की फुरसत कहाँ ? यह काम लेकर तुमने अच्छा किया। थ्योरी तुम्हारी—प्रैक्टिस उनकी।"

"कोई नई स्कीम नहीं है। बड़ी पुरानी है। उसी में थोड़ा-सा विस्तार किया है। दूसरे अब तक यह स्कीम ही रही अब इसे अटूट अडिग व्यावहारिक योजना बनाना है। शहर के मज़दूरों को आठ आठ दस दस के ग्रूप में बाँट दिया गया है। मैं चाहती हूँ हम लोग सप्ताह में तीन बार क्लासेज लें। एक साथ इस तरह के कम से कम बीस क्लासेज रोज होने चाहिये। ये क्लासेज दो दो घंटे के होंगे। हमें दो आदमी प्रति क्लास के हिसाब से चाहिये। स्थान की वैसी जरूरत नहीं, किसी हाते में, बस्ती के मैदान में या पार्क में कहीं भी हम क्लास ले सकते हैं। मजदूर के पूरे परिवार को हम उसमें ला सकें यह हमारा उद्देश्य होगा। उसमें अधिक से अधिक क्रान्तिकारी भावना पैदा करना, विकसित करना और अपने हितों की रक्षा के लिये उसे अधिक से अधिक सजग करना हमारा लक्ष्य होगा। क्लासेज में हम कवितायें कहानियाँ, एकाँकी, छोटे छोटे डायलाग, जनगीत गरज़ साम्यवादी दृष्टिकोण से लिखे गये कलात्मक मनोरंजन के सारे साधन उनके लिये प्रस्तुत करेंगे। जो संगठन और कार्य अभी हो रहा है उसके अतिरिक्त यह शाम का प्रोग्राम रहेगा। रूस में जनक्रान्ति के पूर्व यह सब बड़ी सफलता पूर्वक हुआ है। हमारे देश में क्यों न होगा। मैजिक-लैन्टर्न के द्वारा हम हड़ताल और मज़दूरों और मालिकों के संघर्ष के चित्र भी पेश कर सकेंगे। बाद में क्लबों का स्थान हमारी गोष्ठियाँ ले

लेंगी।........"

तारा उत्साह से फूलने लगी। बोली—"सब से बड़ी बात तो यह है कि उनके पूरे परिवार जब बड़ी जमात में मिलेंगे और दो घन्टे साथ रहेंगे तो एक दूसरे के प्रति वह पारस्परिकता और सहयोग की भावना पैदा होगी जो साम्यवादी व्यवस्था की जान है। हमें छात्र साथियों का सहयोग भी मिलेगा। शाम को घन्टे दो घन्टे वे रोज दे सकते हैं। क्यों भाई साहब!

मोहन को भी उत्साह लगा। बात धुँधले रूप में सब के दिमाग में थी। बोला—"जिस स्थाई, सारपूर्ण, अनिवार्य और आग्नेय आन्तरिक प्रेरणा को हमें पैदा करना है वह ऐसे ही आयोजनों से पनपेगी।" विद्रोही हृदय की जिस विद्रोही गठन को लेकर उसका जीवन निर्मित हुआ था उसमें बड़ी बड़ी सभाओं से—जनसमूह को सम्बोधित करने वाले व्याख्यानों से ऐसी समितियाँ उसे ज्यादा रुचती थीं। बोला—"क्रान्ति की इच्छा, लालसा, शक्ति जन-जन के अन्दर मौजूद है। उसका संचय और घनत्व इन आयोजनों से होगा। हमारे पास पर्याप्त संख्या में अध्यापक होने चाहिये। उन अध्यापकों को ट्रेन करने के लिये भी प्रबन्ध होना चाहिये। मैं तन मन से तैयार हूँ। धन मेरे पास है नहीं। उसकी बात क्या?"

तारा—"मैं दादा के लौटने की प्रतीक्षा नहीं करूँगी। कल से ही कालेज कालेज होस्टल होस्टल में घूम घूमकर नाम लिखना शुरू कर दूँगी। बाद में एक 'बोर्ड आफ़ स्टडी' बनना चाहिये जो हम लोगों को बराबर 'लेसन्स' दे। हमारी एक नई प्रतिज्ञा होगी जिसे भविष्य पूरी करेगा। हम ऐसी शिक्षा देंगे जो भविष्य के लिये रह जायगी।"

रात को ग्यारह बजे तारा उन लोगों के साथ से लौट कर वापस आई। मोहन लेटा लेटा मार्क्स की 'केपिटल' पढ़ रहा था।

तारा ने पूँछा—"आपको भाभी की स्कीम पसन्द आई या उन्हें खुश करने के लिये ही आपने कह दिया। आप लोगों को यह कला बहुत आती है।"

मोहन ने देखा—तारा के चेहरे पर एक अनिर्वचनीय उल्लास खेल रहा है। बोला—"स्कीमें अपने में अच्छी बुरी कम ही होती हैं। देखना यह है किस तरीके पर उन्हें चलाया जाता है। हमारी आज की विद्रोह-शक्ति कहीं किसी को बाँधने के लिये लोहे की जञ्जीर तो नहीं बनजाती—ऐसे विद्रोही को जो हमारी ही भाँति भविष्य को बदलना चाहता है। और आगे चलकर वह भी तो अपने भविष्य के लिये बन्धन नहीं हो जाता? अक्सर ऐसा देखा गया है। इसे ऐतिहासिक क्रिया भी कहा जा सकता है। इस आयोजनके द्वारा यदि लोगोंमें एक बौद्धिक आग जलाई जा सके—यदि मज़दूरों में—उनकी स्त्रियों में—उनके बच्चों में एक प्रचंड क्रान्तिकारी ज्वाला धधक सके तो उसका लक्ष्य पूरा हो जायगा। जनवर्ग की अन्त:शक्ति को उन्मादक अभिव्यक्ति देना—इस विद्रोह-शक्ति को पूर्णता तक पहुँचा देना ही हमारा ध्येय होना चाहिये।"

तारा की प्रतिक्षण मोहन पर आस्था बढ़ रही थी। उसे नहीं पता था यह कृश, सुकुमार, सुन्दर और रोगी-सा पीला नवयुवक जीवन में क्या क्या समझ चुका है—जो अबतक एक बँधे तूफान की तरह रहा है जिसे किसी भी ओर चलना मना हो। अब अनुकूल घड़ियों को पाकर और अनुकूल वातावरण में आकर वह कितना काम करेगा और लोकचेतना को कहाँ तक उठावेगा यह देखना अभी बाकी था।

तारा ने कहा—"यह योजना जब क्रान्तिकारी भावना को बल देगी—वर्गचेतना और वर्ग-संघर्ष को पुष्ट करेगी तब क्या शासनसत्ता गाफ़िल रहेगी? साम्यवादी पार्टी गैर कानूनी है। हमारे अधिकांश नेता जेलों में बन्द हैं या खुफ़िया तौर पर जानवरों का जीवन बिता रहे हैं। हमारे सिर पर प्रत्येक क्षण खतरा है। पकड़ गये तो काम में बड़ी बाधा पड़ेगी।"

"क्या होगा ताराजी? हमारी क्रान्ति व्यक्तिवादियों की वह भावुक, थोथी, निस्सार क्रान्ति नहीं है जो भीतर ही भीतर घुटा करती

है जो असल में क्रान्ति का कार्टून है। हमारे साथ दुनिया का, देश का समाज का सबसे बड़ा और सबसे क्रान्तिकारी वर्ग है। अपने भीतर के खोखलेपन को ही कुरेदते रहनेवाली—कृत्रिम योग्यता प्राप्त करके आन्तरिक शक्ति के स्रोतों से अपरिचित और जीवन के उर्ध्वगामी प्रवाहों से रहित व्यक्तिवादी क्रान्ति की भावना और समाजवादी क्रान्ति की भावना में यही अन्तर है। उसकी गति व्यक्ति के अवसान के बाद समाप्त हो जाती है। हमारी क्रान्ति समाज की भित्ति पर पनपती है और समाज की शक्ति के उद्योगों से उसे खाद्य और बल मिलता है। हमारे सामने यूरोप के सबसे बड़े देश रूस का ज्वलन्त उदाहरण है। मैं—तुम या दादा पकड़ भी जाँय तो क्या होता है?"

## [ १२ ]

रात में तारा को बड़ी देर तक नींद नहीं आई। पहले ही दिन मोहन को उसने अपने सोचे से अधिक पाया। होश सँभालते ही उसने माता पिता को खो दिया था। उसका पालन-पोषण उस व्रती की गोद में हुआ था जिसके जीवन में सब मिलाकर अब तक बीस वर्ष जेल में बीते थे। एक पैर बाहर और एक जेल में—यही जिसका जीवन था। वृद्ध नौकर की गोद में—उसी के अधिकार अनुशासन में परवरिश पाकर तारा के स्वभाव में एक विलक्षण कटुता व्याप्त हो गई थी। मानव का मानव के प्रति—नारी का पुरुष के प्रति—प्राणों का प्राणों के प्रति जो एक सहज स्वाभाविक मोह होता है वह जैसे सूख गया था। मोहन ने आकर उसे आमूल बदल दिया। उसे रह रहकर लगता था जैसे प्राणों से प्राण बँध सकते हैं—जीवन से जीवन गुँथ सकता है—मानस से मानस जुड़ जाते हैं। एक दिन के अन्दर ही जिसने आकर ऐसा विराट परिवर्तन कर दिया और स्वयं जो इतना अधिक उसके सम्मुख खुल गया, वह कौन है?

जहाँ तक तारा को ज्ञात था उसके निकट सम्बन्ध में कोई पुरुष या स्त्री नहीं थी। यों शर्माजी के स्नेह-सम्बन्ध इतने लोगों से थे—इतने

परिवारों से वह घुले मिले थे कि तारा को माँ और बहनों की—भाइयों और अन्य स्नेहियों की कमी नहीं थी। परन्तु अपना सगा कहने के लिये कोई नहीं था। जीवन के उषःकाल से ही उसने अपने को एक चीमड़ और बदमिज़ाज—एक अर्धरोगी नौकर की गोद में पाया था जो हृदय में भाई बहन के लिये अपार अपनत्व होने पर भी माता पिता में से एक के भी अभाव की पूर्ति नहीं कर पाता था। इसके बाद वह थोड़ी सयानी हुई और जीवन की सारी स्थितियों को समझने लगी। स्कूल में पढ़ी और धीरे धीरे एन्ट्रेन्स पास किया। इस बीच में दुनिया उसे एक बड़े और साफ आइने की तरह दिखाई देने लगी। इन्टर में आकर एक दिन जब उसने सुना कि शहर की सबसे बड़ी मिल में भीषण हड़ताल हो रही है और उसके भाई तथा अन्य सब कार्यकर्ता पकड़ लिये गये हैं तो वह भी पढ़ना लिखना छोड़कर मिल के दरवाजे पर पिकेटिंग करने लगी। एक महीने तारा ने इतनी खूबी से नेतृत्व किया और हड़ताल को सफल बनाया कि लोग दङ्ग रह गये। उसके लिए वर्माजी की बहन होना काफी था। स्कूल कालेज में डिबेट में बोलती भी थी। आते ही उसने ऐसी पटुता और कार्यसंलग्नता दिखाई कि मजदूरों के टूटते दिल जुड़ गये—उखड़ते कदम सँभल गये और अन्त में मिल मालिकों को झुकना पड़ा। हड़ताल समाप्त होने के बाद वर्माजी और अन्य नेता तो न छूटे, परन्तु तारा स्थानीय कार्यकर्ताओं की अगली पाँत में आ गई।

फिर लौट कर कालेज वह नहीं गई। वहाँ के निर्जीव, निष्क्रिय, कृत्रिमतामय और रुग्ण वातावरण से उसे बाहर का स्वस्थ्य, सजीव और स्फूर्तिमय वातावरण अधिक रुचा। मजदूरों में - कुलियों की बस्ती में घूम घूमकर काम करने, उन्हें साक्षर बनाने, दवा बाँटने, गृहकलह में समझौता कराने, उनके अन्दर स्वाधीनता का दर्प जागृत करने में उसे जीवन-सार्थकता का अधिक अनुभव हुआ। उसे लगा जैसे अब तक वह सपनों के जिस संसार में डूबी रही है वह झूठा और निःसत्व है। इसके बाद वह देहातों में घूमी—किसानों की दुर्दशा और उनकी

सदियों की गुलामी, जो उनके खून के एक एक बूँद में बस गई थी, उसने देखी और जानी। वह पूरी निहलिस्ट हो गई। वर्माजी भी जब जेल से बाहर घर पर रहते तो घंटों उसे पढ़ाते।

तारा अब तक जिन युवकों के संपर्क में आई थी उनमें और मोहन में एक मौलिक अन्तर था। तारा सुन्दरी थी और यौवन का पूरा वेग उसके शरीर में उमड़ रहा था। अपने रूप को उसने सदैव निष्प्रयोजन ही समझा था। कभी दस मिनट एकान्त में बैठकर प्रसाधनों से उसे सँवारने का यत्न भी उसने नहीं किया था। लड़कपन में मातृहीन होने के कारण उसकी सहज स्वाभाविक शृङ्गार-वृत्ति मर चुकी थी। स्कूल में लड़कियाँ उसे 'तापसी' कहकर पुकारती थीं। परन्तु रूप तो वहाँ था ही और देखने वाले को वह लुब्ध और मुग्ध भी करता था। इसलिये पहली भेंट में और इतनी बातें हो जाने के बाद अन्य नवयुवकों की भाँति एक बार भी मोहन ने जब उसे नवयुग की दूती नहीं कहा—नवयुग का आह्वान उसकी वाणी में नहीं सुना तो वह कुछ विस्मित हुई। सावन-भादों की घहराती एक मील पाट वाली गंगा सा तरंगित रूप और यौवन अपने में समेटे वह इस दुबले पतले गोरे पीले विषादप्रिय तरुण के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पैदा कर सकी—यह उसने स्पष्ट जान लिया। फिर भी उसने देखा—मोहन को उस पर विश्वास करने में एक दिन की भी देर नहीं लगी। उसकी सारी दीप्ति जैसे मोहन के सामने नत हो गई। अपनी शक्ति पर उसे अदम्य विश्वास था। अपनी धारणा के योग्य अपने आपको बनाने में उसने दुःसाध्य चेष्टायें की थीं। परन्तु आज उसे लगा—वह उतनी बड़ी नहीं है।

सुबह सोकर उठी और चाय बनाकर आठ बजे के लगभग मोहन के कमरे में पहुँची। मोहन चारपाई पर पड़ा पढ़ रहा था। उसकी आँखें लाल थीं—जैसे पूरी नींद न सोया हो। तारा ने कहा—"आप ब्रश कर चुके न! चाय मैं लाई हूँ।"

"मैं चाय अब नहीं पिऊँगा। यहाँ आकर बराबर पीने लगा हूँ।

पहले कभी छूता ही नहीं था। सोचता हूँ तम्बाकू भी छोड़ दूँगा ताकि पान भी छूट जाय।"

"तो एक ही कप बनाऊँ ?"

"क्यों ! तुम तो दो तीन कप पी सकती हो। इतमीनान से बैठ कर पियो। अरे ! तुम तो पूरा सेट उठा लाई हो।"

"आप क्या बहुत तड़के जग पड़े थे ?"

"नहीं, दो तीन घंटे हुये होंगे। तब से पढ़ रहा हूँ। मुझे नींद कम आती है।"

तारा चुपचाप बैठी चाय पीती रही। मोहन उसी प्रकार दत्त-चित्त पढ़ता रहा। तारा ने उसे दो एक बार देखा—जैसे उसे यह भी पता नहीं कि कमरे में कोई और भी है।

चाय पीकर तारा अखबार देखती रही। फिर बोली—"अखबार आपने देखा ?"

"क्यों ! कोई खास बात तो है नही। मैंने १५-२० मिनट में देख लिया था।"

तारा को समझ नहीं पड़ता था कि क्या बात करे। मोहन निर्द्वन्द्व पड़ा पढ़ रहा था। तारा ने कहा—"मैं जाती हूँ। शाम को आपसे भेंट होगी। आपके कालेज तक मैं आ न सकूँगी।"

"आवश्यकता भी क्या है। मैं आज कुछ जल्दी जाऊँगा। लाइब्रेरी से दो एक किताबें लेनी हैं।"

तारा उठकर चली गई। अपना झोला लेकर बाहर निकली। रमई नीचे दरवाजे पर बैठा तरकारी मोल ले रहा था। तारा को देखकर बोला—बिटिया खाना क्या बनेगा ?

तारा ने झल्लाकर कहा—रोज मुझसे पूँछकर बनाते हो ! क्या आज पहले पहल मैं यहाँ आई हूँ ?

मोहन कालेज़ से ढाई बजे लौटकर आया तो रमई ने पूँछा—भैया ! चाय बनेगी।

"नहीं रमई ! मैं चाय अब नहीं पिऊँगा। मैं देहात का आदमी

पहले भी नहीं पीता था। यहाँ दादा के साथ आदत पड़ी जा रही थी।" बिटिया लौटी?

"अभी नहीं बाबू! न नहाया न धोया! बार बार कहा खा पीकर निकलो। कभी चार बजे के पहले खाती नहीं।"

मोहन लेटकर पढ़ने लगा। चार बजे के करीब तारा आई। मोहन ने किताब एक ओर रख दी।

तारा ने रमई को पुकारकर थाली लाने को कहा। मोहन ने कहा—"आपने तो नहाया भी नहीं।"

तारा—"नहाना तो अब खाने के बाद होगा। मारे भूख के मेरा दम निकल रहा है। सुबह से दौड़ रही हूँ। वैसे तो कभी किसी के यहाँ कुछ खा पी लेती थी। आज वह भी नहीं हुआ।"

मोहन—"आप क्या कर आईं?"

"आज मैंने यहाँ के कार्यकर्ताओं की एक सभा बुलाई है। शाम को ६ बजे किसानसभा के दफ्तर में। हम लोग आज सब तय कर लेंगे। मैं करीब करीब सब लोगों से मिल चुकी हूँ। आप चलेंगे न?

मोहन ने कहा—"आप लोग सब तय कर लीजिये। मुझसे जो कहियेगा—करूँगा। कालेज में आज मैंने दस पाँच लड़कों से बातचीत की है। उत्साह उनमें था। हमें तो सैकड़ों आदमी चाहिये। आप सब लोगों के मकान पर गई थीं?

"जी हाँ—समय इतना कम था कि मेरे बिना गये काम न चलता। भाभी तो दो चार जगह चलकर बोल गईं। मैं इक्के पर बैठकर पूरा शहर घूम आई। सभा में आज भीड़ होगी। मज़दूर और कुली साथी भी आवेंगे। खाना खाकर फिर जाती हूँ। दो चार लोगों को और सूचना दे दूँ। मैं शाम को घर आकर चलूँगी। आप मेरे साथ चलियेगा।"

"अच्छी बात है। मैं घर पर रहूँगा।"

शाम को तारा नहीं आई। रात को लगभग साढ़े दस बजे जब वह लौटी, तब मोहन जाग रहा था। बोली—हमारी सभा में आप नहीं

आये। हम लोगों को निराशा रही।"

"मुझसे तो आपने कहा था कि आप घर आवेंगी और मुझे साथ ले चलेंगी। आपको क्या याद नहीं रहा।"

"उसके लिये मुझे क्षमा कीजिये। मुझे देर हो गई थी। मैं खुद वहाँ पौन घण्टे लेट पहुँची। भाभी योजना की तफ़सील समझा रही थीं। मैंने अपनी बात कही परन्तु उन्होंने कहा—मोहन खुद आवेंगे। आपको दफ्तर तो मालूम है।"

"मालूम क्यों नहीं है। मगर मैं तो आपके आने की बाट देखता रहा। मैं जाने के लिये यों भी बहुत उत्सुक नहीं था। हाँ, काम शुरू होने पर आप मुझे पीछे न पावेंगी। आप लोगों ने क्या तय किया।"

"पहले हम लोग सिर्फ पच्चीस क्लास खोलेंगे। बाद की योजना हमारी प्रगति पर निर्भर होगी। मैंने आपसे बिना पूँछे नवाबगंज का हल्का आपको दे दिया है। दूर तो पड़ेगा।"

"आपके क्लासेज कल से शुरू हो जायँगे?"

"जी नहीं! एक सप्ताह हम लोगों ने प्रचार के लिये रख छोड़ा है। घर घर में जाकर हम लोग अपनी योजना समझावेंगे। लोगों को सपरिवार अपने क्लासेज में आने को प्रेरित किया जायगा। काम उतना सहल नहीं है जितना दीखता है। आपने खाना खाया?"

"नहीं? अपने लिये मैंने मना कर दिया था। रमई सो गया शायद।"

"हाँ—नीचे का दरवाजा भी खुला है। देखिये मैं बन्द किये आती हूँ और खाना भी यहीं लिये आती हूँ।"

पाँच मिनट में तारा अपनी थाली और दूध का कटोरा लेकर आई। बोली—"दूध आप पी लीजिये। नुकसान नहीं करेगा।"

मोहन ने चुपचाप दूध का कटोरा ले लिया और पी गया। तारा कुर्सी पर बैठकर खाना खाने लगी। खाते खाते बोली—"आप अपने कालेज से नाम लेना शुरू कर दें। हमें बहुत जल्दी अपनी क्लासेज की संख्या बढ़ानी होगी। सच पूँछिए तो मैं पचास क्लासेज

से शुरू करना चाहती हूँ। मुझे बड़ा दुःख है आप मेरी बात पकड़कर बैठे रह गये। मैं समझी आप चले आवेंगे।"

"आपको काम से मतलब है न! कहिये मैं कल से ही पहुँच जाऊँ। परन्तु मुझे तो लोग अभी यहाँ जानते नहीं!"

"मैं आपके साथ चलूँगी! मेरे साथ आपको प्रत्येक मकान में चलना होगा। लोग तभी आपको समझेंगे—जानेंगे।"

"दादा के आने का इन्तजार तो करना होगा।"

"एक हफ्ते में दादा आजायँगे—तब तक हम प्रचार कर लेंगे। उनको मैंने परेड का चार्ज दिया है जो हमारा सबसे बड़ा केन्द्र है। मुझे भय होता है हमारी क्लासेज को कहीं सभाओं का रूप न मिल जाय। यदि भीड़ ज्यादा होने लगी तो हम लोग क्या करेंगे।"

"शुरू तो होने दीजिये। आप तो अभी से बड़े बड़े मन्सूबे बाँधने लगीं।"

"मुझे यहाँ की जागृति का पता है। इतना क्रान्तिकारी मजदूरवर्ग हिन्दुस्तान में कम हैं। मैं यहाँ एक एक परिवार और व्यक्ति से परिचित हूँ। आप देखेंगे कुछ दिन में एक व्यक्ति के लिए एक क्लास का सँभालना कठिन हो जायगा। हाँ! यदि हमारा कार्य और शिक्षा-शैली ही लोगों में अरुचि पैदा कर दे तो बात दूसरी है।"

## [ १३ ]

समय अब अधिक नहीं बीतना चाहता। ममता की माँ ने पति को इतना अधिक चिन्तित कर रक्खा है और लड़का तलाश करने के लिये उन्हें इतनी अधिक दौड़धूप करनी पड़ती है जिसका हिसाब नहीं। पं० देवदत्त के शिष्यों की संख्या काफी थी। अधिकाँश उनमें सम्पन्न थे। उनके उज्ज्वल चरित्र, विद्वत्ता और गम्भीर स्वभाव के कारण वे लोग उनका आदर भी करते थे। रुपये की समस्या हल हो जायगी परन्तु सुयोग्य लड़का नहीं मिलता। ममता की माँ की जिद है कि इस बार माघ में विवाह कर ही देना है। पं० देवदत्त मन में पत्नी के

साथ सहमत थे। भादों बीतते बीतते देवदत्त ने लड़का तय कर लिया। लड़के की अवस्था ३०-३१ वर्ष की थी। वह व्यापार करता था। पहली स्त्री का देहान्त १० वर्ष पहले हो चुका था। इतने दिनों तक विवाह का इरादा नहीं रहा। अब व्यापार में लाख डेढ़ लाख रुपया पैदा कर लेने पर बिना घरनी के घर जँचता नहीं था। अवस्था भी देखने में २६-२७ वर्ष से अधिक नहीं लगती थी।

विवाह तय करने से पहले देवदत्त से बिना लड़की की राय लिये रहा नहीं गया। बाहर बैठक में लड़की को पास बैठाकर एक पोस्टकार्ड साइज का फोटोग्राफ उसे दिखाते हुए बोले—"बेटी! मैं इसी माघ में तेरा विवाह कर देना चाहता हूँ। मैं तो पहले ही इस कर्तव्य से मुक्त हो जाता परन्तु एक मृगतृष्णा में फँसा रहा। खैर! भगवान जो करता है—अच्छा ही करता है।"

ममता ने एक उड़ती निगाह से वह तस्वीर देखी और निःसङ्कोच अडिग, अकंपित कंठ से बोली—मेरी पसन्द नापसन्द का प्रश्न नहीं है। मैं विवाह नहीं करना चाहती।

"बेटी! विवाह तो करना ही होगा। बिना स्वामी के नारी की गति कहाँ। मैं जीवन भर तो बैठा नहीं रहूँगा। पचपन के ऊपर मेरी उमर हो गई है। अधिक से अधिक पाँच-दस वर्ष चलूँगा। भाग्य से लड़का योग्य, सचरित्र, सुशिक्षित, उदार और सम्पन्न मिल गया है। घर में कोई नहीं है। आढ़त का काम होता है। दो लाख की हैसियत है। यहीं कानपूर में है। दूर भी नहीं। तेरे हाँ करने की देर है। फौरन सगाई हो जायगी। मेरे बाद फिर........"

"फिर क्या? आप के मान, मर्यादा, शील और कुल को मेरी किसी बात से कलङ्क नहीं लगेगा। आप विश्वास करें।"

"इसका मुझे विश्वास और अभिमान दोनों है। परन्तु विवाह न करेगी तो मेरी आत्मा को सन्तोष न होगा। और तेरी दुखिया माँ? उसके कान में यदि यह बात पड़ी तो वह कितनी दुखी होगी यह भी तुमने सोचा है?"

"मैं जानती हूँ बापू ! इसीलिये मैंने अपना यह निश्चय आप को और केवल आप को सुनाया है। माँ से मैं इस विषय में बात नहीं करती।"

"तू लड़का नापसन्द करे तो मैं दूसरा ढूँढ़ूँ। परन्तु विवाह न करने की बात न कर। मुझे आन्तरिक दुःख होता है। मेरी आत्मा जैसे फूट फूटकर रोने लगती है।"

पिता की ओर ममता ने देखा। आँखों की कोरों पर जल के बूँद झलक रहे थे। उसे लगा जैसे पिता के हृदय में पुत्र का अभाव घाव में बँधे तार की तरह चुभ रहा है।

"मुझे सिर्फ एक बात कहनी बापू! आप विश्वास रक्खें मुझे अविवाहित रहने में कोई कष्ट या असुविधा न होगी। उस दशा में आप के नाम की शुचिता और कुल की उज्ज्वलता को भी निष्कलंक रख सकूँगी। विवाह हो जाने के बाद मैं यह जिम्मा नहीं लेती। तब संभव है मुझसे कोई ऐसी बात हो जाय जो आप की आत्मा पर कठोर आघात करे। मैं यह नहीं चाहती।"

लड़की की व्यथा की गहराई का पिता को पता न हो यह बात नहीं। मर्म के जिस बिद्ध स्थल से यह चीत्कार उठा था उसे वे जानते थे। बोले—तेरी ओर से पूरा विश्वास है। तेरे विवेक पर मुझे गर्व है। तू कभी कोई ऐसी बात नहीं करेगी—कहते कहते वृद्ध गद्गद् हो गये।

"लेकिन बापू! विवाह की मेरी प्रवृत्ति नहीं होती। मेरी तो लालसा है मैं अन्त तक माँ की और तुम्हारी सेवा करूँ और तुम्हें छोड़कर कहीं न जाऊँ।"

"यह तू विवाह के बाद भी कर सकती है। हमारी सेवा में विवाह तेरे लिये बाधक नहीं होगा। तो बोल तेरी सहमति है न! मैं पक्का करता हूँ।"

"मुझको उस ओर न ले जाओ बापू! यही मेरे लिये हितकर है। तुम तो मेरा कल्याण चाहते हो। मुझे लगता है विवाह करने से मेरा कल्याण नहीं होगा। कल्याण के जो सबसे बड़े देवता हैं वे रुष्ट हो

जाँयगे। मेरे संयम और भविष्य पर अविश्वास न करो। मैं विवाह नहीं करूँगी—यही मेरा अन्तिम कहना है।"

"संयम की एक सीमा होती है। हमें समाज में रहना है—धर्म का पालन करना है। समाज यह सहन नहीं करेगा कि तू आजीवन अविवाहित रहे। समाज से द्रोह करके हम कहाँ जाँयगे। दुनिया की हँसी का भी तो भय है।"

"मुझे कोई भय नहीं है बापू! मैं सब झेल लूँगी। मुझे मेरे रास्ते पर छोड़ दो।"

"तू मोहन के साथ ही ब्याह करेगी। मैं फिर एक बार उसके पास जाऊँ? सोहनलाल के पास जाना तो बेकार है। सुना मोहन ने वहाँ भी ब्याह करने से इन्कार कर दिया है जहाँ पहले तय हो रहा था। मैं एक बार मोहन से कहकर देखूँ?"

"नहीं बापू! उनसे कहने की आवश्यकता नहीं। उनसे विवाह करने का सवाल नहीं था। आप इस प्रसंग में अब और बात न करें।"

"मगर तेरी माँ का क्या होगा? मेरी आत्मा को कैसे शान्ति मिलेगी?"

ममता वहाँ से उठकर चली गयी। दूसरे दिन ममता की माँ ने पूँछा—"कानपूर वाला लड़का तय कर आये?"

"अभी नहीं। थोड़ा समय लगेगा। इतनी जल्दी कहीं विवाह तय होता है!"

"अब की बार माघ में विवाह करना है। यदि तुम नहीं ढूँढ़ते तो मैं ढूँढ़ने निकलूँगी। रुपये का प्रबन्ध हो गया। लड़का मिलने में क्या देर है। इसी कानपूर वाले लड़के को ठीक करो। कल्याणभार्य होने से क्या होता है। उम्र तो कम है। पैसा है। ममता को हर प्रकार का सुख रहेगा।"

बात इतनी जल्दी खत्म नहीं होती। माँ को जब ज्ञात हुआ कि लड़की आजीवन अविवाहित रहना चाहती है तो दुःख और ग्लानि से उन्होंने भोजन छोड़ दिया। ममता छाती पर चट्टान रखकर सब सहती

रही। एक महीने के अन्दर वे खाट से लग गईं। घर में एक भयंकर अमंगल की छाया डोलने लगी। ममता को अपना जीवन भार हो उठा।

माँ ने एक दिन रोते रोते ममता के सामने पंडितजी से कहा—"तुम जाकर वरीक्षा दे आओ। यदि बाद में इसने इन्कार किया तो मैं प्राण दे दूँगी। तुम इसी गाड़ी से जाओ। कल ही वापस लौट आना।"

मृत्यु की काली छाँह माँ के उपर नाच रही है। पिता ने एक कारुणिक दृष्टि से लड़की की ओर देखा। बोले—"बेटी मैं जाऊँ? हम लोगों के सुख के लिए तुम इतना भी नहीं कर सकतीं! तुम्हें इसी लिये इतनी शिक्षा दीक्षा मिली कि हम दोनों को इस प्रकार जलाओ!"

ममता सूनी आँखों से कभी माँ को कभी बाप को देख रही थी। कुछ बोली नहीं।

पिता ने एक बार फिर पूँछा—"लड़का तो तुम्हें पसन्द है। ममता ने यथासंभव निर्विरोध कंठ से कहा—"आप जो करेंगे मेरे हित के लिये होगा। आप की पसन्द मेरी पसन्द है।"

पिता उल्लास से फूल उठे। दूसरे दिन वरीक्षा देकर लौट आये। सम्बन्ध पक्का हो गया।

पूजा आगई। ममता ने आशा की थी दशहरे की छुट्टियों में मोहन भैया आवेंगे। दशहरा बीत गया। वे नहीं आये। बहुत सोच-विचार के बाद उसने मोहन को पत्र लिखा। दिवाली में उसे बुलाया और लिखा—माघ सुदी तीज को मेरा व्याह होगा। मैं अभी डाँवाडोल हूँ। तुमने मुझे अत्याचार से लड़ना और विरोध करना सिखाया है। यहीं मैं विवश होती जाती हूँ। आओ और मेरा उद्धार करो। यदि तुम न आये तो मैं स्वयं तुम्हारे पास आ पहुचूँगी।

मोहन ने उत्तर लिख दिया—तुम चिन्ता न करो। मैं दिवाली से एक दिन पहले आऊँगा। पर विवाह तो करना ही होगा।

तारा और मिसेज मेहरोत्रा की योजना जोरों के साथ चल रही थी।

क्लासेज की संख्या पचहत्तर तक पहुँच गई थी। सप्ताह में तीन दिन मोहन को जाना पड़ता था। वर्माजी के ऊपर उन दिनों एक आपत्ति-जनक भाषण देने पर केस चला था और उन्हें एक वर्ष की सपरिश्रम कैद सुनाई जा चुकी थी। मोहन के ऊपर बहुत से काम आगये थे। कालेज वह अक्सर नहीं जाता था। तारा के उत्साह और लगन की सीमा नहीं थी। जिस दिन वर्माजी को दण्ड सुनाया गया उस दिन शाम को मजदूरों की एक विराट सभा हुई थी और मोहन ने सर्वप्रथम सार्वजनिक व्याख्यान दिया था। उसकी ज्वालामयी वाणी को सुनकर लोग बेचैन हो उठे। लगातार डेढ़ घन्टे तक मोहन बोलता रहा। उसके ओजस्वी व्याख्यान ने लोगों को हिला दिया। तारा तो उस दिन भावावेश के कारण बोल न सकी। मोहन के शब्द रह रहकर उसकी शिराओं में नाच उठते थे। लोगों को भय था ऐसा राज्य-विद्रोहात्मक भाषण देने के कारण कहीं मोहन पर भी अभियोग न चल जाय।

तारा उस दिन खाली थी। उसका क्लास नहीं था। वह रात को नौ बजे मकान पर आगई। ममता का पत्र शाम की डाक से आया था। जब से मोहन आया तब से दो एक सीता के पत्र छोड़कर और कहीं से नहीं आये थे। पिता ने असन्तुष्ट होकर लिखना छोड़ दिया था। आज इतने सुन्दर अँगरेजी अक्षरों में किसी स्त्री के हाथ का पत्र लिखा देख तारा को कौतूहल हुआ। मोहन पर अपना कुछ अधिकार वह मानने लगी थी। उसने खोला और पढ़ा। रात को जब मोहन आया तो तारा ने खुला लिफाफा आगे रख दिया।

मोहन ने पढ़ा। तब तक तारा खाने की थाली ले आई थी। मोहन बैठकर चुपचाप खाने लगा। उसके मुख की कठिनता और चिन्ता देखकर तारा को बोलने की हिम्मत नहीं पड़ी। वह भी डर रही थी मोहन कहीं पत्र खोलने पर नाराज न हो। कुछ सहमते हुए बोली—"आप नाराज तो नहीं हैं। पत्र आपका मैंने खोल डाला।"

"नहीं नहीं—नाराज होने की क्या बात है? क्या मैं तुम्हें न दिखाता?

"फिर भी मुझ में इतना अधैर्य नहीं होना चाहिये था। आप इस बार क्षमा कर दें। आगे से मैं सावधान रहूँगी। आप कुछ चिन्तित हो गये हैं।"

"आज मैं थक ज्यादा गया हूँ। केवल शरीर ही नहीं मन भी थका है। जो कमी थी वह ममता के पत्र ने पूरी कर दी। दिवाली में जाना पड़ेगा। पैसा मेरे पास है नही। खैर! लाइब्रेरी का 'काशन मनी' निकाल लूँगा। दादा एक साल के लिये गये। सोचता हूँ अब मैं क्या करूँ। जब से आया कुछ किया नहीं।"

"रुपये की आप चिन्ता न करें। मैं दूँगी।"

"तुम कहाँ से दोगी। दादा के हिसाब से निकालकर न। उनसे तो अब तक मैं बहुत ले चुका हूँ। मम्मी के लिये साड़ी और चप्पल वगैरह ले जाना है।"

तारा ने कहा—"आप खरीदें क्यों? मेरे पास बहुत सी उम्दा उम्दा साड़ियाँ रक्खी हैं। राखी और दूज में मुझे इधर उधर से बीसों मिलती हैं। चट्टियाँ भी कई जोड़ी नयी रक्खी हैं। आप जो चाहें लेते जायँ। सीता के लिये भी ले जायँ। मैं खुद कितना कम पहनती हूँ यह आप देखते हैं। आखिर ये सब मेरी छोटी बहनें तो हैं।

एक किताब लेकर मोहन चारपाई पर लेट गया। तारा ने कहा—"अब आप सोइये। मैं बत्ती बुझाये देती हूँ। आप का व्याख्यान मैंने पहली बार सुना है। क्लासेज तो देखे सुने थे। मगर यह व्याख्यान तो जैसे अंगारों का हुजूम था। आप की आवाज में वह कड़क है जो मोम को फौलाद बना दे। आपके शब्दों में वह बिजली है जो पानी में ज्वालामुखी धधका दे। आपकी हुँकार में वह गर्मी है जो मुरदे में भी जीवन का संचार कर दे। आप तो पुराने और मँजे वक्ता जान पड़ते हैं। ऐसा सधा प्रवाह मैंने दादा के सिवाय यहाँ किसी में नहीं देखा। हाँ बड़े नेताओं में जरूर कुछ लोग बड़ा 'फायरी' बोलते हैं। मुझे तो इतना जोश आ रहा था.........."

मोहन ने हँसते हुए कहा—"कि बगल के लोगों पर हाथ चला दूँ!"

यही कहना चाहती थीं न !

तारा कुर्सी छोड़कर चारपाई के पैताने बैठ गई। बोली—"क्या आप समझते हैं आप के भाषण का असर नहीं पड़ा। फ्राँस की राजक्रान्ति का विश्वप्रसिद्ध 'मार्चिंगसान्ग' सुनकर जैसा उत्कट उन्माद और आक्रोश छा जाता है वैसा ही आप के व्याख्यान में था। मैं बैठी बैठी वह दृश्य देख रही थी। जीवन की छोटी छोटी बातों को लेकर ही जिन बेपढ़ी लिखी कुसंस्कारग्रस्त मजदूरिनों की पूँजी होती है उनके ऊपर आपका व्याख्यान एक नशे की तरह छा गया था। अपने चेहरे के रंगों के उतार-चढ़ाव और साँसों से वह अपनी भीतरी उथल-पुथल ज़ाहिर कर रही थीं।

मोहन ने कहा—"कैसी बातें करती हो। मैं तो बराबर हकलाता रहा। कहाँ दादा—कहाँ मैं। जैसे चाँद और तारा !"

मोहन का संकोच तारा को और संकुचित किये दे रहा था। सिर झुकाकर बोली—तुम्हें मैं अब तक नहीं पहचान पाई। परन्तु तुम्हीं जैसे वे होंगे जो राज्यक्रान्तियों का संचालन करते हैं। तुम्हारा प्रति शब्द अंगारे की तरह मेरी छाती में जड़ा है। तुम्हारा डेढ़ घंटे का व्याख्यान ज्यों का त्यों मुझे याद हो गया है। अब तुम हमें छोड़कर कहीं जा न सकोगे।

रात को रह रहकर ममता की मूर्ति मोहन की आँखों में तिर आती थी। उसने पत्र निकालकर कई बार पढ़ा कि आखिर क्या चाहती है ? विवाह करने के पूर्व अब मुझसे पूँछने को शेष क्या रह गया है ? जिन बन्धनों से वह निकल आया है—उनमें उसे फिर क्यों बाँधा जा रहा है ? जाने के लिये रुपये चाहिये। मोहन जब से यहाँ आया—कहीं कोई ऐसा काम नहीं कर सका जो कुछ आय दे। ये चार महीने पढ़ने लिखने और तारा की योजनाओं में समय देते बीत गये। उसे लगा वह कितना निरुपाय और बलहीन है। उसके पास अपना एक रुपया भी नहीं है। माना वह तारा से ले सकता है। परन्तु उसके आत्मसम्मान को ठेस लगती है—पौरुष जैसे पराजित होता है। चाहता तो अब तक इतना पैसा कमा लेता कि वर्माजी के ऋण से मुक्त हो

जाय और ममता के लिये दो चार चीजें उपहार में ले जा सके। पिछले पाँच वर्षों से वह कभी खाली हाथ गाँव नहीं गया था। ममता के लिये साड़ियाँ, चट्टियाँ, किताबें और गुड़ियाँ सभी तो वह ले जाता रहा है—अपने ट्यूशन के रुपये से। आज या तो तारा से लेना होगा या खाली हाथ जाना होगा। मोहन ने निश्चय किया—वह कल से ही कोई काम तलाश करेगा। अभी जाने में दो सप्ताह का समय है। रुपये का प्रबन्ध हो जायगा।

दूसरे दिन तारा ने पूँछा—"आपने ममता को पत्र लिख दिया या नहीं?"

"अभी तो नहीं। आवश्यकता ही क्या है। उसने बुलाया है—चला जाऊँगा।"

"परन्तु पत्र तो लिख दीजिये। उसे तस्कीन कैसे होगी?"

"वह जानती है उसके शब्द मेरे लिये आत्मा के आदेश हैं। उसने बुलाया तो एक बार चिता से भी उठ पड़ूँगा। उसे मेरे पत्र की अपेक्षा नहीं। मुझपर उसका अखंड अधिकार है।"

"तब ठीक है"—तारा ने भारी मन से कहा—मैंने योंही कहा था।"

मोहन कालेज चला गया। सुबह जाकर वह अपने लिये एक साप्ताहिक पत्र में काम ठीक कर आया था। इधर लोग उसे जान चले थे और वर्माजी भी उसकी सहायता के लिये पहले सभी से कह चुके थे। आज से ही उसे काम शुरू कर देना था।

## [ १४ ]

सात या आठ रोज बाद तारा ने मोहन से कहा—आपको इतनी जल्दी क्या थी? स्वास्थ्य आपका ऐसा है। चार घन्टे रोज आप 'जागरण' में काम करेंगे—रात को हमारे क्लासेज लेंगे। अभी आप कुछ दिन यह न करते तो क्या बिगड़ जाता। दादा ने मुझसे कहा था मैं बराबर आपकी आवश्यकताओं को देखती रहूँ। आपको मुझसे कह देना था! आप मुझे गैर समझते हैं। मैं हूँ भी।

मोहन नारी की इस अधिकार-लिप्सा को जानता था। तारा के स्वर में दृढ़ता का स्पष्ट आवेग था। मोहन का हृदय छू गया। बोला—"ऐसा तुम न सोचो। चार महीने मैंने मटरगश्ती में बिता दिये। दादा के पास कल्पवृक्ष नहीं। मेरा खर्च भी पचास रुपये महीने का है ही। कालेज छोड़ने के बाद की बात दूसरी है। दादा के रुपये मुझे देने हैं। अगले 'टर्म' की फीस भी देनी है। प्रबन्ध तो करना ही पड़ेगा।"

तारा ने उत्तर नहीं दिया। सेविंग बेन्क का पैसा कम हो आया था। वर्माजी के छूटने में लम्बी देर थी। अपने लिये उसे चिन्ता न थी। मोहन के लिये आगे चल कर हो सकती थी। मोहन ने उसे स्वयं हल कर लिया। वह निश्चिन्त ही हुई। पर मोहन का स्वास्थ्य देखकर वह भारी हो उठती थी। बोली—"मैं सोचती हूँ शाम को मैं क्लासेज से आप को मुक्त कर दूँ। हमारे पास काफ़ी आदमी हैं और आप............. ."

"नहीं! नहीं—यह कैसे हो सकता है। पार्टी के काम मैं छोड़ नहीं सकता। अवकाश की कमी दीखेगी तो कालेज की पढ़ाई बन्द कर दूँगा। केवल दादा के नाराज होने का भय है। बिना उनके पूछे छोड़ने की हिम्मत नहीं पड़ती। तुम्हारे यहाँ कोई हड़ताल वगैरह हो—जिसमें अधिक काम करने की जरूरत पड़े तो दादा की आज्ञा की प्रतीक्षा न करूँगा।"

"आपको एक बात नही मालूम। हमारे बहुत से कार्यकर्ता आपका क्लास 'अटेन्ड' करने के लिये आ जाते हैं। मैंने भी कई बार किया है। सुननेवालों का जी आपके मुख की ओर टँगा रहता है। आपके पहाड़ी झरने से संगीतमय प्रवाह में लोग बह जाते हैं। वही बातें वे फिर अपने दरजों में बताते हैं।

मोहन ने मुस्कराकर कहा—"तुम भी तो कभी कभी नोट्स ले लेती हो।"

"मुझे अधिक अवकाश नहीं मिलता। भाभी के बच्चा होने वाला है। उन के दरजे भी मैं लेती हूँ। मैं तो चाहती हूँ कि प्रत्येक क्लास में शुरू से अन्त तक आपको सुनूँ और तब तक सुनती रहूँ जब तक

संसार से शोषितों की पीड़ा और अत्याचारी का अत्याचार समाप्त न हो जाय। आपकी वाणी एक तीखी बिजली-सी युद्ध की प्यास सुनने वाले की रग रग में जला देती है। क्रान्ति एक साधना है—एक अनुष्ठान है। उसके लिये जिस एकाग्रता और साधककी-सी एकनिष्ठ ज्वाला की आवश्यकता होती है—आरती की बत्तियों सा जैसा प्रचन्ड आत्मदाह उसके लिये चाहिए वह तुम्हारे इन उद्बोधनों में घुमड़ता है।"

मोहन ने देखा है जब तारा भावुकता के ज्वार में आ जाती है तो बजाय 'आप' के 'तुम' कहती है। पर तुरन्त इस 'तुम' की जगह 'आप' ले लेता है।

बोली—"आपका व्याख्यान सुनकर किसका मस्तिष्क ऊपर नहीं उठता! किस अपमानित की मर्म वेदना—किस क्षुब्धहृदय की कातरता अग्निज्वाला में परिणत नहीं हो जाती? कैसा आश्चर्यजनक स्वर है आपके कण्ठ में। मुझे लगता है वे दुर्दिन थे जिनमें आपसे मेरी पहचान नहीं थी।"

तारा ने फिर कहा—"आपके क्लासेज कौन ले सकेगा—मेरी समझ में नहीं आता। आप जल्दी लौटें। यहाँ कोई न कोई प्रबन्ध कर लूँगी। मैं तो अब बड़ी बड़ी सभाओं की आयोजना करूँगी, जिनमें पचीस पचास क्लासेज के लोग एक साथ इकट्ठे होंगे। उसमें खास खास लोग बोलेंगे। पहले ही दिन आपको बोलना होगा। मैंने नोटिस छपने को दे दिया है। अखबारों में भी भेज रही हूँ। अब तो संघर्ष की इच्छा होती है। लगभग सभी कपड़ा मिलें बन्द हैं। मुझे तो उसी समय—मोर्चे पर—लगता है जैसे मैं जिन्दा हूँ।"

"जल्दी न करो। अभी हम लोग तैयार नहीं हैं। पर मुझे अपने ऊपर विश्वास है। दो साल में मैं तुम्हारे श्रमिकों को तैयार कर दूँगा कि वे पूँजीवाद के विरुद्ध बड़ी से बड़ी लड़ाई लड़ सकें। तुम मुझे दो साल बाहर रहने दो। इन बुझे और अधबुझे मजदूरों को मैं आग

का घर बना दूँगा।"

"आप सब कर सकते हैं। आपकी क्षमता पर मुझे इन दो ही चार महीनों में विश्वास हो गया है। मजदूर आपको दूसरा खुदा समझते हैं।"

"शायद तुम समझती हो—वे क्या समझेंगे! पर तुम तो ईश्वर पर विश्वास नहीं करतीं। मैंने तो यही सुना और समझा है"।

"और आप? आप क्या ईश्वर को मानते होंगे!"

"मेरी बात छोड़ो। मेरे संस्कार प्रबल हैं। अब भी मैं उनसे मुक्त नहीं हो पाया। जीवन में एक वस्तु होती है—पूर्णता की प्रवृत्ति—यह तुम मानोगी। एक नवीन शक्ति का आधार लेकर वह जीवन में आती है और जीवनयापन से ऊपर उठकर एक दूसरे अभिप्राय की ओर बढ़ती है। मैं अपनी ही बात बताऊँ। मैं आज जीवन को विज्ञान अधिक और भावना कम—प्रायः बिलकुल कम—समझता हूँ। परन्तु गाँव में जमना किनारे अँधेरी शाम को बैठकर मैं घन्टों यह अनुभव करता हूँ कि उसके गम्भीर श्यामल मर्म में असंख्य प्रार्थना-दीप जल रहे हैं। मेरा हृदय मेरा अनुर्वर शरीर छोड़कर न जाने किसकी इंगित-द्युति पर बढ़ चलता है। जाने किस सुदूर प्रान्त की वह कलिका अब तक अपनी प्रेमशिखा जलाये बैठी दीखती है जिसके पराग से सारा बृज सुगन्धित है। जमना के अन्तःकरण में जिसकी बाँसुरी बज रही है उसी के विरह के व्यथित ध्यान में जैसे उसके कूल आज भी आकुल हो होकर काँप रहे हैं। तुम्हें यह मेरी थोथी भावुकता लगती होगी। परन्तु मेरे मन में इन सबके लिये एक मोह है—एक शृङ्खला है जो अब तक टूटी नहीं। और वह चाहे टूटे चाहे न टूटे मैं उससे अपने जीवन में—अपने पथ-ग्रहण में कोई बाधा नहीं पाता। मैं उतना ही सच्चा साम्यवादी हूँ जितना कोई हो सकता है।"

"तब आप धर्म और संगठित चर्च की आवश्यकता भी महसूस करते होंगे!"

"नहीं ! कदापि नहीं। धर्म और संगठित 'चर्च' ने शोषण की जो नई दिशायें दी हैं और मनुष्य के पीछे मौत का जैसा स्थिर, काला परदा टाँग दिया है उसे मैं पूँजीवाद का एक प्रचार समझता हूँ। यहाँ थोड़ा विस्तार से कहना होगा। लोगों में यह गलतफहमी फैला दी गई है कि साम्यवाद धर्म, ईश्वरवाद और आध्यात्मिक उन्नति का तिरस्कार करता है। एक खास वर्ग समाज में है जो रूस की दशा दिखा दिखाकर इन भ्रान्तियों को चलाना चाहता है। लेकिन धर्म और ईश्वर की सत्ता क्या है ? रूस में सचमुच धर्म की धाँधलेबाजी और उसके नाम पर चलने वाला किसानों और मजदूरों का रक्तशोषण समाप्त कर दिया गया है। कारण यह है कि ज़ारशाही के समय धार्मिक पुजारी और धार्मिक संस्थायें ज़ार से रुपया पाती थीं। वे ज़ार की पक्षपातिनी थीं और उसके अनुकूल दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रचार करती थीं। वे अत्याचार के साधन या अत्याचार पर पर्दा डालनेवाली बन गई थीं। इन विषैली संस्थाओं का अन्त करना जरूरी समझा गया। और तब हुआ क्या ? वहाँ ईश्वर पर से लोगों का विश्वास उठ गया !"

"क्यों ? ईश्वर पर विश्वास एक चीज है और धर्म का पाखण्ड दूसरी।"

"कारण स्पष्ट है। एक तो ईश्वर की दृष्टिगत संस्था के खात्मे के साथ साथ ईश्वर में विश्वास होना पागपन समझा जाने लगा। दूसरी सब से बड़ी बात यह है कि आर्थिक परिस्थितियों की निर्धारण-शक्ति के अटूट विश्वास ने भी ईश्वरवाद की जड़ खोखली कर दी है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि रूस में दया, वात्सल्य, त्याग, सत्य, विवेक आदि गुणों को वहिष्कृत किया जाता है। सच तो यह है कि व्यावहारिक आध्यात्मिक नियमों की सत्ता वहाँ पूँजीवादी देशों की अपेक्षा अधिक दृढ़ है। वहाँ धर्म का तत्व है—असलियत है—'सबस्टेन्स' है। आखिर धर्म का प्राण आध्यात्मिक पहलू है। रूस में धर्म कही जानेवाली वस्तु की असलियत में विश्वास किया जाता है। हाँ ! उसे धर्म नहीं कहा जाता। उन्होंने धर्म के ठेकेदारों की इतिश्री कर दी है। ईश्वर

में अविश्वास अवश्य प्रकट किया गया है पर धर्म की वास्तविकता वहाँ अब भी मौजूद है।"

"लेकिन यहाँ तो प्रचार किया जाता है कि समाजवाद और साम्यवाद धर्म का मूलोच्छेद करता है। ईश्वर पर अविश्वास होना साम्यवादी होने की पहली शर्त है।"

"यह तो रूस की बात हो गई। साधारण तौर से ईश्वर पर विश्वास और धर्म का समाजवाद से कोई स्पष्ट सम्बन्ध नहीं है। तुम ईश्वर में विश्वास करो या न करो—धर्म को मानो या न मानो—साम्यवाद का इससे क्या बनता बिगड़ता है? लेकिन तुम यदि ईश्वरवाद के आवरण में भाग्यवाद का प्रचार करके आर्थिक यंत्र को शिथिल बनाओगी—प्रगति की शक्तियों को रोकोगी और धर्म के परदे में पूँजीवाद का प्रचार करोगी तो साम्यवाद तुम्हें पीस देगा। ईश्वर का नाम और उसका सहारा तो उन कमजोर निर्बल आत्माओं का संबल है जो ज्ञात या अज्ञात रूप से दूसरों का शोषण करती हैं या उनके शोषण में सहयोग देती हैं। उन्हें भीतर ही भीतर—यहाँ तक कि समस्त वातावरण में अशान्ति और उदभ्रान्ति के कीटाणु मिलते रहते हैं। ईश्वर का नाम ले लेकर वे अपने पापों को भूला करते हैं—भूलने की चेष्टायें करते हैं। यही हकीकत है।"

"मैं तो यह मानती हूँ कि ईश्वरवाद या धर्म यदि क्रान्ति का विरोध करते हैं और ऐतादृशत्त्व ( status quo ) के हिमायती हैं तो उन्हें नष्ट होना है। हमारे कल्याण पर ही वे पनप सकते हैं—हमारे शोषण, पतन और सर्वनाश पर नहीं।"

"ठीक कहा तुमने। क्रान्ति का मार्ग अवरुद्ध करे ऐसी कोई भी शक्ति संसार में नहीं है। उस धर्म या ईश्वरवाद पर धिक्कार है जो प्रसन्नचित्त होकर राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक शोषण का नाश नहीं करना चाहता। दुनिया एक दिन देखेगी—नवनिर्माण की आग की वह सुन्दरी देवी जिसे क्रान्ति कहते हैं—कैसी प्रलयङ्करी, उन्मादिनी और तेजस्विनी होती है! जन जन को वह कैसा दुर्जय तेज प्रदान करती है!"

तारा के चेहरे पर खून दौड़ने लगा। क्रान्ति के वर्णनों से प्रिय विषय, उसके चित्रों से बढ़कर प्रिय आस्था, उसकी रक्तरञ्जित सम्भावनाओं से बढ़कर प्यारी तस्वीरें उसके लिये कोई और नहीं थीं। एक बार यह सामाजिक व्यवस्था बदल जाती—काश! एक बार यह पूँजीवादी सत्ता समाप्त होकर श्रमसत्ता की स्थापना हो जाती! तारा ध्यान से सुनने लगी।

मोहन ने कहा—"सत्य के सम्पूर्ण अनावृत रूप को देख सकने की शक्ति यदि धर्म को प्राप्त है तो वह अपना अस्तित्व टिका सकेगा। यदि धर्म और ईश्वरवाद को क्रान्ति की शक्तियों को उभारना है—बलिदान की ज्वाजल्यवान माला को गूँथना है—मानव द्वारा मानव के—वर्ग द्वारा वर्ग के—देश द्वारा देश के शोषण को नष्ट करने में आगे बढ़ना है तो वह हमारे सिर आँखों पर। विपरीत इसके यदि वह शोषण को शक्ति देता है—शोषितों की रीढ़ और कमर तोड़ता है—यदि समाज की प्रतिक्रियाशील शक्तियों का साथ देता है और धनी को अधिक धनी और निर्धन को अधिक निर्धन बनाता है तो वह पातक है—कलंक है—जीवन का पंक है। सच्चे धर्म में एक विद्रोही गठन होती है—वह क्रान्ति का सहचर होता है। हमें आज ऐसे ही धर्म की आवश्यकता है। हमें वह धर्म चाहिये जो यह विश्वास पैदा करे कि मनुष्य और उसके विचार समय की आर्थिक अवस्था में पलते हैं—आर्थिक अवस्था में परिवर्तन करके ही आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है। तुम समझ गईं न?"

"हाँ मैं समझ गई।"

"तब तुम्हें यह समझने में कोई विशेष दिक्कत नहीं होगी कि धर्म और ईश्वर दोनों साधन है—साध्य नहीं! साध्य है जीवन की पूर्णतम आध्यात्मिक उन्नति। साँसारिक कल्याण अर्थात न्यूनतम परिश्रम से सब आवश्यकतायें पूरी होने की अवस्था में ही मानव को बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास का अवसर मिल सकता है। दूसरे शब्दों में साँस्कृतिक सिद्धियों के लिये—उनकी उपलब्धि के लिये एक

निश्चित, न्यूनतम अवकाश की जरूरत है। साम्यवाद मानव के लिये वे अवस्थायें पैदा करना चाहता है जिनमें उसको अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये दिन रात काम में न जुटा रहना पड़े—उच्चतर बातों के लिये भी सुविधा और समय मिल सके। जिस आध्यात्मिक अवस्था की हम कल्पना और माँग करते हैं वह आर्थिक उन्नति पर आधारित है। उसमें आर्थिक तत्व दबते नहीं वरन और उभरते हैं।"

"लेकिन आपका जमना की तरंगों को देखकर विभोर हो जाना और राधाकृष्ण के कुञ्ज में पहुँच जाना क्या मानी रखता है? धर्म और आध्यात्मिकता से तो उसका कोई सम्बन्ध नहीं। यह केवल एक अस्वस्थ्य और मदालस भावुकता है।"

"जहाँ आत्मा का वास्तविक रसदान होगा वहाँ भावुकता आ जायगी। तुम इसे रोक नहीं सकतीं—मैं इसे रोक नहीं सकता। यदि मुझे उसमें आत्मदान का उत्कृष्ठ निर्देश दीखता है तो मैं उसे अवास्तव कैसे समझूँ। तुम्हें पता होगा हमारे देश में आतङ्कवाद की जो परम्परा थी—विप्लव यज्ञ की आहुतियों सा जो आन्दोलन था—उसमें अगणित भावनाशील आदर्शवादी युवक हँसते हँसते फाँसी पर चढ़ गये। वे अधिकाँश आस्तिक थे—ईश्वरवादी थे—वैष्णव भी थे। हम मानते हैं उनका क्रान्ति का रूप सही नहीं था—क्रान्ति का एक भावुकतापूर्ण रसात्मक पहलू ही उनके सम्मुख था—समाज के तल में उमड़ने घुमड़ने वाली—सामाजिक क्रान्ति के लिये आकुल शक्तियों से उनका पूर्ण परिचय नहीं था। लेकिन वह कौन सी चीज थी जो उन्हें सर्वस्व होम देने की दीक्षा देती थी? उस श्रद्धा की कीमत तुम आँक सकती हो? एक गलत या सही आदर्श पर अपने प्राणों का बलिदान कर देना तो प्रवर्तक ही जानते हैं।"

"आपका मतलब क्या है? आप क्या कहना चाहते हैं? इतना घुमा क्यों रहे हैं?"

"मेरा मतलब साफ है। मैं उन संस्कारों का नाश नहीं चाहता या नहीं कर सकूँगा जो मुझे पार्थिव जीवन के ऊपर उठाते हैं—पृथ्वी के ऊपर

रख देते हैं। आत्मा का अस्तित्व मैं कभी अस्वीकार न कर सकूँगा—ईश्वर को चाहे मानूँ चाहे न मानूँ। मैंने उस तपस्या—उस साधना—उस दीर्घकालीन एकान्तव्यापी विरहनिष्ठा को समझा और बूझा है जो वैष्णव प्रेमधारा का प्राण है। मैं एक सैनिक हूँ।—मानवता के संघर्ष में मुझे हिस्सा लेना है—जूझना है। एक नई सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के निर्माण में भी योग देना है। परन्तु उसके बाद ? मेरी आत्मा को कहाँ और कैसे शान्ति मिलेगी ? इस भयानक, जलते हुए तप्त बालू के मैदान में मेरे लिये कहीं कुछ हरियाली चाहिये। संघर्ष—संघर्ष—संघर्ष मैं जानता हूँ और मानता हूँ जैसे संघर्ष और मैं दोनों साथ साथ पैदा हुए थे। कभी मैंने उससे मुँह नहीं छिपाया। पर मेरी भावुकता मुझसे न छीनो। मेरे दिल के घोंसले में चिड़ियों के बच्चों की तरह दुबके मेरे सपनों को तबाह न करो। जीवन के अंतसमय वही मेरे काम आवेंगे। जीवन के बीच में भी जब मैं थकने लगूँगा—मेरे पैर उखड़ने लगेंगे—मेरी बाहें काँपने लगेंगी—उस समय वे ही मुझे बल और साहस देंगे। तुम क्या आदमी को मशीन समझती हो। क्या वह कभी डिगेगा नहीं—विचलित नहीं होगा ? क्या उसके कदम एक ही दृढ़ता से आगे पड़ेंगे ? क्या उसके हृदय को कभी निरुत्साह नहीं होगा—भीति नहीं होगी ? उस समय के लिये उसके स्वप्न उसके पास छोड़ दो। उसके विश्वास की दृढ़ता का स्रोत इन्हीं सपनों में है। निःसन्देह यह भावुकता है। मगर यह सत्य है—शिव है—और सुन्दर तो है ही।"

"आप क्रान्ति को--इन्किलाब को—एक बौद्धिक और वैज्ञानिक क्रिया न मानकर उसे एक भावुकता-संचालित रसात्मक परिवर्तन या अधिक से अधिक स्वप्नों की परिपूर्ति मानते हैं।"

"मेरे मानने न मानने से क्या होता है। मैं उसे देवी मानता हूँ। परन्तु क्रान्ति की रूप-छाया में जो दानवीय कर्म देश देश में हुए हैं उनसे कौन अनभिज्ञ है ? और मैं क्रान्ति को दानवी मानूँ तो भी उसमें देवत्व का जो अमृतरस लबालब भरा है उसे पीकर कौन

नहीं अमर हो गया ? इस सम्बन्ध में मेरे विचार इतने असंदिग्ध हैं कि तुम्हें यह प्रश्न ही नहीं करना चाहिये। यह सब मेरी व्यक्तिगत दुर्बलता है। तभी तो सपनों का आश्रय लेता फिरता हूँ। जो बलवान हैं—जिनका पूरा परिष्कार हो चुका है उन्हें अपने सचेतन मस्तिष्क में जिस विचित्र तटस्थता की अनुभूति होती है—लगता है मैं उसके लिये आजीवन लालायित ही रह जाऊँगा। तुम मुझे गलत न समझना। मैं मनुष्य की रचनात्मक कार्यक्षमता पर जोर देता हूँ। मैं मानव को किसी ऊपरी शक्ति के हाथ की कठपुतली नहीं मानता। मेरे अन्दर कभी किसी भी अवस्था में—आत्मा के विकास की किसी भी स्थिति पर आकर दैवी प्रेरणायें उठेंगी—मैं यह मानने से इन्कार करता हूँ। मैं मनुष्य को अपने भाग्य और समाज का सृष्टा मानता हूँ। मैं जमीदारों और पूँजीपतियों को किसान और मजदूरों का ट्रस्टी नहीं समझता। मैं व्यक्तिगत पूँजी का विरोधी हूँ। मैं श्रेणीयुद्ध में विश्वास करता हूँ और प्रत्येक प्रकार के शोषण का अन्त कर देना चाहता हूँ।"

"और हिंसा ? आपका दिल जब इतना मुलायम और वैष्णव है तब आप कैसे क्रान्ति का रक्तरञ्जित रूप देखेंगे ? आपको तो शान्तिमय—समझौते वाली क्रान्ति चाहिए। शान्ति की छोटी बहन ! बल्कि आज्ञा हो तो कहूँ—ममता की।"

"चुटकियाँ मत लो तारा। मैं निश्चय ही अहिन्सा के महत्व को समझता हूँ। अनावश्यक हिन्सा मैं नहीं चाहता। तुम यहाँ गलती पर हो। साम्यवादी या क्रान्तिवादी हिन्सक हत्यारे नहीं होते। नरमेध में उन्हें कोई मजा नहीं आता। पूँजीपति जो आज साम्राज्यवाद का आश्रय लेकर करोड़ों मनुष्यों को दास बनाये हुए हैं—जिनके लिये भीषण जगतव्यापी युद्ध छेड़कर भयंकर रासायनिक पदार्थों से काम लेना एक साधारण सी बात है—भले ही मानव जीवन को तुच्छ समझते हों परन्तु साम्यवादी मानव जीवन का मूल्य पहचानता है। वह रक्तपात को अच्छा नहीं समझता। यदि बिना

रक्तपात के उसके उद्देश्य की सिद्धि हो जाय तो उसे हर्ष होगा। परन्तु वह कटु सत्य का द्रष्टा भी है। उसे यह भी ज्ञात है कि आज तक जितनी क्रान्तियाँ हुई हैं सब में कोई न कोई ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है जिसने रक्तपात कराकर छोड़ा है। साम्यवादी होने के नाते मेरा यह विश्वास है कि शान्ति के लिये क्रान्ति आवश्यक है। क्रान्ति में कम या ज्यादा हिन्सा तो होगी ही। उस हिन्सा से विचलित होकर हम अपने लक्ष्य को छोड़ेंगे नहीं। हम हिन्सा का स्वागत नहीं करते पर उससे घबराते भी नहीं। और कायरता से हिन्सा को ज्यादा तरज़ीह गाँधीवाद भी देता है। मैं मानता हूँ समाज के मौजूदा राष्ट्रीय और वर्गिक संघर्ष बगैर हिन्सा के नहीं निपटाये जा सकते।"

कालेज का समय हो चुका था। मोहन ने कहा-"अब मैं चलूँगा। तुम मेरी ओर से किसी मुग़ालते में न रहना। बहुत सम्भव है मैं अपने को ठीक तरह से व्यक्त न कर सका होऊँ। एक बात तुम और सुन लो। हमारे समाज की भयंकर समस्या और नारकीय विषमता का निपटारा युद्ध में है—शान्तिमय संघर्ष या समझौते में नहीं—पूँजीवादी स्वार्थों के विनाश में है—पारस्परिक मेल में नहीं। क्रान्ति में है—परिवर्तन में नहीं—कोटि कोटि शोषित श्रमिकों कृषकों की हुंकार में है—व्यक्तिवादी आत्म-अभिव्यक्ति में नहीं—हिंसा में है—अहिंसा में नहीं।

## [ १५ ]

कई दिन बीत गये। बीच में तारा झाँसी जाकर वर्माजी से मिल आई थी। दिवाली निकट आगई। मोहन 'जागरण' कार्यालय में लगभग पन्द्रह दिन काम कर चुका था। वेतन में से तीस रुपये अग्रिम भी ले आया था। शाम को कालेज से लौटते समय वह बाजार से दो जोड़ा चट्टी और दो खद्दर की साधारण साड़ियाँ खरीद लाया। दो एक किताबें भी ले आया। आज उसे अन्तिम क्लास लेना था। तारा ने पूछा—"आप क्या खरीद लाये?"

मोहन ने कहा—"कल सुबह घर जाना है। चट्टियाँ और धोतियाँ हैं। एक दो किताबें भी हैं।"

"आपको रुपये की जरूरत हो तो मैं दूँ। अपने लिये भी तो कुछ ले लीजिये।"

"मुझे अपने लिये जरूरत नहीं। धोती कुरते सब हैं। तुम रुपये देकर क्या करोगी। मेरे पास काफी हैं।"

"मैंने आपको साड़ी और चट्टी लाने के लिये मना किया था। मेरे पास कई थीं। आप उन्हें लेते जाते। व्यर्थ में रुपये खराब किए। आपको संकोच ही क्यों हुआ? आप मुझे इतना गैर क्यों समझते हैं"... .....कहते कहते तारा का मुख कुछ विवर्ण हो उठा।

"नहीं नहीं तारा! यदि रुपये वहाँ से न मिलते तो तुमसे लेता ही। खैर! तुम्हारे लिये भी तो इन चीजों की जरूरत है। रक्खे रहो। कहाँ रोज खरीदती फिरती हो।"

"मुझे खरीदने की जरूरत ही नहीं पड़ती। भैया के इतने दोस्त हैं कि मैं दस बीस जिन्दगी गुजार सकती हूँ। तरह तरह के उपहार—कपड़े, खिलौने, जूते, कलम, किताबें, मुझे मिलती रहती हैं। भाभी ने उस दिन एक 'टी सेट' भेजा है। आपने देखा होगा। बताइये मुझे जरूरत ही क्या है। नहीं लेती तो दुःख मानती हैं। मैं ममता की शादी में बहुत सा सामान भेज दूँगी। उस समय आप इन्कार न कर सकेंगे।"

"तुम चाहे जो देना। मुझे न अभी कोई आपत्ति थी और न तब होगी। मैं उसे बहन समझता हूँ और तुम्हें भी। दोनों पर मेरा अधिकार है। दोनों का मुझ पर अधिकार है और दोनों का एक दूसरे पर अधिकार है।"

"मैं चलूँ आपके साथ। आप यदि अनुमति दे दें तो साथ साथ चलूँ और लौट आऊँ।"

मोहन ने कुछ सोचते हुए कहा—"नहीं, अभी नहीं। तुम कुछ दिन धैर्य रक्खो। आगे जब मैं जाऊँ तो मेरे साथ चलना।"

तारा ने मचलते हुए कहा—"हर्ज ही क्या है। मैं चली चलूँ। आप घर पर रहियेगा —मैं आस पास के गाँवों में घूम घूमकर दौड़ा करूँगी। कुछ न होगा चार छः मीटिंग हो जाँयगी। आपको आपत्ति ही क्या है?"

मोहन ने दृढ़ता से कहा—"आज नहीं तारा! आगे फिर चलना।"

रात भर मोहन को नींद नहीं आई। पड़ा पढ़ता रहा। सुबह सात बजे गाड़ी जाती थी। पहले भी ऐसा होता था। जब गाँव जाना होता था तो उसे रात भर नींद नहीं आती थी। ऐसे अनिर्वचनीय उल्लास और पुलक उसे होते थे कि वह रात भर उमंग से परिपूरित जागता रहता था। आज भी ऐसा ही हुआ। सुबह लगभग चार बजे तारा नीचे आई। मोहन के कमरे में रोशनी हो रही थी। झाँककर देखा—मोहन लेटा पढ़ रहा था। उसने बाहर से ही कहा—"आज आप बड़ी जल्दी जग पड़े।"

मोहन ने सामने टेबिल पर किताब रखकर आँखें मलते हुए कहा—"आज तो मैं सारी रात सो नहीं सका। क्या समय होगा? गाड़ी सात बजे छूट जाती है।"

"अभी चार बजा है। आप चाहें सो लें।"

'बाथरूम' से लौटकर तारा ने कमरे का दरवाजा खोला और भीतर आई। मोहन लेटा पढ़ रहा था। तारा पास की कुर्सी पर बैठ गई। मोहन ने किताब एक ओर रख दी और तारा के मुँह की ओर प्रसन्नचित्त से देखने लगा।

तारा ने कहा—"आपकी खुशी समाती नहीं। मैंने आपको आज तक इतना प्रफुल्लित नहीं देखा। लड़के ब्याह के दिन भी इतने खुश नहीं होते।

मोहन ने निर्विकार भाव से कहा—"अपने घर जाते समय उल्लास का होना स्वाभाविक है।"

तारा ने कहा—"मगर सबसे ज्यादा खुशी तो आपको ममता से मिलने की है।"

"उसीके बुलाने पर जा रहा हूँ—वर्ना व्यर्थ क्यों जाता। बड़ी पागल लड़की है। जितना विद्रोह सैकड़ों लड़कियों के लिए पर्याप्त होता, उतना 'नेचर' ने अकेले उसे दे दिया है। जाकर अच्छी तरह समझा आऊँगा। विवाह में यदि कोई अप्रत्याशित उपद्रव खड़ा कर दे तो उसकी और मेरी बदनामी होगी। उसे कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिये जिससे लोगों को आक्षेप करने का मौका मिले।"

तारा ने कुछ उत्तेजित होकर कहा—"यह क्या आवश्यक है कि केवल माता पिता के कहने पर अपनी मर्जी के विरुद्ध वह जिससे चाहे विवाह कर ले। आप क्रान्तिकारी बनते हैं! अपनी शिष्या को ऐसी सलाह देते आपको हिचक नहीं लगती? मैंने आपकी यह बात समझने की चेष्टा की। मेरी समझ में नहीं आई! वह संघर्ष करना चाहती है। आपको बुलाती है कि प्राणों में बल उतारे। ऊँचा मस्तक लेकर वह विद्रोह कर सके। आप जा रहे हैं उसे जीवन से समझौता करना सिखाने—जैसे वह यह जानती नहीं। आप असल में उसके लिये नहीं अपने लिये चिन्तित हैं। पर यह आपकी कायरता है।"

मोहन उठकर बैठ गया। मुस्कराते हुये बोला—"अधैर्य प्रदर्शित न करो। बाइबिल में लिखा है Judge not और मैं तुमसे कहूँगा, Hasten not क्योंकि तुम्हें स्थिति नहीं मालूम।

"मैं नहीं जानती उसके माता पिता कैसे आदमी के साथ उसका विवाह करना चाहते हैं। परन्तु बिना उसकी सहमति के उन्हें ऐसा करने का अधिकार क्या? नारी क्या कोई 'कमोडिटी' है जो उसकी मर्जी के विरुद्ध उसका क्रय विक्रय किया जा सके। क्या युगयुग की साधना, तपस्या, कष्टसहन और आत्मबलिदान का उसे स्वतन्त्रता—समता—अधिकार के इस युग में यही पुरुस्कार मिलेगा? आप उसके गुरुदेव हैं। आपसे वह जीवन की इन संघर्षमयी घड़ियों में पन्थदान माँगती है। आप अपना कर्तव्य देखें।

झूठी लोकलज्जा और प्रपंचभीरुता का भार वह कब तक ढोती रहे ? कब तक अपनी आत्मा से प्रवंचना करे ?"

मोहन ने कहा—"मैं यह नहीं मान सकता कि उसके माता पिता बिना उसे पसन्द कराये—बिना उसकी सहमति के किसी अपात्र या कुपात्र के साथ उसका विवाह कर रहे हैं। यदि वे किसी योग्य व्यक्ति को तय कर चुके हैं और उसे भी कोई आपत्ति नहीं है तब मेरी अनुमति या आज्ञा की आवश्यकता ही क्या रह जाती है ?"

"वह आपसे प्रेम करती है। आपको अपना जीवनसाथी बनाना चाहती है।"

"यदि मैं उससे प्रेम न करता होऊँ—यदि मैं ही उससे विवाह न करना चाहूँ—तब ?"

"तब ठीक है। आप स्वतन्त्र हैं आप उससे विवाह करें या न करें। परन्तु आप या कोई और उसे किसी अन्य व्यक्ति के साथ विवाह करने पर बाध्य नहीं कर सकते ? और आप स्वयं विवाह क्यों नहीं कर सकते ? आपको आपत्ति ही क्या हो सकती है ?"

"मुझे सामान वगैरह ठीक करना है। कई आवश्यक पत्र लिखने हैं। इस समय मुझे माफ करो।"

"मैं अभी आपसे बातचीत नहीं करूँगी ! आप जब वहाँ से लौटेंगे तब मैं छेड़कर आपसे बात करूँगी। शुरू से ही समाज की व्यवस्था पुरुषों के हाथ में रही है। उन्होंने अपनी सुविधा, आधिपत्य और निरंकुशता को जारी रखनेवाला विधान बनाया है। आपको मैं बतादूँ कि पूँजीवादी व्यवस्था के साथ उसका भी दम टूटेगा। यहाँ मेरा आपका समझौता नहीं हो सकेगा। आप और मैं दो विभिन्न कैम्प में हैं। आप स्वतन्त्रता और समता का जो रेखा-चित्र खींचे बैठे हैं उसमें नारी की गुलामी अक्षुण्ण रहेगी !"

मोहन सामान बाँधने लगा। उसके बाद वह बाहर मुँह धोने आया और आकर पत्र लिखने बैठ गया। तारा तब तक खुद जाकर तश्तरी में नाश्ते के लिये नमकीन और मिठाई ले आई और

चुपचाप मोहन के सामने रखकर एक ओर खड़ी हो गई। मोहन ने नजर उठाकर देखा। दीवार से चिपटी तारा खड़ी थी। बिना कुछ बोले मिठाई उठा उठाकर वह खाने लगा। लिफाफों में पत्र भरकर उन्हें चिपकाया—जेब में रक्खा और उठकर पानी पीने चला गया। तारा को अपनी भूल ज्ञात हुई जब पानी पीकर मोहन आया। सबेरा हो चुका था। सड़कों पर गंगास्नान करने वालों की भीड़ चलने लगी थीं। मोहन हाथ में झोला लेकर बोला—"अच्छा मैं चलूँ।'

तारा ने अपनी 'रिस्टवाच' देते हुए कहा—"आप इसे लेते जायँ। आपकी घड़ी तो बिगड़ी है—दूकान में पड़ी है। गलती मेरी है। मैं वहाँ जाकर लाना भूल गई।"

"मुझे आवश्यकता नहीं। तुम उसे लाकर रख लेना। नमस्ते!"

"नमस्ते"—कहते हुए तारा पीछे पीछे निकलकर इक्का स्टेन्ड तक चली आई।

## [ १६ ]

ममता का विवाह पक्का हो चुका था। केवल तीन महीने शेष थे। तैयारी होने लगी थी। साधारण स्थिति के गृहस्थ के यहाँ लड़की का विवाह एक बड़ा और संकट का काम होता है। देवदत्त और उनकी पत्नी दोनों व्यस्त और चिन्तित थे। घर में और आदमी नहीं था। सारा काम उन्हें ही करना था। देवदत्त विचित्र ढंग के आदमी थे। दुनिया की बातों से उन्हें सरोकार कम था। उन्हें पग पग पर कठिनाई पड़ती थी। रुपये का प्रबन्ध तो हो गया था पर सामान खरीदना और ठीक करना बाकी था। वर ने बार बार कह दिया था मुझे आपसे कुछ नहीं चाहिए। बारात में दो सौ आदमी आवेंगे। आप सिर्फ हमारी बारात सँभाल लीजियेगा। पं० देवदत्त यह सब सोचकर घबराते थे।

ममता को कोई उत्साह ही जैसे नहीं था। दिन भर अपनी कोठरी में पड़ी पड़ी या तो पुरानी किताबें और कापियाँ देखा करती या

शून्य दृष्टि से छत और धन्नियाँ ताका करती । मोहन भैया जरूर आवेंगे—उसे विश्वास था । परसों दीपावली है । उसे मोहन की ओर से कोई आशा नहीं रह गई थी पर जीवन में जो मृग-तृष्णा होती है वह अन्त तक आशा की दुर्बल क्षीणता टूटने नहीं देती । यदि मोहन भैया ने उसकी विनती सुन ली और अपने चरणों में स्थान दे दिया तो .... वह कितनी सुखी होगी । यह उसकी सब से प्यारी कल्पना थी—सबसे मीठी सम्भावना थी ।

दोपहर को आँगन में बैठी पढ़ रही थी । पिता पास के गाँव में घी का प्रबन्ध करने गये थे । मा गाँव के जमीदार के यहाँ लड़के के छेदन के उत्सव में गई थीं । घर में ममता अकेली थी । उसका मन उचट रहा था । सहसा द्वार पर वही भुवनमोहन स्वर सुनाई पड़ा—"मम्मी !"

चुपचाप बैठी रह गई । मुँह से बोल नहीं निकला । मन जिस क्षण जिसको चाह उठता है वह यदि अनायास आकर वहाँ खड़ा हो जाता है तो ऐसी ही स्थिति आ जाती है । मोहन ने एक बार इधर उधर देखकर कहा—"यहाँ तो चाची नहीं देख पड़तीं । बाहर चाचा भी बैठक में नहीं हैं । तुम अकेली हो मम्मी ?"

"बिल्कुल अकेली । अकेले मुझसे बात करने में अब संकोच लगने लगा हो तो पास पड़ोस से किसी को बुला लूँ । बापू और माँ तो शाम से पहले आते नहीं ।"

मोहन ने कुछ अप्रतिभ होकर कहा—"मैंने यों ही सहज भाव से पूछा था । तुमसे बात करने में मुझे संकोच ? कभी नहीं मम्मी ! चाहे एकान्त हो चाहे हजारों की भीड़ । मेरे लिये तुम सदैव एक सी हो ।"

"तुम कब आये ?"

"आज सुबह । तुम्हारा पत्र मिला । मैं रुकना कैसे ?"

"न लिखती यदि न जानती कि मेरा पत्र पाने पर तुम अवश्य आवोगे ।"

"तुमने ठीक ही किया। तुम जब चाहो मुझे बुला सकती हो। एक बार तुम्हारा आह्वान पाने पर मुझे कोई भी शक्ति तुम्हारे पास आने से रोक नहीं सकती। विवाह हो रहा है यह जानकर सुख मिला। मुझे अम्मा से सब ज्ञात हुआ है। अच्छा सम्बन्ध है। तुम्हें मुझसे इस सिलसिले में क्या कहना है—मैं कुछ समझ नहीं पाया। तुम्हारा पत्र तो सूत्र था—बोलो न—इतना सख्त पत्र क्यों लिखा ?"

"यह विवाह मेरी इच्छा के विरुद्ध हो रहा है। मैं विवाह नहीं करना चाहती। व्यक्ति विशेष का प्रश्न नहीं है। विवाह करने की मेरी इच्छा ही नहीं है। लेकिन मेरे ऊपर भयंकर दबाव पड़े हैं। मैं तुम्हारी आज्ञा चाहती हूँ। उसी की प्रतीक्षा है।"

"प्रतीक्षा कैसी ? तुम्हारा विवाह तय हो चुका है। तिथि भी निश्चित हो गयी है। अब दूसरा उपाय ही क्या है ?"

ममता के चेहरे पर आशा की आभा लौट आई। बोली—"तुम्हारी आज्ञा की देर है। विवाह तो भाँवर पड़ने के पहले तक टूट जाते हैं। मैं साफ कह दूँगी—विवाह नहीं करूँगी।"

मोहन ने कहा—"विवाह टूटने का सवाल ही क्या है ? लड़का सम्पन्न है। फोटो तुमने देखा है। तुम्हें पसन्द वह है, ऐसा आभास मुझे होता है। फिर ऐसी अकल्पनीय बात क्यों सोचती हो ?"

ममता फिर निराशा के महागर्त में गिरने लगी। बोली—"तो तुम्हारी यह अंतिम आज्ञा है ? सोचकर जबाब दो। एक दो दिन विचार कर लो। जिस व्यक्ति को मैंने आज तक आँख से देखा नहीं—जिसके चरित्र और विचारों के सम्बन्ध में मुझे कोई ज्ञान नहीं उसके साथ मैं विवाह करूँ ? और जिसे जीवन में होश सँभालते ही देवता की तरह पूजती रही उसे······"

मोहन कुछ बोला नहीं। ममता के मुखपर ऐसी भीषण व्यथा की छाप अङ्कित हो गई थी जिसे सहन न कर सकने पर भी मोहन उसी ओर देखता रह गया।

ममता ने सबल कण्ठ से कहा—"तुम शायद मुझ पर क्रोध कर

रहे हो। मुझे उसकी तनिक भी चिन्ता नहीं। कब कब तुमने मुझ पर क्रोध नहीं किया और कब कब मुझे माफ नहीं किया? परन्तु……… अधिक नहीं कहा जाता मोहन भैया……! मेरे दिल पर संगीनें चल रही हैं। मेरे कलेजे पर बर्छियाँ भुँक रही हैं। मुझे चरणों में स्थान दो। मैं कृतार्थ हो जाऊँगी।"

मोहन शान्त—कठिन स्वर में बोला—"मेरे जीवन का ध्येय और मार्ग बन चुका है। किसी क्षण मेरे जीवन की डोरी कट सकती है—डेरा कूच हो सकता है। तुम्हें पता नहीं जिनसे मैं युद्ध कर रहा हूँ या करने जा रहा हूँ वे कितने सशक्त, सबल और सक्षम हैं। सरकार उनकी है—कानून उनके हैं—न्यायालय भी उन्हीं के हैं। अपराध और दन्ड-विधान उनके हैं—सारी नैतिक और सामाजिक मान्यतायें उनकी हैं। दुनिया के इतिहास में यह सब से बड़ी लड़ाई है। इसमें कितना बड़ा संहार होगा—कितना भीषण रक्तपात होगा यह तुम सोच नहीं सकती हो। तुम्हें स्वीकार करने का अर्थ है तुमसे विवाह करना। समाज एक युवा पुरुष और युवा स्त्री का इसके अतिरिक्त और कोई सम्बन्ध सोच नहीं सकता। मैं निश्चय कर चुका हूँ आजीवन अविवाहित रहूँगा।"

"मैं तुम्हारे मार्ग में बाधा नहीं बनूँगी। मेरी बात का विश्वास करो। तुमने सदैव मेरी बात पर विश्वास किया है। आज क्यों नहीं कर रहे हो?"

"मैं तुम्हारी प्रत्येक साँस पर विश्वास करता हूँ। पर मुझे अपने पर विश्वास नहीं। मैं तब कहाँ जाकर रुकूँगा कह नहीं सकता। कल्पना भी नहीं कर सकता। मैंने तुम्हें देवी की तरह पूजा है ममता! अब तुम्हें मानवी की सतह पर नहीं उतार सकूँगा।"

"मैं तो इस देवत्व में लुटी जा रही हूँ। नहीं जानती थी तुम इतने कठोर निकलोगे। तुमने तो एक सम्पूर्ण जन्म ही व्यर्थ और विफल कर दिया!"

"इसमें विफलता की क्या बात है। यदि आज मेरी मृत्यु हो गई

होती तो क्या होता ? मुझे आजीवन कारावास का दन्ड हो चुका होता तब ? इन बातों में कुछ नहीं रक्खा। यदि तुम मुझे इतना चाहती हो तो मैं सदैव तुम्हारा हूँ और रहूँगा। दुनिया के इस पार और उस पार कोई शक्ति मुझे तुमसे अलग नहीं कर सकती। तुम इस विवाह में आपत्ति न करो। मुझे अन्तःकरण से विश्वास है तुम सुख पावोगी। मैं रोम रोम से तुम्हें यही आशीर्वाद देता हूँ।"

अब ममता के चुप रहने की बारी थी। मोहन कहता गया "लड़कपन से तुम्हें देखता आ रहा हूँ। अपने से अधिक मुझे तुम पर विश्वास रहा है। तुम मेरी बात टाल सकती हो यह कल्पना भी मुझसे कोसों दूर रही है। मुझे शक्ति दो, शौर्य्य दो मैं तुम्हारा यह मंगल वरदान सहन कर सकूँ। तुम्हारी आँखों के कोने पर उमड़े जल के ये दो बिन्दु अन्तिम बिन्दु हों जिन्हें अपने मस्तक पर तिलक के रूप में धारणकर अकम्पित और अडिग आगे बढ़ूँ क्योंकि यह अकेले मेरा नहीं मेरे जैसे करोड़ों के अस्तित्व का प्रश्न है।"

"तुम्हारा यही अन्तिम आदेश है ?"

"बिलकुल ! जिनके साथ तुम्हारा विवाह हो रहा है वे धनवान हैं—बुद्धिमान हैं—समाज में उनका आदर है—लोगों का मस्तक उनके सम्मुख झुकता है। मैं शासकों की आँखों में खटकने वाला, स्वयं अपने में फाँस की तरह चुभने वाला और दुनिया की निगाहों में एक गृहहीन—लक्ष्यहीन आवारा हूँ। मैं तुम्हें कदापि सुखी न कर पाता। जिस पथ को न छोड़ सकने के कारण मैं तुम्हें छोड़े दे रहा हूँ वह मेरे हृदय और आत्मा से कितना अभिन्न है यह तुम समझ सकती हो। तनिक मेरी गहन वेदना तो समझो।"

"मगर भैया क्या यह नहीं हो सकता—क्या यह नहीं हो सकता........"

"क्या मम्मी ?"

"हम दोनों ऐसे नहीं हो सकते। दूर फिर भी बिलकुल पास—अलग फिर भी बिलकुल एक। एक ही उद्देश्य—जीवन-लक्ष्य में

बँधे........."कहते कहते ममता बेहोश होगई।

मोहन के लिये यह अनहोनी—अकल्पित घटना थी। समझ गया हिस्टीरिया का फिट है। दाँत बैठे थे—आँखे टँगी थीं। शरीर लकड़ी की तरह ऐंठ गया था। चेहरे पर कोई अभिव्यक्ति न थी—जैसे पत्थर की चट्टान हो। घर का एक एक कोना मोहन से परिचित था। उसे मालूम था कि ममता की माँ को भी अक्सर यह फिट आया करता है। 'स्मेलिंटसाल्ट' कहाँ रक्खा है यह भी उसे ज्ञात था। लाकर ममता को सुँघाते ही पाँच मिनट में वह होश में आ गई।

"क्या मुझे फिट आ गया था भैया ?"

"हाँ मम्मी ! मैं बिलकुल नई बात देख रहा हूँ। तुझे पहले तो कभी नहीं आता था।"

"यह तीसरा मौका था। दो बार पिछले महीने में आ चुका है। अब तो जीवन भर इसे आना है।"

"तुम पानी तो नहीं पियोगी ? मैं ले आऊँ।"

"नहीं ! तबियत अब ठीक है। सिर में दर्द है। घन्टे दो घन्टे में वह भी ठीक हो जायगा। तुम्हारे लिये मैंने पान नहीं बनाये। इतनी देर से तुम यहां हो।"

"पान खाने की आदत तो अब छूटी समझो ?"

"क्या कानपूर में पान नहीं मिलते ?"

"मैं वर्माजी के यहाँ रहता हूँ। वे लोग खाते नहीं। पैसा इतना पास में नहीं है कि दिन भर बाजार में खाता रहूँ। झंझट इतना हो नहीं सकता कि पानदान पालूँ। एक व्यसन ही तो छूट रहा है।"

"ममता ने पान बनाकर दिये। बोली—वर्माजी के यहाँ कौन कौन हैं ? उनकी पत्नी तो होंगी ही। बच्चे भी।"

"नहीं, कोई नहीं है। एक छोटी बहन अठाहरह-बीस साल की है। नौकर है। आज कल वे जेल में हैं। हम तीनों रहते हैं।"

"क्या वे पढ़ती हैं ?"

"नहीं पढ़ना छोड़कर कम्यूनिस्ट पार्टी में काम करती हैं। समझदार

और परिश्रमशील लड़की है। मेरे साथ यहाँ आने के लिये जिद कर रही थी। लाता तो रास्ते भर सिर खाती चलती। बात ज्यादा करती है।"

ममता के दिल पर धक्का लगा। घनिष्ठता यहाँ तक बढ़ गई है। हाँ अपने देवतुल्य भैया पर उसे विश्वास था। उसने अपने को सँभाला। मोहन भैया उसके हैं और सदैव रहेंगे।

"मम्मी मैं जाऊँ? अब तेरी तबियत ठीक है। मैं तेरी ओर से निश्चित रहूँगा।"

"जाने से पहले एक बार मिलोगे न! इस बार तुम न आना। मैं घर पर आ जाऊँगी"।

"तू कब आयेगी? कल दिवाली है। मुझे दिन में आसपास बाहर जाना है। शायद ही समय मिल सके। यदि परसों सुबह तू आजा तो भेंट होगी। दस बजे के लगभग मैं फिर चला जाऊँगा? दो चार सभायें इस बीच में कर डालनी हैं। मेरे जाने के बाद तो सन्नाटा हो ही जायगा।"

"परसों सुबह जमना नहाकर लौटते समय आऊँगी। तुम तो सोते ही मिलोगे। मैं आकर तड़के जगाऊँगी। अभी मुझे सन्तोष नहीं। बहुत सी बातें करने को बाकी हैं।"

"तू पगली है। अब कुछ नहीं कहना सुनना होगा। यों वह तेरा मकान है। तू जब चाहे आना।"

ममता को फिर एक धक्का लगा। तेरा मकान है! उसका मकान तो हो जाता......। मोहन उठकर बाहर चला गया। किसी ने जाना भी नहीं कि मोहन आया था। दूसरे दिन दिवाली थी। रास्ते में ममता की माँ से मोहन की भेंट हो गई। मोहन ने पैर छुए। उन्होंने आशीर्वाद देते हुए ममता के ब्याह का समाचार सुनाया और निमन्त्रण दे डाला। मोहन को मान लेना पड़ा बिना उसके शरीक हुए यह कार्य सानन्द समाप्त न होगा। अपने भावी दामाद के ऐश्वर्य, स्वरूप और शिक्षा का ऐसा सजीव बखान उन्होंने बीच सड़क पर मोहन को किनारे की तरफ

खींचकर किया कि मोहन को जान बचाना कठिन लगा।

तीसरे दिन सुबह मोहन ऊपर के कमरे में सो रहा था। सात बजा था! माँ और सीता जमना नहाने गई थीं। दोनों छोटे बच्चे घर में थे। मोहन के पैताने खड़े होकर उसके पैरों को अपने शीतल हाथों से हिलाते हुए ममता ने कहा—"भैया मैं आगई!"

मोहन सोने में बीहड़ था। करवट बदल दूसरी ओर मुँह करके सोगया। रात को देर तक जगा था। ममता ने इस बार अपने वैसे ही ठंडे हाथ मोहन के माथे पर फेरते हुए कहा—"भैया! भैया! मैं आई हूँ। देखो कितना दिन चढ़ आया है।"

सामने खिड़की के पास खड़ी होकर मोहन की ओर मुँहकर ममता ने भैरवी के स्वर में गाना शुरू किया—"तुम जागो मोहन प्यारे"

यह चिरपरिचित—कानों और प्राणों में—आत्मा के स्तर स्तर में बसी—लहराती आवाज सुनकर मोहन जाग उठा। बोला—"तुम बहुत जल्दी आगई। जमना नहा आई? मुझे जाते वक्त क्यों नहीं जगाया। मैं तुम्हारे साथ चलता। खड़ी क्यों हो—कुर्सी पर बैठ जाओ न!"

ममता कुर्सी पर बैठ गई। गरीबी और जवानी छिपाये नहीं छिपती। उसके भीगे बाल पीछे कमर तक छिटके थे। एक मोटी खद्दर की श्वेत सारी से उसका सद्य-स्नात शरीर ढका था जो रूप की प्रखर कांति से दक् दक् कर रहा था। मोहन ने सहज स्नेह की दृष्टि से उसे सिर से पैर तक देखकर कहा—"आज तो तुम अत्यन्त सुन्दरी लगती हो मम्मी!

"सच कहो भैया! मैं तो ऊब गई हूँ इस सौन्दर्य से। विधवा को इतना रूप शोभा नहीं देता।"

मोहन सिर से पैर तक सिहर उठा। बोला—यह क्या कह रही हो! सुबह सुबह तुम्हें ऐसी बात करते हिचक नहीं होती? छिः छिः! तुम्हें अपने कर्तव्य अकर्तव्य का भी ज्ञान नहीं। दो महीने तुम्हारे विवाह को रह

गये हैं। तुम ऐसा अपशकुन—ऐसा भीषण अमंगल अपने मुँह से निकालती हो।"

"विधवा तो हूँ ही? बल्कि उससे भी बदतर। मैं महाविधवा हूँ। मैं तो विवाह से पहले विधवा हो गई। मुझे यह रूप दुश्मन है। क्या तुम नहीं जानते थे!"

मोहन बेचैनी से कमरे में टहलने लगा। ममता वैसी ही देव-प्रतिमा-सी कुर्सी पर बैठी रही।

मोहन ने कहा—"छिः छिः मम्मी! मुझे तुम पर बड़ा अभिमान और भरोसा था। यही स्त्री का कर्तव्य है—यही धर्म है कि वह अपने भावी स्वामी को सुबह सुबह नदी में नहाकर कोसे? मेरा मस्तक लज्जा और ग्लानि से झुका जा रहा है। तुम मुझे सुबह सुबह ऐसी तीखी व्यथा पहुँचाने यहाँ आई हो?"

"मैंने सत्य कहा है भैया! तुमने कहा—मैं बड़ी सुन्दरी लगती हूँ। मैंने कहा रूप दुश्मन न जाने क्यों मेरे ऊपर फटा पड़ता है। तुम चाहते हो मेरा दम घोटा जाय और मैं चिल्लाऊँ भी नहीं। तुम्हारे देवी मान लेने से तो मैं होती नहीं—रहूँगी मैं इन्सान ही। इन्सान दर्द होने पर कहता है—चीखता है—चिल्लाता है। मैंने तो फिर भी बड़ी सहूलियत से कहा था...... ...।"

ममता ने पाँच मिनट तक चुप रहने के बाद वैसे ही शुष्क स्वर में कहा—जब से होश सँभाला तुम्हारी आज्ञा का पालन करती आई हूँ। रात को—तुम्हारे साथ चाँदनी में जमना किनारे घूमती फिरती थी—घंटों बैठी रहती थी। मैं तो तुम्हारी धरोहर हूँ। मेरा अपना कहने के लिये कुछ रह नहीं गया है। चाहे खुद स्वीकार करो—चाहे किसी को दे दो। मैं न बोलूँगी—एक बार—केवल एक बार तुम से सुन लेना चाहती थी। मैंने अब तक तुमसे स्पष्ट कुछ नहीं कहा था। कहने का अवसर नहीं आया था। जब यह धर्म-संकट पड़ा तो मैंने तुम्हें पुकारा। तुम भक्तवत्सल भगवान की तरह आगये। अब तुम्हारी आज्ञा न मान-

कर किस नर्क का विधान रचूँ ?"

मोहन ने बात बदलते हुए कहा—"मैं तुम्हारे लिये सारी और चप्पल लाया हूँ। दो तीन किताबें कल घर ले गया था मगर तुम्हें देना भूल गया। बाहर दालान की आलमारी में रख दी थीं—तुम्हें मिलीं।"

"तुम्हारे जाते समय दरवाजे तक आई और लौटी तो दिखीं। मैं जान गई। अब यह सब क्यों लाते हो? मुझे इनकी न कभी आवश्यकता थी और न है। एक धनवान वर के साथ मेरा ब्याह हो रहा है। मुझे इन चीजों की क्या कमी रहेगी। बाहरी आदमियों से यह सब उपहार लेने का अधिकार भी मुझे कहाँ रहेगा?

मोहन चुपचाप टहलता रहा।

ममता ने कुछ मिनट रुककर कहा—"तुमसे मैं एक भीख माँगती हूँ। तुम मुझे आशीर्वाद दो आज जितना दुख मिल रहा है उससे अधिक इस जीवन में अब न मिले।"

"फिर पागलपन की बात करती है।" कहते-कहते मोहन आकर पीछे खड़ा होगया और करुणा की अँजलियों से दोनों हाथ सिर पर फेरता हुआ बोला—"तेरा जी ठीक नहीं है। तुझे दुःख कौन सा और काहे का। रह गया मेरा आशीर्वाद! वह सदैव तेरे कल्याण के लिये मेरी साँस साँस में बाहर आता है।"

ममता ने बैठे ही बैठे मोहन के दोनों हाथों को जकड़कर पकड़ लिया और अपने गले में मालाकार डालती हुई बोली—"मुझे बड़ी तकलीफ है मोहन भैया! अब भी समय है। तुम मेरा त्राण करो। मैं जन्म जन्म में युग युग में तुम्हारे ही चरणों में रही हूँ। मुझे उनसे अलग न करो। मेरा लोक और परलोक न बिगाड़ो! मेरा विवाह होगा। मैं जिस की धर्म-पत्नी बनूँगी उसे तन देकर भी मन न दे पाऊँगी। तुम्हें तो कुछ न मिलेगा पर मेरा सब कुछ बिगड़ जायगा।"

मोहन ने गले से हाथ निकाल लिये और सामने चारपाई पर बैठकर तीव्र कण्ठ से बोला—"क्यों ? मन क्यों नहीं दे सकोगी ?"

ममता ने आँखें उठाकर मोहन की आँखों में डालते हुए कहा—क्योंकि शरीर की पोर पोर में—रग रग में—जीवन के खन्ड खन्ड में तुम जो बसे हो ! तुम स्वयं नहीं जानते क्या ! मुझे जो दिख गया है वह जिसे दिख जाता है वह फिर अपनी प्यासी आँखें हटा नहीं सकता।"

ममता ने मोहन की गोद में मुँह छिपा लिया—जैसे विश्व का सुख इसी गोद में छिपा है और कुछ ही क्षण वह उसे मिलेगा। मोहन चुपचाप बैठा अत्यन्त स्नेह से उसकी पीठ पर हाथ फेर रहा था।

ममता धीरे से बोली—"मैं गलत कह गई मोहन भैया ! तुम्हारा रूप आँखों से दिखाई नहीं देता। मैंने इधर ही यह अनुभव किया है कि मैं तुम्हें कितना प्यार करती हूँ। मैं लोकलज्जा खोकर निकल भागूँगी। मुझे तुम न त्यागो। मैं हड्डी हड्डी—त्वचा त्वचा—मज्जा मज्जा तक तुम्हारी हूँ।

मोहन ने कठोरतापूर्वक उसे उठाकर कुर्सी पर बैठा दिया। बोला—"मम्मी मैं अधिक बरदाश्त नहीं कर सकता। तुमसे ऐसी बातें सुनने की मैंने स्वप्न में आशा नहीं की। चुपचाप यहीं बैठो। मैं मुँह हाथ धोकर नीचे से आता हूँ। इस सम्बन्ध में मैं अब एक भी शब्द सुनूँगा। नहीं तो लाचार होकर मुझे दूसरी तरह पेश आना होगा।"

"क्यों ! क्या मारोगे ? मार लो। यह साध भी क्यों बाकी रह जाय।"

"मारने में क्या हुआ ? तुम्हें यह गुमान हो गया है कि तुम अब बड़ी हो चली हो और मैं तुम्हें मार नहीं सकता ?" कहता मोहन नीचे चला गया।

"मुझे मार डालो—मुझे मार डालो।" कहती कहती ममता

घायल हिरनी की भाँति फर्श पर बिछी लोटती रही। उसका क्रन्दन मोहन के कानों तक नीचे पहुँच रहा था।

सीता और माँ नहाकर लौट आईं। मोहन खड़ा दाँत साफ कर रहा था। झल्लाता हुआ बोला—"तुम लोग जमना नहाने जाती हो या जिन्दगी भर का प्रपंच करने। मैं सोता ही रहा तब चली गईं और अब मुझे जागे घन्टों हो गये तब आ रही हो। सीता! ममता ऊपर बैठी है। नहाकर इधर से जा रही थी। मैंने बुला लिया। उसने कुछ खाया पिया नहीं है। जाकर उसे लाई मिठाई जो हो ऊपर दे आओ।"

सीता ने कहा—"और तुम्हारी तश्तरी भी ऊपर रख दूँ ?"

"मैं नहीं खाऊँगा।"

सीता जब तश्तरी लेकर ऊपर पहुँची तो ममता कुर्सी पर बैठी फफक फफककर रो रही थी। हिचकियाँ बँधी थीं। सीता को आया जान ऊपर की खिड़की खोलकर बाहर झाँकने लगी। सीता ने कहा—"दीदी! यह नाश्ता रक्खा है। पानी भी। मैं भैया को पान बनाने जाती हूँ। तुम खाना यहीं खाना। घर में कहलाये देती हूँ।"

ममता सीता की ओर पीठ किये सुनती रही। रुलाई प्रकट न हो जाय इस डर से नहीं बोली।

मोहन ऊपर आया। तश्तरी में मिठाई और लाई वैसी ही रक्खी थी। ममता कुर्सी पर बैठी सुसक रही थी। मोहन ने कहा—"तुमने खाया नहीं ? लो मैं खिलाता हूँ—कहते कहते एक मिठाई उठाकर मोहन ने ममता के मुख में रख दी।"

ममता ने मुँह से मिठाई निकालकर खिड़की के बाहर फेंक दी और अपनी लाल अँखड़ियों को मोहन के मुँह पर स्थिर करके बोली—"चाहो तो मुझे दस बीस मिनट और बैठने दो—नहीं तो मैं चली जाऊँ। मैं कुछ नहीं खाऊँगी।"

मोहन उसकी सूजी बरौनियों को देखता रह गया। यह तो शुरू से ही ऐसी थीं। तो क्या ममता रात भर रोती रही है ?

उसकी ओर गंभीरतापूर्वक देखते हुए मोहन ने कहा—"यह लड़कपन मुझे अच्छा नहीं लगता। गिलास में पानी रक्खा है। मुँह धो डालो। सीता पान लेकर आती होगी। वह भी बच्ची नहीं है। बात का बतंगड़ बनाने से फायदा। लो उठो!"

ममता कुर्सी पर जड़ी सी बैठी रही। सीता के आने की आहट पाकर फिर खिड़की के बाहर मुँह निकाल खड़ी हो गई। सीता के जाने के बाद आकर कुर्सी पर बैठ गई।

लगभग आधा घंटे बैठे रहने के बाद ममता एक बार फिर धीरे से सुबुक उठी। "मोहन भैया—मेरे देवता—मैंने कौन सा अपराध किया है जो मुझे इस स्वर्ग से निर्वासित किये दे रहे हो। मैं तुम्हारी हूँ—बिल्कुल तुम्हारी हूँ—लो मुझे अंगीकार करो"—ममता मोहन के पैरों पर लोट गई।

मोहन पत्थर की मूर्ति की तरह अविचल रहा।

"मेरे स्वामी! मैं तुम्हें कितना प्यार करती हूँ यह आज तक पूरा पूरा बता न पाई। उसी प्यार की दुहाई है। मेरी रक्षा करो। मैं न जाने क्या कर बैठूँगी। मेरा जीवन विष हो जायगा। मेरे राजा भैया! मेरा सर्वनाश न करो।"

मोहन ने वज्र की तरह कठोर स्वर में कहा—तुम मुझे जी जान से प्यार करती हो?"

"हाँ। जितना एक मानवी के लिये संभव है। मैं मानवी ही हूँ। विश्वास करो।"

"उठकर बैठो। मैं तुमसे दो टूक बात कर लूँ।"

ममता उठकर कुर्सी पर बैठ गई। अपनी समस्त चेष्टाओं से वह उन्मादिनी लगती थी। मोहन ने आदेश के स्वर में कहा—"सामने पानी रक्खा है। मुँह ठीक तरह धोकर उस तौलिये से पोंछो-फिर कुर्सी पर आकर बैठ जाओ।"

ममता ने आज्ञा का पालन किया।

मोहन ने कहा—"तुम मुझे तन मन से प्यार करती हो? अपना

सर्वस्व मानती हो ?"

"हाँ! तुम्हें छोड़कर मैं जाना नहीं चाहती। तुम्हारे साथ रहना चाहती हूँ। पत्नी—बहन—दासी—किसी भी रूप में। मुझे पत्नी बनने की ऐसी साध है भी नहीं। मैं तुम्हारी निकटता चाहती हूँ। तुम्हारी सेवा करके अपने प्राणों का दाह मिटाना चाहती हूँ।"

"तुम्हें मुझ पर विश्वास है—पूरा पूरा या नहीं ?"

"है—आजीवन रहेगा।"

"यदि मैं तुमसे कहूँ—मेरा कल्याण और सुख इसी में है कि मेरा विवाह तुम्हारे साथ न हो। बिना विवाह किये तुम्हें साथ रखने का दूसरा रूप है ही नहीं। या मैं और आगे बढ़कर यह कहूँ—मैं तुम्हारे साथ विवाह नहीं करना चाहता तो········मैं किसी प्रकार तुम्हें अपने निकट नहीं रख सकता तो····· ···"

"मैं अपने को तुम पर नहीं लादूँगी।"

"शाबास। मुझे तुम जैसी बहादुर और बुद्धिवती लड़की से यही आशा थी। इतना कह लेने के बाद मैं तुमसे यदि कहूँ कि तुम्हारा जो विवाह तय हो गया है उसे हो जाने दो—मुझे भूल जाओ—तो तुम मेरी बात मानोगी। मैं इसी में तुम्हारा सुख देखता हूँ।"

"मैं चेष्टा करूँगी। विवाह मैं कर लूँगी और भूलने का यत्न भी करूँगी।"

"ठीक—आखिर तुम मेरी बहन हो। एक बात और लगे हाथ बता दो। बता क्या दो बल्कि मुझसे अन्तःकरण से वायदा करो—तुम अपने पति की सेवा, निष्ठा और निष्कपटता में कोई कसर नहीं रक्खोगी। उसे उतना ही प्यार करोगी जितना मुझे करती हो।"

फिर आँसू छलछला आये। ममता ने रोते रोते कहा—"मैं पूरा यत्न करूँगी। परन्तु मुझसे यह वायदा न लो। मैं मन की बात नहीं जानती। उस पर मेरा वश नहीं। मगर तन से मैं सच्ची रहूँगी। तुम मुझे क्यों इतना सता रहे हो? क्या तुम्हारा हृदय बिलकुल कसाई है ?"

मोहन की आँखें भर आईं। उसने प्रथम बार जीवन में ममता का भाल चूमते हुए, कन्धों से उसे लगाकर कहा—"मम्मी! आज तुमने मुझे जो संतोष दिया है वह अन्यथा दुर्लभ है। मेरा असंतुष्ट, अतृप्त और विद्रोही जीवन तो अपनी परिधि के बाहर लटका हुआ है। अभागा होकर—कदम कदम पर आहत होकर वह यदि लौटना भी चाहे तो—देश के लिये—उसे लौटने न दो। उसके भीतर की भूख को कुचल दो कि वह लौट न सके। वह आघातों के लिये खुला है—कवचहीन है। उसके विप्लवी प्राण उसे सुरक्षित घर से दूर दूर खींचे लिये जा रहे हैं। काट दो इस स्नेह के रज्जु को। गला घोंट दो इसके ममत्व के पंछी-प्राणों के लोभ का तुम क्यों इसके पीछे बर्बाद हो! तुम जो देव प्रतिमा हो। मन्दिर में तुम्हें चन्दन के सिंहासन पर स्थापित होना है।.........तुम जहाँ रहो सुखी रहो।.. विश्व का समस्त सुख तुम्हारे चरणों पर नत हो। जीवन का प्रत्येक वरदान तुम्हें मिले।

ममता रोती जाती थी। समझ चुकी थी कैसे हिमालय से काम पड़ा है। टप टप रोये ही जाती थी। मोहन ने कहा—"छिः मम्मी! अब भी वही अधैर्य्य। अब तो हद हो गई! मैं कल सुबह चला जाऊँगा। तुमसे भेंट न होगी। तुम्हारे विवाह तक यदि जेल के बाहर रह गया तो भी नहां आ सकूँगा। इस बार पार्टी के काम का नुकसान करके आया हूँ। यों किसी अवसर पर कहीं भी मुझे बुला सकती हो। मैं न रुकूँगा—न रुकूँगा।"

ममता ने झुककर मोहन के पैरों पर अपना सिर रख दिया। दृढ़ कंठ से बोली—"मेरे लिये इतना ही बहुत है। यह महान् संबल पाकर मैं एक बार शैतान का मुल्क भी देख आ सकती हूँ।"

## [ १७ ]

लौटते समय गाड़ी में बैठकर मोहन का मस्तिष्क कल्पना और चिन्तना के जालों में उलझ गया। ममता की ओर से आशिंक निश्चि-

न्तता उसे हो गई थी। भय जो था वह बहुत आगे था। तब तक वह जेल के बाहर रह सकेगा—उसे सन्देह था। भय यही था कहीं अपनी ससुराल आकर ममता उसे नित्य प्रति या दूसरे तीसरे बुलावा न भेजने लगे। उस स्थिति में कहीं उसके जाने आने से ममता के जीवन के निश्चयात्मक आधार फिर न डोलने लगें। वह जानता था उसकी पुकार पर वह रुक न सकेगा।

ममता को सदा के लिये छोड़ने का प्रयोजन? क्यों उसने आज अपने जीवन का सबसे सुहावना और लुभावना परिच्छेद सदैव के लिये बन्द कर दिया? क्यों वह आज बन्धनों में जकड़ी—छटपटाती आत्मा की आह्वान-ज्वालाओं को ठुकराकर—बचपने से अब तक बनाई अपनी दुनिया बरबाद करके भाग निकला? मानव जीवन का ध्येय और लक्ष्य! मानव जीवन की चरम परिणति क्या यहीं आकर होती है। यही क्या वह स्थल है जहाँ प्राणों की सबसे प्यारी वस्तु कुर्बान की जाती है? समाज बड़ा है व्यक्ति से—देश बड़ा है समाज से—और विश्व बड़ा है देश से—यह माना। लेकिन हृदय में रात दिन उसी की स्तुति क्यों होती रहती है? जीवनव्यापी ग्लानि की अथाह गहराई में यही पूजा की देवी क्यों जाग्रत दिखाई पड़ती है? वहाँ से जहाँ भी पाँव उठता है शून्य ही शून्य का अनुभव क्यों होने लगता है? क्यों फिर उसी के पास लौट चलने के लिये आत्मा ऐसी उत्कट आकुलता धारण कर रही है? उससे आज दूर जाते जाते जीवन क्यों एक सस्ती और व्यर्थ की चीज बना जा रहा है?

गाड़ी तेजी से कानपूर की ओर चली जा रही थी। शरद की प्रभा-उज्ज्वल हरीतिमा सम्मुख दिग् दिगन्त तक छाई थी। खेत के बाद खेत—मैदान के बाद मैदान—ताल के बाद ताल—जैसे सौंदर्य की निधियाँ खत्म होने नहीं आती थीं। एकदम नीरव, निस्तब्ध और शान्त प्रभात! पर मोहन के हृदय पर उदासी छाती का बोझ बनकर—हृदय की चट्टान बनकर बैठ गई है। सामने जोता निराया खेत जो दूर तक आकाश से मिलने के लिये तेजी से ऊपर को उठता

चला गया है। दक्षिण की ओर धीरे धीरे गाय के अघाये--तृप्त बछड़ों की तरह जाते हुए भूरे बादल—जगह जगह बेमतलब खेल करते हुए जल-स्रोत। लम्बे लम्बे पत्तीहीन और पत्तीयुक्त दस दस बारह बारह के समूहों में जहाँ तहाँ फैले वृक्ष। हरे-नीले और रुपहले इन तीन रंगों से अभिसिक्त प्रातःकालीन प्रकाश-सौंदर्य। पक्षियों की चहचहाहट-चेतना और स्फूर्ति देने वाली वायु में टहनियों का लहराना-यह सब उतना सुहावना आज क्यों नहीं लगता। नीले आकाश का यह चिरन्तन वितान और बिना किसी क्रम के घर से अनजान देश को निकल पड़ी पक्षियों की पाँत—आज ये सब भारी हृदय को और भी भारी बनाये देते हैं। दिल भीषण करवटें लेकर उबल रहा है जैसे अप्रत्याशित और विचित्र कोणों में खंडित होता जाता है।

तारा उस समय बाहर से लौटी थी। बैठी नौकर से बातें कर रही थी। मोहन को देखते ही खड़ी हो दोनों हाथ जोड़कर बोली--"आगये आप! ऐं—आपकी आँखें इतनी लाल क्यों हैं? क्या रास्ते भर रोते रहे हैं या कल रात को सोये नहीं। पर आप रोने क्यों लगे? जागरण की लाली है यह।"

"सुबह की गाड़ी से आना था। तबियत इतनी बेचैन थी कि लाख चेष्टा करने पर भी सो न सका। गाड़ी में भी नींद नहीं आई।"

तारा की जिज्ञासा अवर्णनीय थी। नौकर से नहाने का सामान ठीक करने के लिये कहकर वह तुरन्त ऊपर अपने कमरे में चली गई। मोहन तब तक झोला खूँटी से टाँगकर चारपाई पर लेट चुका था।

× × ×

उस दिन मोहन का तन और मन दोनों इतने थके थे कि वह कालेज नहीं गया। चारपाई पर लेटते ही उसे नींद आगई। शाम को सोकर उठने पर उसकी शिथिल उदासीनता, मानसिक कष्ट और यातना की मर्मवेदना कम हो चुकी थी। रात को आठ बजे उसे क्लास लेना था। इधर स्थानीय कार्यकर्ताओं के प्रचार से क्लासों में खासी भीड़

होने लगी थी। मजदूरों को संघर्षोन्मुख करना ही सब का ध्येय था। जिस महान क्रान्ति की वे तैयारी कर रहे हैं श्रमिकों कृषकों में जिस नूतन विद्रोह की कर्म-शिखा सुलगा रहे हैं उसे कैसे एक सक्रिय और सजीव—विधानात्मक सामाजिक शक्ति का रूप दिया जाय—यही इन क्लासों का पाठ्यक्रम था।

तारा नीचे आकर बोली—"आज आप क्लास लेंगे न ? अब तो आप ताजे हो चले होंगे।"

"मैं ठीक हूँ। तुम्हारा क्लास आठ बजे से है। अभी मुश्किल से छः बजे होंगे। मेरी घड़ी ले आईं ?"

"ऊपर रक्खी है। लाये देती हूँ। ममता बहन मजे में हैं। घर में सीता और माँ अच्छी तरह हैं न !"

"सब कुशल है।"

"पिताजी दिवाली में घर आये थे ?"

"वे नहीं आये। अच्छा ही हुआ। मैं उनसे दूर रहना चाहता हूँ। मुझसे उन्हें कष्ट होता है—मुझे भी उनसे कम तकलीफ नहीं होती। ममता से मैंने तुम्हारा जिक्र किया था। उसकी शादी कानपूर में हो रही है। यहाँ आने पर तुमसे भेंट होगी"—कहते कहते मोहन के मुँह पर विजय की गुलाबी झलक उठी।

"आखिर उसने आपको बुलाया क्यों था ?"

"वह विवाह नहीं करना चाहती। जब से होश सँभाला है उसने मुझ से बिना पूछे कोई काम नहीं किया। इतने बड़े काम में तो मेरी आज्ञा जरूरी है न ! मैंने समझाया बुझाया तो मान गई। जिस पुरुष के साथ विवाह हो रहा है वह सुशिक्षित और सम्पन्न है। ममता वहाँ सुखी रहेगी।"

"और आप ?" तारा ने एक गहरी दृष्टि डालते हुए कहा।

"मैं—मेरा क्या ? मैं उसे सुखी देखना चाहता हूँ। उसके सुख में मेरा सुख है।"

"आप क्यों भूल जाते हैं—आपके साथ ही उसे यथार्थ सुख मिलेगा। जहाँ तक मैं समझती हूँ उसने आपको इसीलिये बुलाया था कि एक बार वह फिर अपने त्राण की चेष्टा कर ले। लेकिन आप...... मुझे आश्चर्य होता है और दुःख भी।"

"तुम्हें आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं है और न दुःख ही। मैं अपने को और उसे जानता हूँ। मैंने अपने हाथों उसे बनाया है—उसका निर्माण किया है। तुम्हें इसमें चिन्ता करने की जरूरत नहीं।"

"सो तो है ही। आपकी 'प्राइवेट' बातों में दखल देनेवाली मैं कौन होती हूँ।" कहती कहती तारा उठकर चली गई।

"सुनो सुनो! तुम नाराज हो गईं। मेरा मतलब यह था कि मैं अपने को उसके योग्य नहीं समझता। मैं उसे सुखी देखना चाहता हूँ। मैं जानता हूँ मैं उसे सुखी न कर पाता। तुमसे मेरा क्या छिपा है? मैं स्वभाव से कोई बात किसी से छिपा नहीं सकता।"

तारा ने मुड़कर नहीं देखा। सीधे ऊपर चली गई।

डेढ़ घन्टे बाद तारा हाथ में मोहन की घड़ी लिये ऊपर से नीचे उतरी! चुपचाप कमरे में आकर उसने घड़ी टेबिल़ पर रख दी। शान्त कंठ से बोली—"साढ़े सात बज रहे हैं। अब चला जाय न?"

"हाँ हाँ चलो। मैं तैयार बैठा हूँ।"

दोनों चुपचाप घर से बाहर निकले। रास्ते में इक्के में बैठकर मजदूरसभा के दफ्तर आये। सीधे ऊपर हाल में चले गये। पचास-साठ आदमी वहाँ मौजूद थे। मोहन और तारा को देखते ही सब के सब चुप हो गये। शोर-गुल—हँसी मजाक—विनोदवार्ता बन्द हो गई।

मोहन दो घन्टे तक बोलता रहा। तारा एक कोने में बैठी चुपचाप मोहन की बातचीत सुन रही थी। मोहन ने इतिहास की पृष्ठ-भूमि पर सामाजिक शक्तियों के विकास और अभिव्यक्ति का हवाला

देते हुए उसके प्रधान शत्रु पूँजीवाद की चर्चा शुरू की। कैसे उसका मूलोच्छेदन हो—किन किन मोर्चों पर उसे नष्ट किया जा सकता है—किन प्रकारों—से यही उसका मुख्य आग्रह था। मार्क्सवाद के सामाजिक दृष्टिकोण पर—उसके समाज-विकास के सिद्धान्त और आर्थिक सिद्धान्तों के सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए उसने उत्पत्ति की पूँजीवादी प्रणाली पर प्रहार किया। इतिहास की आर्थिक व्याख्या, श्रेणी-संघर्ष, अर्थ के श्रम-सिद्धान्तों को समझाते हुए उसने क्रान्ति के शान्तिमय और वैधानिक तरीकों पर जोर दिया। मजदूरों—किसानों की बढ़ती हुई दरिद्रता को क्रान्ति का base बताते हुए उसने काल्पनिक समाजवाद और वैज्ञानिक समाजवाद में अन्तर बतलाया। अन्त में महाक्रान्ति की जयध्वनि निनादित करते हुए उसने कहा—"पूँजीवाद का अन्त अवश्य होगा क्योंकि विकास और परिवर्तन संसार के नियम हैं। और क्रान्ति? उसे आज तक कौन रोक सका है? मानवता का इतिहास इसका साक्षी है—सृष्टिक्रम की अबाध गति में बहती हुई जीवनधारा इसकी साक्षी है—भिन्न भिन्न कालों—भिन्न भिन्न देशों में बहा अगणित शहीदों का गरमागरम लोहू इसका साक्षी है। इस बार जो क्रान्ति होगी वह सबसे भयंकर—सबसे खूनी—सबसे विदारक होगी। उसमें सेनापतियों की हुँकार नहीं होगी—सैनिकों का तुमुल रव नहीं होगा—रणभेरी या डंकों की चोट भी उसमें नहीं सुनाई पड़ेगी। पर वह सामूहिक शक्ति की प्रतीक होगी। हम अग्नि की प्रलयवाहिनी तरंगों में होकर निकलेंगे। जो जलने योग्य होगा वह जलकर क्षार हो जायगा। जो बचेगा वह सदा बना रहेगा।"

"और हम सब"—मोहन ने मेघगर्जन के स्वर में कहा—"हम सब उसी महाशक्ति की लपटें हैं—उसी महाज्वाला के आक्रोश हैं—उसी महासंगीत के अनलवाही स्वर हैं—उस महावज्र के पर्वत-भेदी प्रहार हैं। हम क्रान्ति के हैं—क्रान्ति हमारी है। हम उसे अंगीकार करेंगे—वह हमें अंगीकार करेगी। साथियो! तुम उसी

महादीप्ति के माध्यम हो। तुम खो जा सकते हो—नष्ट हो सकते हो पर तुम्हारी शक्ति अखण्ड है—अक्षय है। तुम्हारे एक मरण में लाखों—करोड़ों आगामी जीवन निहित हैं। तुम क्रान्ति की भूमिका हो। तुम नवयुग के हठी भागीरथ की तरह क्रान्ति की एक एक गंगा लेकर कोने कोने—घर घर—हृदय हृदय में लहरा उठोगे। तुम धन्य हो—तुम्हारी विद्रोह की यह सर्वभुक ज्वाला धन्य है। आओ हम खड़े होकर शपथ लें·········· ····"

सब उठकर खड़े होगये जैसे महासागर के अतल में निस्पन्द पड़े तूफान सहसा उठ बैठते हैं—"हम क्रान्ति की पताका लेकर अकंपित, अडिग और अविलम्ब आगे बढ़ेंगे। विरोधियों का निरंकुश दमन, अनाचार की लपलपाती संगीनें, नौकरशाही के नृशंस उत्पीड़न और माता-पिता—स्नेही सम्बन्धियों की समस्त ममता भी हमें विचलित न कर सकेगी। हम क्रान्ति के हैं—क्रान्ति हमारी है।"

दोनों साथ साथ लौटे। रास्ते में एक दो साधारण बात करने के अतिरिक्त तारा कुछ बोली नहीं। उसके विचारों में संघर्ष जारी था। मोहन ने पूछा—"आप चाय पियेंगी?"

तारा ने अनमने भाव से कहा—"पी लूँगी।"

"चलिये सामने रेस्ट्रां में चलें। आप कुछ थकी सी लगती हैं। इतना गंभीर मैंने आपको कभी देखा नहीं। मेरे ऊपर नाराज हैं? अक्सर मुझसे बहुत सी गुस्ताखियाँ हो जाती हैं। शुरू से देहात में रहने और वहीं की तहज़ीब में पलने के कारण मैं शहरी जीवन की शिष्टाचार-रेखाओं से अपरिचित रहा हूँ। दादा से मैंने आते आते ही यह बात कह दी थी। वे कृपापूर्वक मुझे क्षमा करते रहे हैं। आप उनकी बहन होकर क्या वैसा नहीं कर सकेंगी? ममता को मैं भूला रहना चाहता हूँ। आपकी बातचीत से मेरा पुराना दर्द उभर आता है। आप व्यर्थ की गलतफहमी में न पड़ें।"

तारा सजल हो उठी। तो उस बात को टाल देने का यह

रहस्य है। बोली—"जब वह यहाँ आयेंगी और मिलना-जुलना होता रहेगा तब क्या होगा ? क्या यही दर्द दवा बन जायगा ?"

"एक शहर में रहने के मायने मिलने जुलने के होते हैं—ऐसा मैं नहीं मानता। बैठिये ! ब्वाय ! दो कप चाय और टोस्ट लाओ।"

तारा ने कहा—"आप एक साथ इतने कोमल और कठोर कैसे हो लेते हैं ? आपका यह दहकते हुए अंगारों जैसा भाषण सुनने के बाद कौन यह विश्वास करेगा कि आप एक स्त्री की चर्चा करते इसलिए घबराते हैं कि उसकी याद आने से आपका पुराना दर्द उठ खड़ा होता है। आप कभी कभी ऊषा जैसे सुकुमार हो जाते हैं—कभी दोपहर के सूर्य की तरह ज्वालामय।"

"मैं मस्तिष्क से मार्क्सवादी और विज्ञानी हो गया हूँ पर हृदय अभी संस्कारों में विजड़ित है। मेरे अन्दर अब भी वह मधुश्रवा है जो मुझे जब तब अपने जलदान से भिगो देती है। लेकिन दूर हो जायगी—मैं सोचता हूँ—दूर हो जायगी। एक दिन मैं अपनी दृढ़ता और पथरीला पौरुष पाजाऊँगा ?"

चाय पीते पीते मोहन ने कहा—"दादा के पकड़ जाने के बाद हमारे सात आठ साथी और पकड़े जा चुके हैं। इसी गति से यदि हम लोग बन्द होते गए तो फिर क्लास न हो सकेंगे !"

"दूसरी ओर देखिये न ! हमारी किसानसभा के सभी कार्यकर्ता पकड़ लिए गए हैं—केवल इसलिए कि उन्होंने जमीदारों के जुल्मों का प्रतिकार करने के लिए किसानों को उत्तेजित किया। एक एक व्याख्यान पर उन्हें दो दो साल का सपरिश्रम कारावास का दन्ड देना मैं समझती हूँ हमारी ताकतों को खुली चुनौती है। मिलों की हालत दिन पर दिन खराब होती जा रही है। यह तो कहिये मजदूर बड़े सब्र का इन्सान होता है। उसके बीच में काम करने वालों को भी वैसा ही बनना पड़ता है। असल में हम राजनैतिक शक्ति प्राप्त करके ही दलित और शोषित वर्ग की कठिनाइयों को दूर कर सकते हैं। हमारे पास वह शक्ति है नहीं !"

"राजनैतिक शक्ति किनको प्राप्त होगी यही सबसे बड़ी और देखने की बात है। राजनैतिक शक्ति प्राप्त करने के लिये राजनैतिक बुद्धि की दरकार है। हमारा एक युद्ध—एक नारा—एक लक्ष्य है—जो मेहनत करते हैं उन्हीं का राज्य हो? हम राज्य चाहते हैं किसानों का जो भूमि के सच्चे स्वामी हैं। हम राज्य चाहते हैं मजदूरों का जो कारखानों और मिलों के सच्चे अधिकारी हैं। हमें शोषण का अंत करना है। जब तक उसका अन्त नहीं होता तब तक राजनैतिक शक्ति कोई अर्थ नहीं रखती। तुम्हीं सोचो न!"

"मैं सोचती हूँ—समझती भी हूँ। पर स्थिति भयावह हो गई है। मिलों के मजदूरों में घोर असंतोष है। उनकी मजदूरी में कमी की जा रही है। उनके संगठन से बिना पूँछे उनके सहकर्मियों को नौकरी से अलग किया जा रहा है। और तो और उन्हें यह समझाया जाता है वे हमारे क्लासों में न आवें—उन्हें धमकाया भी जाता है। पूँजीपतियों और मिलमालिकों का यहाँ तक कहना है कि हमारे क्लासों में खुली बगावत की शिक्षा दी जाती है।"

मोहन ने व्यंग करते हुए कहा—"क्या वे लोग समझते थे मजदूरों को यहाँ भाग्यवाद और कर्मफल के सिद्धान्त सिखाये जाँयगे। सन्तोष की आत्मघाती नीति पढ़ाई जायगी। आज दादा बाहर रहते तो हम इतने विचलित न होते।"

तारा—"जब तक वे छूटकर बाहर आवेंगे तब तक हम लोग लद चुके होंगे।" सामने से शफात, शौकत, खन्ना और टन्डन आते दिखाई पड़े। मोहन ने हँसते हुए कहा—आइये इधर आइये। देखिये तारादेवी मौजूद हैं।"

तारा ने कुछ लजाकर कहा—"आप मेरे नाम के साथ देवी न लगाया करें।'

"तो क्या तारा बाई कहूँ? वही सरकसवाली जो बीस

मन का पत्थर अपने बालों से उठाती थी।"

"वह भी नहीं ! आप सिर्फ तारा कहा करें। मुझे देवी और भाई—बहन या बाई से चिढ़ है। जैसे स्वतन्त्र रूप से मानव का मूल्य ही न रह गया हो।"

चारों आकर वहां बैठ गये। तारा ने खन्ना से कहा—"आप तो भैया ! हमारे घर का रास्ता भूल गये। और भाभी तो·········अब मैं क्या कहूँ।

शौकत ने ब्वाय को बुलाकर ६ प्लेट खाना लाने को कहा। तारा और मोहन ने मना कर दिया। शौकत ने तारा से कहा—"तू इधर घर क्यों नहीं आई ? एक अरसा हो गया। अम्मी उस दिन कह रही थीं कहीं पकड़ तो नहीं ली गई। मैंने बारहा समझाया तब उन्हें इत-मीनान हुआ। तेरी भावज भी पूँछती थी।"

"भावज को आप बाहर तो ले नहीं आते—घर में कमरे की हूर बनाये बिठाए रहते हैं। वे खुद क्यों नहीं मुझसे मिलने आतीं ? मैं कहाँ तक दौड़ दौड़कर जाऊँ ? अम्मी की बात दूसरी है। कल किसी वक्त आकर सलाम कर जाऊँगी।"

खन्ना ने जमाया—"हाँ जी शौकत तुम तो कम्यूनिस्ट—मजदूरसभा के ज्वाइण्टसेक्रेटरी और तुम्हारी मिसेज हैं खातूने खाना—परदे की रानी। कुछ समझ में नहीं आता। थोड़ा बेमेल है।"

शौकत झेंपते हुए बोले—"मैं खुद परीशान हूँ। हजार बार कहा—तुम घर से बाहर तो निकलो ! बुर्का डालकर ही सही—मगर बन्दी निकलने का नाम नहीं लेती। मैं चाहता हूँ वह बाहर आवे और मज़हब-की गिरती दीवारों को देखे। मगर पूरी शुतुरमुर्ग है भाई। तुम लोग चाहे जो कहो, सुनूँगा और बड़ी तबियत से सुनूँगा।

तारा ने हँसते हुए कहा—"उनके सामने आप जुबान नहीं खोलते। उनके पीछे उन्हें शुतुरमुर्ग बनाते हैं। इसबार जब मिलेंगी मैं कह दूँगी।"

"कह देना बाबा—कह देना ! मेरा वसीका बन्द हो जायगा या

रियासत कोर्ट हो जायगी! दादा का खत आया? उनके बिना सूना सूना लगता है। कहिये मोहन साहब!—आपकी पढ़ाई लिखाई चल रही है या लीडरी करने का ही इरादा है। ज्यादा गर्मजोशी और जाँफिशानी न दिखाया कीजिये नहीं तो खामखाह लद जाइयेगा। आपके बोलने की मैंने तारीफें सुनी हैं। खुद तो सुनने का इत्तफाक नहीं हुआ।"

खन्ना ने कहा—"इनसे बढ़िया बोलने वाले शहर में कम होंगे। उस दिन इनके कालेज का एक लड़का जो मेरे पास आता जाता है बता रहा था—वहाँ के यूनियन में Democracy on trial पर इतना बढ़िया बोले कि चुनिन्दा प्रोफेसर चकरा गये। अँगरेजी के भी कामयाब स्पीकर ये हैं।"

"नहीं भाईसाहब! क्यों इतनी तारीफ़ें कर रहे हैं। मैं एक अदना सा विद्यार्थी हूँ। आप लोग मेरा दिल बढ़ायें मगर इस तरह नहीं।"

तारा ने कहा—"आप अँगरेजी के भी स्पीकर हैं। कभी बताया नहीं।"

"कुछ बात हो तब तो बताऊँ। प्रोफेसरों ने जबर्दस्ती मुझे खड़ा कर दिया। लिख मैं जरूर कुछ लेता हूँ। वे समझे लिखना और बोलना एक बात है। जो टूटा फूटा बोल सका बोल दिया।"

खाना आगया। चारों ने शुरू कर दिया। टन्डन ने कहा—"तारा तू क्यों नहीं खाती?"

"भूख नहीं है भाईसाहब। मकान पर बना रक्खा होगा। मोहन को आप चाहें खिला दें।"

"जी नहीं—मैं नहीं खाऊँगा। शुक्रिया!"

खाना खाते हुए शौकत ने कहा—"मजदूरों में बड़ी हलचल फैली है। हम लोग सोचते थे दादा के आने तक आम हड़ताल न हो।

मगर देखता हूँ दो चार महीने भी मुश्किल से बीतते हैं। अब तक जब जब हड़ताल का मौका आया है उन्हीं के सामने आया है। उनके बिना हमारी कुछ करने की हिम्मत नहीं पड़ती। मगर मिलमालिकों का यही रवैया रहा तो मजबूरन कुछ करना होगा। लगता है जैसे मालिकों के अब मालिक न बने रहने के दिन आ रहे हैं।"

मोहन ने कहा—"एक बात आप सोच लीजियेगा। पहले सब पेशों के मजदूरों को आर्थिक प्रश्नों पर संगठित करना है। तभी उनके संगठित मोर्चे के हाथ में राजनैतिक शक्ति आवेगी। आप लोगों के आने के पहले तारा पहले राजनैतिक चेतना की बात करती थीं—फिर आर्थिक माँग की। यह उल्टा होगा। जिसके हाथ में आर्थिक साधन हैं वही राजनैतिक शक्ति का मालिक होगा।"

शफात ने कहा—"आपका मतलब क्या है?"

"मेरा मतलब यह है कि मजदूरों का संगठन पूँजीपतियों के अखाड़े में नहीं होगा। आपकी आम हड़ताल एक लम्बे संघर्ष का रूप लेगी और महीनों चलेगी। कांग्रेस पर कब्जा रखने वाली शक्तियों के हितों और मजदूरों के हितों में विरोध है—यह भी न भूलिये।"

"मगर दादा कांग्रेस के प्रमुख नेता हैं। मजदूरसभा भी उनकी 'लीडरशिप' में चलती है।"

"उनकी बात छोड़िये। मैं सिद्धान्त की बात कर रहा हूँ। दो चार तपे हुए आदमी हैं जिनकी बात दूसरी है। अभी देखते चलिये। मैंने सुना है मालिकों ने फिर मजदूरों को धमकाना शुरू कर दिया है कि वे हमारी क्लासों में न आवें। उनका कहना है वहाँ दिन दहाड़े 'म्यूटिनी' सिखाई जाती है।"

तारा ने कहा—"अब चलें न।"

"जल्दी क्या है। हम लोग खाना खा लें।"

"अब आज्ञा दीजिये"—मोहन ने अनुरोधपूर्वक कहा—"मैं गाँव चला गया था—आज ही लौटा हूँ! तीन चार

दिन से पढ़ना लिखना नहीं हुआ। रात में दो तीन घन्टे पढ़ूँगा—तारा चाहें तो रुकें।"

खन्ना ने कहा—"तारा के रुकने की जरूरत क्या है। तुम्हारे साथ चली जाय। नहीं तो फिर गायब हो जायगी?"

मोहन और तारा बाहर निकले—पैदल घर की ओर चल पड़े। रास्ते में तारा ने कहा—"आप से एक बात जाननी है। दादा अक्सर कहा करते हैं—भारतीय साम्यवाद रूसी साम्यवाद से भिन्न होगा। सम्पत्ति के विभाजन और राष्ट्रीयकरण में तो वह दृढ़ रहेगा क्योंकि यही उसकी शक्ति है—अपनापन है। इस मार्ग से डिगना—समझौता करना उसके लिये पतन और आत्मसंहार होगा। पर इसके अतिरिक्त उसमें परिवर्तन होंगे। उस पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव पड़ेगा। यहीं पर दोनों वादों का समन्वय होगा। वे तो यह भी कहते हैं—वह अधिक आध्यात्मिक हो जायगा। मुझे इस संस्कृति के प्रभाव में खतरा दिखता है। कहीं इसका तात्पर्य यह तो नहीं है कि स्त्रियों की दशा जैसी है वैसी बनी रहेगी। वे इसी प्रकार दोहित और शोषित रहेंगी। आचार और नैतिकता का यही थोथा रूप क्या चलता चलेगा? अपनी सृजन शक्ति को वह स्वाभाविक मार्ग देकर अपने जीवन के आनन्द के स्रोतको क्या सङ्कट का कारण बनने से नहीं बचा सकेंगी? दूसरे शब्दों में नैतिक धारणायें क्या ज्यों की त्यों रहेंगी? वे बदलेंगी नहीं?"

"मैं तुम्हें अपनी बात ही बता सकूँगा। मैं ने इस प्रश्न पर अभी objectively सोचा भी नहीं। नर और नारी का जो चिरन्तन सम्बन्ध है वह मुझे सर्वयुगीन और अपरिवर्तनशील लगता है। स्त्री पुरुष को प्यार करेगी—पुरुष स्त्री को देखकर रीझेगा। पर इतना जरूर है कि स्वतन्त्रता के नाम पर लैङ्गिक उच्छृङ्खलता को हमारे देश में प्रश्रय न मिल सकेगा। मिलना भी नहीं चाहिये। पूँजीवादी सभ्यता में—इस महाजनी संस्कृति में—औरत केवल एक 'बायोलाजिकल' आवश्यकता बनकर रह गई है। पुरुष के लिये वह केवल 'सेक्सु-

अल 'सन्तोष की वाहक बच्चा जनने और घर का काम देखने की एक बेजान मशीनमात्र रह गई है। साम्यवादी व्यवस्था में वह साथिन बनेगी। आज प्रेमिका और पत्नी ये जो दो अलग अलग संज्ञायें हैं उस समय नहीं रहेंगी। मुझे हिन्दी के एक वैष्णव उपन्यासकार का कथन याद आता है—पत्नी तो नाली है जिसमें अपना सारा मल और कलुष विसर्जित किया जा सकता है। इसके विपरीत प्रेमिका (क्योंकि वह प्राप्त नहीं है) पूजा की पात्री है। मैं तुम्हें बता दूँ उस लेखक की इस भावना के मूल में पूँजीवादी विकृति ही काम कर रही है। साम्यवाद औरत और मर्द को बराबरी का दर्जा देता है। साम्यवाद नारीत्व का पुजारी है। वह मानवमात्र की समता का पुजारी है। फिर नारी तो वह है जिसके लिये कवि ने कहा है—

कृति के प्रथम दिवस में जब नर ने नारी को पहचाना
तब मानव ने जग में अपने से भी कुछ पावन माना

मैं व्यक्तिगत रूप से नारी की सहयोग और विद्रोह दोनों भावनाओं का पुजारी हूँ। कौन उसे अब बन्धन में रक्खेगा? वह स्वयं नवयुग की पुकार सुनकर आगे आगे क्रान्ति की अगवानी के लिये बढ़ी है। तुम्हें ऐसी आशंका क्यों हुई? क्यों यह प्रश्न तुमने उठाया?"

"योंही। संस्कृति का नाम सुनते ही मेरे सामने मुट्ठी भर लोगों की संस्कृति का रूप आ जाता है। तभी उसे एक अँगरेज लेखक ने minority culture कहा है। आज हमारी संस्कृति क्या है? बड़े बड़े जमीदारों, पूँजीपतियों, सामन्तशाहों और समाज के उच्च स्तर के नौकरी पेशा लोगों की चीज ही तो वह रही है। उसमें नारी का रूप और चाहे जो हो वाँछनीय और शिव नहीं है। मैं देखती हूँ नारी-स्वतन्त्रता और नारी-अधिकारों का विरोध वही करते हैं जो पूँजी-वादी व्यवस्था के ठेकेदार हैं—जो जानते हैं नारी के स्वतन्त्र होते ही उसकी सन्तान की अगली पीढ़ी ऐसी तेजस्विता—ऐसा विद्रोह लेकर आवेगी जो उनके सारे स्वार्थों को तहस नहस कर देगा। मुझे लगता है

जैसे संस्कृति का नाम लेकर—उसकी आड़ में हमारे बन्धनों और हमारी दासतात्मक परिस्थितियों को अक्षुण्ण रखने का प्रयत्न किया जा रहा है।

"मैं जानना चाहूँगा नारी की स्वतन्त्रता से तुम्हारा मतलब क्या है। जैसे तुम्हें संस्कृति से डर लगने लगता है वैसे ही मुझे तुम्हारे इस टुकड़े से आशंका होती है।"

"नारी-स्वतन्त्रता से मेरा मतलब है नारी के स्वतन्त्र अस्तित्व और व्यक्तित्व की मान्यता। उसकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति की सुरक्षित मर्यादा। उसे आत्मनिर्णय का अधिकार। साथ ही साथ उसके प्रति एक उदार, आदरपूर्ण, शुचितामय दृष्टिकोण जो अधिक स्वस्थ्य, संयत और मानवीय होगा। उसे केवल विलास और सौन्दर्य की गुड़िया न समझकर एक संवेदनशील आत्मा का दरजा दिया जाय। साथ ही एक पुरुष को लेकर वह जीवन बिताने के लिये भी बाध्य न की जाय। विशेष कारणों और विशेष स्थितियों में वह उससे सम्बन्ध-विच्छेद भी कर सके। विधवा कहकर उसे जीवन भर के लिये निष्प्रयोजन, अनुर्वर और बाँझ न बना दिया जाय। अपनी दुर्दमनीय सृजनशक्ति को वासना के अंगारों पर सेंक सेंककर झुलसाते रहने के लिये उसे बाध्य न किया जाय। मन से किसी एक की रहते हुए भी रोटियों और केवल रोटियों के लिए उसे दूसरे का बनने पर मजबूर न किया जाय। जीवन में एक आध बार तन की भूख जागने पर—पैर के फिसल जाने पर—उसे सदैव के लिये कलंकिनी और त्याज्य समझकर कलुष का केन्द्र न मान लिया जाय। उसे दानवी और देवी न समझ कर मानवी—बूँद बूँद दर्द इकट्ठा करके अपने सकरुण और सुकोमल व्यक्तित्व का निर्माण करनेवाली मानवी समझा जाय।

मोहन ने कहा—"मैं तुम्हारी प्रत्येक बात से सहमत हूँ। ये सारे सुख—सारी सुविधायें तुम्हें साम्यवादी समाज व्यवस्था में मिलेंगी। एक बात मैं तुम्हें बता दूँ। न किसी पुरुष को आज तक पूर्ण स्त्री मिली है और न किसी स्त्री को पूर्ण पुरुष। जीवन में मनुष्य को—

स्त्री को परिस्थितियों के अनुसार कुछ ढलना भी पड़ता है। यदि नारी इस सत्य को जान लेगी और एकनिष्ठ होकर समर्पित होने का मूल्य समझ लेगी तो उसे जीवन का सम्पूर्ण सौख्य मिल जायगा। रह गई आर्थिक स्वाधीनता की बात—उसके लिये साम्यवादी व्यवस्था के अतिरिक्त दूसरा चारा नहीं है। अन्य कोई भी व्यवस्था नारी की आर्थिक दीनता को कायम रक्खेगी। तुमको यह मालूम ही होगा कि रूस में साम्यवाद की स्थापना के बाद से ही वेश्या-प्रथा का निर्मूलन हो गया है। मैं समझता हूँ यदि साम्यवाद और कुछ न करके केवल मानवता का इतना बड़ा कलंक धो देता है तो उसका सारा अस्तित्व—उसके लिये सारी कुरबानी और सारा संघर्ष सार्थक है।"

मकान आगया। दोनों जाकर कमरे में बैठ गये। तारा ने कहा—"जो समाज-व्यवस्था मेरी इच्छा के प्रतिकूल मुझे एक खास पुरुष के साथ रहने के लिये और जीवन बिताने के लिये विवश करती है उस व्यवस्था का—उस नैतिकता का मेरे निकट क्या मूल्य है? यह तो मेरे व्यक्तित्व का दमन है—मेरी सत्ता का संहार है—मेरी आत्मा की अस्वीकृति है। मैं ऐसी व्यवस्था को नष्ट करने में अपना सारा बल लगाऊँगी।"

मोहन ने कहा—तुम्हारी यह बात व्यक्तिवादियों की सी है। उनके यहाँ यह तर्क चलता है कि व्यक्ति का सुख-दुख समाज से बड़ा है और उसके लेखक-उसकी कला-उसके विचारक सदैव समाज के प्रति व्यक्ति का विद्रोह चित्रित करके ही रह जाते हैं। वे यह नहीं जानते कि व्यक्ति से समाज बड़ा है और व्यक्ति का मरण समाज के जीवन के लिये कभी कभी अभीष्ट होता है। समाज के ऊपर बैठकर अक्सर तुम उसे दबा भले दो—बदल नहीं सकतीं। उसके फलने फूलने का एक ही उपाय है—तुम अपने को समाज की जड़ों में सींच दो। अज्ञात रह कर भी सच्ची बनो। समाज की मान्यतायें व्यक्ति को ऊँचा उठाती हैं और व्यक्ति के बलिदान पर समाज की नींव ढलती है। व्यक्तिवाद को भूल जाओ तारा! तुम मार्क्सवादी हो तुम्हें तो समाज के हित में सोचना

सीखना होगा। तुम्हें सामाजिक जीवन जीना होगा। जब तुम्हारी स्टेट स्थापित होगी तब तुम्हें उसके लिये अपने बच्चे, अपना पति और अपना सब कुछ देना होगा। अपने क्षुद्र अहं के ऊपर उठकर समष्टि भी ज्वाला में अपने को होमना होगा।"

"लेकिन जो सामाजिक सत्ता मुझे मेरे तन से तौलेगी—जो सामाजिक धारणा या मान्यता मेरी उन वासनात्मक चेष्टाओं को लेकर ही मेरे चरित्र का मूल्यांकन करेगी—जिनका तनिक भी प्रभाव मेरे सतीत्व पर नहीं पड़ा—उसे मैं कैसे मान लूँगी—कैसे उसके सामने सिर झुका सकूँगी? किसके जीवन में ऐसे वैसे क्षण नहीं आते? उस स्थिति में किसी के तात्कालिक कृत्य को लेकर उसे जीवन भर के लिये वर्जित करार दे देना आपके ही समाज में है। अपनी एक सहेली का केस आपको बताऊँ। वह विवाहित थी। मेरे साथ पढ़ती थी। उसका प्रेम यहीं के एक सार्वजनिक कार्यकर्ता से हो गया। एक बार—केवल एक बार दोनों का शारीरिक सम्बन्ध हुआ। इसके बाद मेरी सखी को बड़ी ग्लानि हुई। उसने उस व्यक्ति से मिलना-जुलना—बात करना तक छोड़ दिया। पर वह अपने पति से यह नहीं छिपा सकी। रोते रोते एक दिन उसने उससे सब कह दिया। मैं आपसे क्या बताऊँ—उस कमीने ने उसके साथ कैसा बर्ताव किया—उसने उसे सदा के लिये त्याग दिया। आज छः वर्षों से वह अपने पिता के घर पड़ी है। आप की बातों से लगता है जैसे आप शासन में ही क्रान्ति चाहते हैं। समाज-व्यवस्था के बन्धनों की जकड़न आपको नहीं खलती। पर उसमें नारी के अवरुद्ध प्राण किस तरह छटपटाते हैं यह क्या आपने जाना? और बताऊँ दूसरा केस आपको—पर जाने दीजिये। बैठकर इस उलझन से कोई राह सोच निकालिये।"

मोहन को लगा—यह परिपूर्ण सुन्दरी नारी विद्रोह से ऐंठी जा रही है। अग्नि की सिन्दूरी लपट बनकर जैसे वह मोहन के भीतर समा जाना चाहती है। मोहन ने कुछ अप्रतिभ होकर कहा—"मैं आर्थिक दुर्व्यवस्था को ही सारी विकृतियों का मूल मानता हूँ। साथ ही इतना

और जानता हूँ कि वासना नश्वर है—मुरझा जाती है—ठीक माला के फूलों की तरह। लेकिन प्रेम तन्तु अन्त तक जीवन की स्थिति बनाये रखता है। जो प्रेम दैहिक लालसाओं की पूर्ति तक सीमित रह गया वह मर्म में नहीं पैठा। तुम्हारी सहेली के पति को उससे प्रेम नहीं था। वरना वह आँख मूँदकर उसका यह पातक निगल जाता। यदि अपने पति का भीतरी बल उसके द्वारा तिरस्कृत होने पर भी तुम्हारी सखी को पिछले छः वर्षों से बाँधे है—थामे है—और वह अब भी उसके लिये अपने प्राणों में गरमी का अनुभव करती है तो वह पापिनी नहीं। संसार में निर्दोष कौन है? यहाँ पर मेरा तुम्हारा कुछ मतभेद रहेगा तारा! मैं स्वभाव से आदर्शवादी और भावप्रवण हूँ। प्रेम के बिना जीवन असार लगता है। इस प्रेम का मूलाधार है उत्सर्ग। पाना नहीं देना—प्रेय नहीं श्रेय। जितना अधिक दिया जाय उतना अधिक आत्मउल्लास का ज्वलन्त रस बनता है।

## [ १८ ]

ममता के विवाह के दिन निकट आते जा रहे थे। पूस बीत चला। पं० देवदत्त के उत्साह का छोर नहीं। भीतर ममता की माँ ने भी सब तैयारी कर ली। केवल ममता को उत्साह नहीं। मोहन के जाने के बाद से उसने इस सम्बन्ध में अपने मुँह से एक शब्द नहीं निकाला। लड़की का ऐसा सम्पूर्ण समर्पण देखकर माता-पिता विशेषकर पिता हैरान थे। न ज्यादा बोलती थी—न अधिक कमरे से बाहर निकलती थी। पढ़ना लिखना भी छूट गया था और इस समस्त आमोद-प्रमोद—विवाह की रंगीन तैयारियों और वसंत ऋतु की उन्मद मधुरिमा के बीच उसे भयंकर स्वादहीनता मिलती थी। जैसे दिल में एक आग लगी हो। वह अकेली है—निपट अकेली—एकदम संगीहीन—निर्वासित और सारे संसार द्वारा परित्यक्त। विचित्र आतंकोत्पादक मानसिक क्षोभ उसे दिन रात खाये डालता है।

समस्त देह में जैसे आच्छेदक विक्षुब्धता व्याप्त हो गयी है। क्या किसी का गला घोंटने में, छाती में छूरियाँ भोंकने में उसे इससे अधिक यन्त्रणा मिलती होगी ?

ममता को लगता है जैसे आज न किसी को वह समझ सकती है और न अपने को समझा सकती है। अपनी अन्तश्चेतना को वह प्रतिक्षण दबाना चाहती है—पीस डालना चाहती है परन्तु पीस नहीं पाती। भीतर के आग्नेय उद्गारों से उसे कैसे मुक्ति मिले ? यह जलन है विद्रोह की—यह विजनता है जीवन का सबसे बड़ा और प्यारा सपना टूट जाने की—यह आक्रोश है समस्त सृष्टिपर—संसार की समस्त मिठास पर—स्वयं अपने पर—अपने देवता पर और अपने अणु अणु में उबलती पागल चेतना पर। क्या वह इतनी नगण्य और उपेक्षणीय है—क्यों उसे स्वीकार नहीं किया गया ? क्या वह उनके पैरों की बेड़ी बन कर रहती ! क्या उनके विकास के सारे श्रोत रोककर वह शैल-माला सी खड़ी हो जाती ? उसकी समझ में जैसे नहीं आ रहा था यह क्या होने वाला है। मन दिन पर दिन खिन्न—शरीर क्षीण और मस्तिष्क दुर्बल होता जाता है। हृदय के अगम अंधकार में जैसे समस्त विश्व की कालिमा आकर गाढ़ी हो गई है ? जीवन के किन विचित्र रूपों और अपरिचित ध्वनियों के बीच वह अपने को पा रही है ? आत्मा के किस अशान्त गह्वर में वह अधिकाधिक धँसती जाती है ? हाहाकार का कैसा काला पट जीवन के सर्वाङ्ग को प्रतिक्षण घेरे रहता है ?

बेकली से ममता दिन रात छटपटाती रहती थी। उसका रोम रोम जीवित स्फुलिंग बन जाता था। फिर इस उत्कट आत्मदाह की—इस मर्मन्तुद व्याकुलता की—इस तीक्ष्ण, कठोर और निर्मम वेदना की प्रतिक्रिया भी होती थी। वह पत्थर जैसी जड़ और आकाश जैसी शून्य हो जाती थी। विवाह के तीनचार दिन रह गये। घर में मेहमानों की भीड़ हो चली। अधिक धूमधाम और प्रदर्शन न होने पर भी एक लम्बी बारात के स्वागत-सत्कार के योग्य पूरा प्रबन्ध था। जिस

दिन बारात आई ममता दिन भर कोठरी से बाहर नहीं निकली। खाया पिया भी नहीं। जिनकी याद अंगार की तरह उसके भीतर जल रही है वे भी क्या उसीकी भाँति जलते होंगे?

रात को ब्याह था। अगवानी वगैरह हो जाने के बाद मंडप में वर आ गया। मोहन की माँ सुबह से सीता और बच्चों के साथ वहीं थी। मंडप आने के लिये वे ममता को बुलाने गईं। ममता अँधेरी कोठरी में जमीन पर बिना कुछ बिछाये पड़ी थी। मोहन की माँ ने पुकारा—"ममता! भीतर हो क्या बेटी?"

"हाँ चाची"—ममता ने पड़े पड़े उत्तर दिया।

"यहाँ अँधेरे में क्यों पड़ी हो। लालटेन जलाकर रख ली होती। उठो—कपड़े बदलो। मंडप में चलना है।"

बिना कुछ बोले ममता पीली साड़ी पहनकर और अन्य छोटी-मोटी रस्में यन्त्रवत पूरी करके मंडप के नीचे वर के बगल में पड़े पीढ़े पर आकर बैठ गई।

बाहर बाजे बज रहे थे—गैस की रोशनी से आँगन जगमगा रहा था—पीछे परदे की आड़ में वरपक्ष के लोग बैठे थे और सामने दालान में स्त्रियाँ मंगल गीत गा रही थीं—नीम के फूलों का प्रखर सौरभ लिये बसन्ती हवा चल रही थी—और ममता वर के बगल में पीढ़े पर बैठी अपना ब्याह करा रही थी।

चार बजे ब्याह समाप्त हुआ। अन्य रस्में सुबह सात बजे तक चलती रहीं। ममता बीच में दो एक बार कुछ घबड़ाई और अवश भी हो चली पर दृढ़ता से उसने अपने को सँभाला। उसके वर ने बीसों बार कनखियों से उसे देखने की चेष्टा की पर ममता ने सिर ऊपर नहां उठाया। प्रातःकाल वर के जनवासे चले जाने पर जब वह लौटकर अपनी कोठरी में आई तो पीछे पीछे मोहन की माँ एक जड़ाऊ डिब्बा लिये पहुँची। ममता के नेत्र आलस्य और मनोवेदना से भारी हो रहे थे। बोली—"अब क्या बाकी रह गया चाची?"

"कुछ नहीं बेटी! ये चढ़ाव के गहने हैं। लाओ तुम्हें पहना दूँ।"

"मैं नहीं पहनूँगी !"

"सगुन है बिटिया ! ये तो पहनने ही होंगे।"

पास में सीता खड़ी थी। बोली—"देखो तो दीदी ! कैसे बढ़िया और चमकदार हैं। सब अँगरेजी डिजाइन के हैं। जीजाजी कितने हौंसले से लाये हैं। तुम कहती हो पहनोगी नहीं।"

ममता ने दृढ़ता से कहा--एक बार कह चुकी चाची—मुझे तङ्ग न करो। मोहन की माँ को ममता से कभी कोई बात दुबारा कहने की आवश्यकता नहीं पड़ी थी। उसके कण्ठ की दृढ़ता से वे परिचित थीं। चुपचाप डिब्बा लिए चल दीं।

सीता ने पूँछा—"दीदी ! भैया क्या तुम्हारे ब्याह में आयेंगे।"

ममता ने रुखाई से कहा—"मैं नहीं जानती। तुमको यह बात जाननी चाहिये—तुम उलटा मुझसे पूँछ रही हो। अब जाओ सीता ! मैं सोऊँगी।"

सामने से ममता की माँ आ रही थीं। हाथ में वही डिब्बा था। बोलीं—"क्योंरी ! तू चढ़ाव का गहना नहीं पहनेगी। ऐसा भी कभी आज तक सुना गया है ? मोहन की माँ को तूने लौटा दिया। तू ही दुनिया में एक नये ख्याल की लड़की है। वाह रे पढ़ाई लिखाई !"

ममता ने आँखें तानकर शान्त स्थिर कंठ से कहा—"तीन दिन—केवल तीन दिन—मैं यहाँ और हूँ। इतना कहा सुना—किया धरा—क्या अब भी तुम्हारा जी नहीं भरा। क्यों मुझे सता रही हो ? जाओ और आज मुझे न रुलाओ। मैंने एक बार कह दिया। नहीं पहनूँगी—नहीं पहनूँगी। मैं अपने पास भी नहीं रक्खूँगी—इन्हें वापस कर दो"—कहकर ममता दूसरी ओर मुँह करके लेट गई। नैश-जागरण की क्लान्ति और मानसिक घात-प्रतिघातों से उसका शरीर फटा जा रहा था।

माँ आकर सिरहाने बैठ गई और सिर पर हाथ फेरते हुए बोली—

"पहन लो बेटी—ऐसा नहीं कहते और करते। वे लोग सुनेंगे तो अपना अपमान समझेंगे। तेरे बापू सुनेंगे उन्हें भी कष्ट होगा। गाँव के आदमी सुनेंगे तो जगहँसाई होगी। दो चार दिन में उतार डालना—अभी पहने रहो।"

ममता ने मुँह फेर लिया और बोली—"मैं नहीं छुऊँगी। इन्हें वापस कर दो। मेरे पास से ले जाओ। मुझे एकान्त में से रहने दो। मेरी तबियत खराब हो गई तो फिट आ जायगा।"

देर तक अनुनय करने के बाद माँ उठकर चली आई। ममता अकेली पड़ी रह गई। सीता पहले ही जा चुकी थी।

ममता ने अपने बाक्स की चाभी नहीं दी। एक दूसरे बाक्स में जेवर का डिब्बा रख दिया गया। वह बाक्स सामान के साथ कर दिया गया। बारात में जेवर का डिब्बा कैसे वापस जाता।

गाँव के लोगों ने मिलकर ऐसा सुन्दर प्रबन्ध किया कि किसी को कोई कष्ट नहीं होने पाया। एक दिन के लिये मोहन के पिता भी आ गये थे। पं० देवदत्त इधर उधर प्रबन्ध करते घूमते थे। कन्या के हृदय पर कैसा भीषण संताप गुजर रहा है यह सोचने के लिये उन्हें अवकाश नहीं था।

चौथे दिन बारात विदा हो गई। विदा के समय लड़कियाँ रोती हैं—धाड़ मारकर रोती हैं—बहुत अधीर हो जाती हैं। उनके गले बैठ जाते हैं—आँखें सूज आती हैं—चेष्टायें विकृत हो जाती हैं। उनके रुदन में माता-पिता का वियोग—एक बिलकुल अपरिचित स्थान में जाने का भय और आशंका रहती है। कुछ प्रदर्शन और लोकलाज का ख्याल रहता है। पर ममता की आँखों से एक आँसू न निकला। सबसे गले मिलकर पत्थर जैसा अभिव्यक्तिहीन चेहरा लेकर वह पालकी पर बैठ गई। केवल एक बार बीच में वह किसी से कुछ बोली थी तब उसके कंठ का स्वर सुनकर वहाँ सब लोग सिहर उठे थे। बस।

शाम को ममता अपने स्वामी के घर पहुँच गई।

× × ×

प्रथम मिलन की रात को ममता जिस कमरे में ले जाकर बैठाई गयी वह यथेष्ठ रूप से सजा था। शय्या फूलों से रची गई थी। ममता चारपाई पर जाकर बैठ गई। लगभग आध घंटे के बाद उसके पति ने प्रवेश किया। पहली बार ममता ने नीचे से नजर उठाकर उन्हें देखा। साधारण रूप से स्वस्थ्य, सुन्दर और सभ्य नवयुवक जान पड़े। ममता को इसके पहले उन्होंने नहीं देखा था। मंडप और रास्ते में चेष्टा करने पर एक बार भी उसकी छवि वे न लख पाये थे। कमरे में प्रवेश करते ही ममता का पार्वती के समान देवोपम सौंदर्य्य देखकर—जिसपर आन्तरिक व्यथा की एक म्लान छाया और भी सुन्दर लगती थी—वे भावविस्मित और विह्वल-चकित हो गये। विस्फारित नेत्रों से आठ दस मिनट तक ममता को देखते रहने के बाद उन्होंने दरवाजा अन्दर से बन्द किया और पास आकर बैठ गये। ममता के होठों पर हँसी की एक बासी रेखा थी। वह नीची दृष्टि किए सामने की दीवार ताक रही थी।

ममता एक धुली धोती पहने थी। शरीर पर कोई गहना नहीं था। घर में दूर के नाते की एक विधवा बुआ और उनकी विधवा बहू थी। इनके अतिरिक्त दो नौकरानियाँ थीं। बारात में जाने वालों में सम्बन्धियों की संख्या नहीं के बराबर थी। जो थे वे अकेले ही आये थे और ऊपर ही ऊपर लौट गये थे। लगभग सभी कानपूर के व्यापारी-वर्ग के लोग थे—जो आत्मीयता के कारण कम पर व्यवहार के कारण अधिक—शरीक हुए थे। ममता को पहले ही दिन घर में जो शान्ति मिली उसकी उसने आशा न की थी। घर में कोई होहल्ला—भीड़भाड़-यहाँ तक कि किसी किस्म का प्रदर्शन भी न था। नववधू का जैसा स्वागत-सत्कार होना चाहिए वह सब हुआ था—बुआ और उनकी विधवा बहू ने बारबार ममता का शृङ्गार करने कराने का यत्न किया था। दो दो नौकरानियाँ, नाइनें मौजूद थीं। पर ममता की हठ के आगे सब नत थे। केवल एक धुली सफेद धोती निकालकर

उसने शाम को पहनी थी—सफर में धोती गन्दी हो गयी थी। शरीर में एक भी आभूषण नहीं। फिर भी इस अलंकारहीना—श्वेतवस्त्रा सौंदर्य्य की देवी के असाधारण रूप को देखकर श्यामाचरण (यही पति का नाम था) दंग रह गये। ममता का सौम्य उदास शृङ्गार देखकर वे मर्माहत भी हुए! उसका सिर उठाते हुए बोले—"तुमने एक भी गहना नहीं पहना—साड़ी नहीं बदली। आज तुम्हारी सोहागरात है। क्या बात है? मुझसे कुछ नाराज हो? क्या मैंने कोई अपराध किया है?"

"आपके जेवर सामने बाक्स में रक्खे हैं। रंगीन कपड़े से मुझे हमेशा नफरत रही है। सफेद धोती—ब्लाउज मैं पहना करती हूँ—वह भी खद्दर के। वही पहने हूँ। उस बाक्स की चाभी मेरे रूमाल में बँधी है। उसमें क्या क्या है—मैं नहीं जानती। अच्छा हो आप अपने जेवर उसमें से निकालकर सेफ में रख लें।"

श्यामाचरण दंग रह गये। बेचारे एन्ट्रेंस तक पढ़े मामूली—बनिया टाइप के व्यक्ति थे। संसार में कोई स्त्री आभूषणों को यों विरक्ति से ठुकरा सकती है यह उनके लिये अकल्पनीय था। अपनी कुछ अवमानना उन्हें इसमें जान पड़ी। बोले—"तुम्हारे गाँव में किसी ने ऐसे जेवर देखे न होंगे। लोगों की आँख खुल गई होंगी।"

"मैंने कभी नहीं देखे—न देखना ही चाहती हूँ। मेरे गाँववालों की बात आप न करें। पचास हजार रुपया 'इनकमटैक्स' देनेवाले कम से कम एक दरजन व्यक्ति वहाँ हैं।"

"कुबेरपुरी है आपका गाँव"—श्यामाचरण ने व्यंग से कहा।

"नहीं—कुबेरपुरी नहीं है। कुबेरपुरी तो अमेरिका है। मैं सिर्फ इतना कहती हूँ वह अनाथालय नहीं है जैसा आपकी बातचीत से जान पड़ा—कानपूर जैसा धनी भले न हो। मगर व्यर्थ की बातें हैं यह सब।"

श्यामाचरण ने ममता की धोती का किनारा हाथ में लेकर ध्यान से देखते हुए कहा—"तुम खद्दर ही पहनती हो। दूसरा कपड़ा

नहीं। कॉंग्रेस में काम भी करती होगी।"

"अभी तक तो नहीं किया। आपकी आज्ञा होगी तो अब करूँगी। अभी तक पिता के संरक्षण में थी—अब आपकी गुलामी में आई हूँ।"

शेअर मार्केट का दलाल यह व्यंग न सह सका। बोला—"मैं तुम्हें कॉंग्रेस में काम करने की आज्ञा दूँगा! छिः छिः! जहाँ दिन दहाड़े औरतों की इज्जत भर जाती है—जहाँ औरतों को देखते ही लोगों के मुँह में पानी भर आता है। मैं औरतों के बाहर निकलने का विरोधी हूँ। तुम्हें भले घर की बहू बेटी की तरह परदे में रहना होगा। औरतों को ज्यादा आजादी देना मैं भूल समझता हूँ—उनके लिए घर है। बाहर की दुनिया के लिए मर्द काफी हैं। तुम खद्दर पहनती हो—पहनो। मुझे एतराज नहीं है। मैं तुम्हारे लिए वही ला दूँगा।"

जेब से सिगरेट निकालकर सुलगाते हुए श्यामाचरण ने ममता को सतृष्ण नेत्रों से एक बार देखकर फिर कहा—"तुम इतनी सुन्दर हो इसका मुझे पता न था। शास्त्रों में लिखा है—रूपवती भार्या शत्रु होती है। पर मैं देखता हूँ तुम मेरे लिये क्या—किसी के लिए शत्रु नहीं हो सकतीं। तुम तो रूप की खान हो—खान" कहते कहते उसने जोर से ममता को आलिंगन पाश में कसकर चूम लिया।

ममता को लगा जैसे किसी ने जलता हुआ अंगारा उसके गाल पर रख दिया। हार्दिक घृणा से उसका हृदय अभिभूत हो गया। पति के बलिष्ठ हाथों से किसी प्रकार छूटकर वह दूर खिसक गई और बोली—"मेरी तबियत ठीक नहीं है। मुझे यह सब बड़ा खराब लगता है। आप सोइये—मैं जाकर दूसरे कमरे में सोती हूँ।"

"नहीं नहीं। तुम नाराज न हो। मैं तुम्हारे हुक्म के बिना अब कुछ न करूँगा।"

ममता ने कहा—"मेरा जी भारी है। सिर दर्द कर रहा है। मुझे जाकर सोना चाहिए।"

"दस भी तो नहीं बजा। तुम जाकर सो जाना मगर मेरे पास कुछ देर और बैठो। तुम्हें मकान पसंद आया? पिछले साल बनवाया है। रामजी की कृपा से मेरा काम बहुत अच्छा चल रहा है। पूरा मकान तो तुम देख चुकी होगी?"

"जी नहीं, अभी मैंने नहीं देखा। देख लूँगी—जल्दी क्या है! अब तो रोज देखना है।"

श्यामाचरण चारपाई पर लेट गया। पाँच मिनट तक ममता चुपचाप बैठी रही—फिर उठकर बगल के कमरे में चली गई। बुआ और विधवा जेठानी ने दूसरे कमरे से यह देखा। दिन में ममता का तेजस्वी स्वभाव देखकर वे अप्रतिभ हो चुकी थीं। चुपचाप लेटी रहीं। ममता ने कमरे में एक किनारे पड़ी चारपाई पर कोने में रक्खी दरी बिछा ली और चुपचाप बत्ती बुझाकर लेट गई। अभिमान और द्रोह से उसकी छाती भरी आ रही थी। वह जी भरकर रो लेना चाहती थी, पर आँसू नहीं निकलते थे। लगता था भीतर का सब कुछ जलकर भस्म हो चुका है। तरह तरह की चिन्तनाओं से बेचैन हो करवटें बदलती रही। जीवन कहाँ से शुरू होकर बहता बहता आज कहाँ आ पहुँचा है! इस नाविकविहीन नौका का किनारा कैसी बीहड़ जगह पर आकर हुआ है!

श्यामाचरण को अपनी जल्दबाजी और अधैर्य्य पर रह रहकर क्रोध आ रहा था। ममता का रूप उसे व्याकुल बना देता था। ऐसी सुन्दरी स्त्री उसने अपने जीवन में कम देखी थीं। एक ओर जहाँ अपने भाग्य पर रह रहकर उसे गर्व और उल्लास होता था वहीं दूसरी ओर ममता का उद्यत दर्प और बातचीत करने का ढंग उसे दुर्निवार रोष में जला रहा था। उसने पं० देवदत्त के मुँह से और गाँव के दो चार व्यापारियों से सुना था—लड़की सुशिक्षिता और 'फारवर्ड' है। पर देहात में सुशिक्षा और 'फारवर्ड' होने की जो सीमा उसने सोच रक्खी थी उससे ममता का कहीं मेल न था। पं० देवदत्त की आर्थिक अवस्था से वह अवगत था।

अपने स्वार्जित धन पर उसे अभिमान था—विश्वास था ममता उसके यहाँ आकर उसके घर की स्वामिनी बनकर—उसके चरणों की दासी हो जायगी। पुरुष स्वभाव और संस्कार से अधिकारप्रिय होता है। पर ज्योंही उसे ममता पर क्रोध का लहरा आता था त्योंही उसका भुवनमोहन रूप आकर सामने खड़ा हो पथ रोक लेता था। क्या यह रूप का अभिमान है? नहीं—रूप का अभिमान ऐसा निरंकुश और अपमानकर नहीं होता।

दो घंटे तक सोने की चेष्टा करने पर भी जब वह सो न सका तो चुपचाप उठकर बाहर छत पर आया। दशमी का चाँद उस समय अपनी दूधिया चाँदनी फैलाए एकाग्र दृष्टि से बसंत की शीतल मादकता में सोई सृष्टि को देख रहा था। मीठी मीठी हवा के पुलक-संचार करने वाले झोंके आकर उसे कंपित करने लगे। सामने के कमरे में ममता है। उसके सामने यह देव-दुर्लभ सौन्दर्य्य और यौवन का उन्मत्त कर देने वाला निधि-कोष है। पर वह उसे पा नहीं सकता। यह सब तब जब ममता उसी की सम्पत्ति है थाती है—पत्नी है—नव-विवाहिता। वर्षों से वह अपने दूसरे विवाह और द्विपरिणीता पत्नी का स्वप्न देखता आया है। केवल आर्थिक निश्चिन्तता पाने के लिए उसने इतने दिनों तक स्त्री जैसी आवश्यक वस्तु की प्रतीक्षा की है—उसका अभाव सहन किया है। जब विवाह हुआ—अप्सरा सी रूपवती और यौवनवती पत्नी मिली तो यह सब कान्ड हुआ—एक क्षण के लिये भी जिसकी आशंका न थी। क्या से क्या हो गया! और इस सब का प्रतिकार कैसे होगा।

उसका जी न माना। उस अपूर्व सौन्दर्य्य को एक बार फिर देखने का लोभ वह संवरण न कर सका। क्या सो रही होगी? थकी तो है ही। शायद इसीसे सोने चली गई। धीरे से दरवाजा खोलकर वह स्विच के पास जा खड़ा हुआ—दो मिनट रुककर बत्ती जला दी। ममता जाग रही थी। दरवाजा श्यामाचरण ने बन्द कर लिया था। ममता उसे देखते ही विरक्ति से उठकर बैठ गई। कुछ

बोली नहीं। सामने कुर्सी पर श्यामाचरण बैठ गया। बिजली के स्वच्छ प्रकाश से दीप्त यौवन के उस अखण्ड ज्योतिपुञ्ज को श्यामाचरण लोलुप दृष्टि से देख रहा था। ममता सब समझ रही थी। पुरुष की आँखों में तृष्णा की जो लपट होती है उससे कौनसी नारी होश सँभालते सँभालते परिचित नहीं हो जाती? कुछ मिनट रुककर अपने स्वर को यथासंभव मीठा बनाकर श्यामाचरण ने कहा—"तुम यहाँ व्यर्थ पड़ी हो। बिस्तर ठीक नहीं है। कष्ट होगा। तुम अपने कमरे में जाकर सोओ। मैं यहाँ पड़ा रहूँगा।"

ममता ने अन्तस्तल तक पैठ जाने वाली निगाह से उसे देखते हुए कहा—"क्या आप इसीलिये इस समय आये हैं?"

श्यामाचरण को बल मिला—बोला—"आया किस लिये हूँ यह भी क्या कहना पड़ेगा? बुआ और भावज मन में क्या सोच रही होंगी? तुम्हें मेरी इज्जत का ख्याल करना चाहिए। आज हमारी सोहागरात है। आज के दिन हम एक न हो सके तो आजीवन अलग रहेंगे। सुबह यदि दूकान पर बोहनी ठीक से न हो—कोई अलसेठ लग जाय तो सारा दिन झींखते बीतता है।"

ममता फिर घृणा से जल उठी। कितना कुरूप हृदय इस व्यक्ति का है। पति-पत्नी के सम्बन्धों और जीवनव्यापारों को भी अपनी वणिकदृष्टि से देखता है। तो आज इनकी दूकान की बोहनी होगी! बोली—"आप उठते बैठते दलाली की बातें करते हैं। मुझे सुनकर बड़ी.............."

"तुम्हें अच्छी नहीं लगती तो मैं नहीं करूँगा। तुम्हारे जैसा पढ़ा लिखा तो मैं हूँ नहीं। जो पढ़ा लिखा था सब भूल गया। अब तो मुझे सिर्फ पैसा कमाना आता है। उठो चलो!"

"मैं नहीं जाऊँगी। आप जाकर सोइए—क्यों मुझे तङ्ग करते हैं?"

"मुझसे क्या अपराध हुआ है, जो तुम इतनी नाराज हो। मेरी बातचीत का ढङ्ग यही है और रहेगा। तुम जेवर नहीं

पहनना चाहतीं तो न पहनो पर मुझे इस तरह अपमानित क्यों कर रही हो?"

"मैंने आपका कोई अपमान नहीं किया। अपने जीवन में किसी का अपमान मैंने आज तक नहीं किया। आप तो मेरे पति-परमेश्वर हैं—स्वामी हैं--और न जाने क्या क्या हैं। इस लोक और परलोक के उद्धारक हैं।"

श्यामाचरण भीतर भीतर फूल उठा। अब रास्ते पर आई है। बोला—"तुम किताबी बातें करती हो। मैं तुम्हारा सेवक हूँ—दास हूँ—वादा करता हूँ वही करूँगा जो तुम कहोगी। तुम पढ़ी लिखी हो—समझदार हो—तुम्हें अधिक समझाना न पड़ेगा। मेरा काम होगा कमाना—तुम्हारा काम होगा खर्च करना।"

घूम घूमकर फिर वही आर्थिक पहलू। ममता तब से रुपए पैसे की बात सुनते सुनते परेशान हो चुकी थी। बोली—"अभी आपने कहा था रुपए पैसे की बात न करेंगे। आपने फिर वही शुरू किया। मैं कह चुकी हूँ मुझे उससे सख्त नफ़रत है। मुझे रोज पाव भर और साल में दो धोती चाहिए। घर में जैसे बुआ हैं—आपकी भावज हैं—दोनों नौकरानियाँ हैं वैसे मैं भी पड़ी रहूँगी। मुझे आपके धन की चर्चा सुनने का उत्साह नहीं?"

"तुम बार बार ऐसी बातें करके मेरा जी दुखाती हो। मेरा तुम्हारा क्या कुछ अलग है? जो मेरा है वह पहले तुम्हारा है। तुम तो अँगरेजी भी पढ़ी हो!"

"बिलकुल नहीं। रोजमर्रा के बोले जाने वाले दस बीस शब्द समझ लेती हूँ। हिन्दी भी दो तीन क्लास तक ही पढ़ी हूँ। आप ज्यादा चिंता न करें।"

"मुझे चिन्ता कैसी? विवाह में लड़की के पिता अपनी लड़की का रूप, गुण, शिक्षा बढ़ा चढ़ाकर बताते ही हैं। ज्यादा पढने लिखने की जरूरत क्या है? क्या तुम्हें नौकरी करनी है या दूकान के कागज देखने हैं? रामायण तो पढ़ी होगी तुमने?"

"कई बार पढ़ी है। आप चाहेंगे तो आपको भी पढ़कर सुनाया करूँगी।"

"जरूर सुनाना! उससे बढ़कर किताब दुनिया में नहीं है। प्रत्येक स्त्री को उसे पढ़ना चाहिए—उसकी शिक्षाओं पर चलना चाहिए। पूर्वजन्मों के असंख्य कर्मों के सुफल से तुम्हें ऐसा रूप मिला है ..........."

अपने रूप की चर्चा से ममता ऊब उठी थी। बोली—"आप बार बार मेरे रूप की चर्चा क्यों करते हैं। आप चुप रहें।"

"यह मैं नहीं कर सकूँगा। तुम्हारे रूप की प्रशंसा मुझसे कभी न पूरी होगी। मैंने एक बात तुम्हारी मान ली। मेरी यह बात तुम्हें माननी होगी।"

ममता कुछ बोली नहीं! निर्भ्रान्त पूरे खुले नेत्रों से स्वामी की ओर देखने लगी।

श्यामाचरण कहता गया—"तुम जैसी रूप की लक्ष्मी को घर लाकर लगता है मेरा जीवन सफल हो गया। विधाता ने अपने भन्डार में इतना बड़ा वैभव मेरे लिए रख छोड़ा था यह मुझे मालूम नहीं था। किसी को ज्ञात भी नहीं रहता कब उसे क्या मिलने वाला है। परमात्मा से मेरी यही पुकार है वह मुझे इस सुख को सहन करने की शक्ति दे। मेरे इस सौभाग्य पर स्वयं उन्हें ईर्षा न हो चले—यही मैं चाहता हूँ। तुम्हें पाकर मैं सब कुछ पागया।"

ममता हृदय के स्वर को पकड़ लेती थी। उसे लगा इसमें कहीं बनावट, कृत्तिमता, विद्रूप या व्यंग नहीं है। यह है सच्चे हृदय से निकली एक साधारण दुनियादार पति की सच्ची और पवित्र प्रशस्ति। पर सब होने पर भी स्वामी के साथ एक शय्या पर सोने की उसकी प्रवृत्ति किसी प्रकार न होती थी। वह यही चाहती थी किसी प्रकार वे यहाँ से चले जाँय। थोड़ी देर तक इधर उधर की बातें करके वे चले भी गए। उन्होंने अधिक विनय या आग्रह—दबाव—कुछ भी उसे अपने कमरे में ले जाने के लिए नहीं डाला।

दिन बीत रहे थे। ममता ने इतना शान्त, धीर और परिश्रमी आदमी जीवन में न देखा था। श्यामाचरण अद्भुत प्रकृति के पुरुष थे। उन्होंने कभी ममता के आचरण के विरुद्ध फिर एक शब्द नहीं निकाला। ममता की चारपाई उन्होंने अपने कमरे में डलवादी। पहली रात को उन्होंने दो चार बार जो व्यवहार किया था उसे देखते हुए उनका अब सारा व्यवहार विसदृश्य, असम्बद्ध और असंगत था—पर ममता को लगा जैसे उनका सच्चा स्वरूप यही है। दिनभर घोड़ागाड़ी के घोड़े की तरह कठोर परिश्रम करके आते और बुआ और भावज से दो चार बातें करके लेट जाते। उनके मन में क्रोध और अभिमान जो भी रहा हो पर उन्होंने कभी उसे प्रकट न किया। ममता ने देखा—खाने पहनने के सम्बन्ध में उनकी कोई रुचि नहीं है। उनके बहुत कहने सुनने पर ममता ने सेफ की चाभी अपने पास रख ली थी। रोज रात को लाकर वह नोट और रुपये ममता को दे देते। ममता बिना गिने चुपचाप उठाकर उन्हें सेफ में रख लेती।

एक दिन रात को श्यामाचरण लौटे तो हाथ में एक बड़ा बंडल था। नौकरानी ने लाकर ममता के कमरे में रख दिया। ममता के पूछने पर बोले—"तुम्हारे लिये कपड़े हैं।" ममता ने बंडल खोला। खद्दर की एक दर्जन साड़ियाँ, बहुत से सिले सिलाये ब्लाउज और ब्लाउज के कपड़े थे। ममता ने उठाकर रख दिया और बोली—"यह सब लाने की जरूरत न थी। मेरे पास अभी काफी कपड़े हैं।"

"बेकार नहीं जाँयगे। आगे काम आवेंगे। एक मित्र के साथ खद्दरभंडार चला गया था। सोचा तुम्हारे लिये लेता चलूँ।"

ममता कुछ बोली नहीं। चारपाई पर लेट गई। खाना खाकर श्यामाचरण आये और बिस्तर पर बैठ गए। ममता लेटी एक किताब पढ़ रही थी—उसे उठाकर एक ओर रख दिया। श्यामाचरण ने कहा—"तुम पढ़ती रहो। मुझे रोशनी में तनिक भी कष्ट नहीं होता।"

ममता जहाँ तक संभव था श्यामाचरण के सामने नहीं पढ़ती लिखती थी। श्यामाचरण ने कभी उसे पढ़ने लिखने के लिये मना नहीं किया था पर वह उनका स्वभाव पहली रात में ही जान गई थी। कुछ बोली नहीं—पड़ी छत की ओर देखती रही।

ममता सोचती—क्या मेरे व्यवहार से इन्हें कोई कष्ट, दुःख या पीड़ा नहीं होती? प्रथम रात का वह उद्दण्ड—पतिकी अधिकार भावना का प्रतीक—युवक कैसे एकाएक ऐसा निरीह और उदासीन स्वामी बन गया? पर ममता ने देखा था रात को उसके कमरे की बत्ती जल उठती और एकाएक नींद उचट जाने पर वह पति को अपने मुख की ओर प्यासी आँखों से निहारते पाती। वह आलस्य और अवहेलना से ग्रसित अपनी आँखें बन्दकर सो जाती। सुबह पूछने पर श्यामाचरण कहते—"उठकर बाहर गया था—बत्ती जलाई थी। पड़ा बत्ती बुझाने को सोच रहा था कि तुम्हारी आँखें खुल गईं।" पर अब तक ममता को ऐसा नहीं लगा उन्होंने उसके शरीर का—अंगों का कभी स्पर्श किया हो।

घर में खाना ममता की विधवा जेठानी बनाती थी। बुढ़िया बुआ अधिकतर चारपाई पर पड़ी रहा करती। एक न एक नौकरानी उसके पास बैठी रहती थी। दूसरी घर का काम करती थी। ममता ने एक दो बार भोजन बनाने के लिये कहा भी पर संभ्रम के कारण जेठानी ने उसे नहीं बनाने दिया। ममता के हृदय में परिवार के किसी व्यक्ति के लिये कोई प्रीति या अपनत्व न था। वह अधिक न कहकर अपने कमरे में चली आती थी। जब खाना खाने चौके में जाती तो उसे वहाँ का वातावरण विचित्र-सा लगता था। खाना अक्सर स्वादहीन और रद्दी बनता था। तरकारी में कभी नमक है तो मसाला नहीं। मसाला है तो नमक नहीं। रोटी कोई अधकची कोई अधजली। चावल कभी खड़ा तो कभी बिलकुल हलुआ। पर पति को उसने कभी कोई शिकायत करते नहीं सुना। अपनी निपट देहातिन और चंचल जेठानी को ममता क्या कहती? उसके पति ने कभी उसके

सामने अपनी भावज को एक शब्द नहीं कहा। ममता को सारा वातावरण विषाक्त और औदासीन्यपूर्ण लगता था। उसे क्रोध आता था—उसके पति ने उससे कभी भोजन बनाने के लिये क्यों नहीं कहा। चुपचाप गरदन झुकाकर जल्दी जल्दी कच्चा पक्का जो पा जाते खा लेते—फिर उल्टे सीधे कपड़े पहनकर बाजार चले जाते। अक्सर दोपहर को नहीं आते थे। रात को जब आते तब इतने थके रहते कि खाना खाकर चारपाई पर तुरंत लेट जाते। काम की दस पाँच बातों से अधिक न करते। ममता के हृदय में भी विशेष आग्रह न उठता।

दो महीने इसी प्रकार बीत गये। एक दिन शाम को चार बजे ममता खिड़की के पास खड़ी बाहर सड़क की ओर देख रही थी। लाटूश रोड पर उसका मकान था। सहसा उसे दिखा उसकी खिड़की के नीचे फुटपाथ पर मोहन भैया चले जा रहे हैं। देखते ही उल्लसित होकर उसने ऊपर से पुकारा—"भैया—भैया—भैया—भैया—मोहन भैया!"

ममता का स्वर ऊँचा था। नीचे मोहन ने सुन लिया। उस समय मजदूरसभा के दफ्तर की ओर जा रहा था। ममता ने ऊपर से हाथ उठाकर उसे ठहरने का इशारा किया और नौकरानी को बुलाकर खिड़की से दिखाते हुए बोली—"देख! मेरे मोहन भैया खड़े हैं। उन्हें बुला ला।"

नौकरानी चली गई। ममता ने जल्दी से चारपाई ठीक कर दी और दूसरी नौकरानी को नीचे से पान बनाकर दे जाने के लिये कहा। अब बैठकर अत्यन्त अधीरता से मोहन के आने की प्रतीक्षा करने लगी।

नौकरानी के पीछे मोहन आ रहा था—आधी बाहों की मोटी कमीज और स्लेटी खद्दर का पतलून पहने—चट्टियाँ फटफटाते हुए वह कमरे में घुसा। ममता ने कहा—"महरी! जाकर पान ले आओ। बैठो भैया!

मोहन ने सिर से पैर तक ममता को देखा। ठीक वैसी ही बनी

है। शादी के बाद कोई परिवर्तन नहीं हुआ। चेहरे पर एक शान्त, करुण, उदार, आर्द्र, सुकुमार कातरता खेल रही है। बैठते हुए मोहन बोला—"यही तुम्हारा मकान है। मैं बीसों बार यहाँ से निकला होऊँगा। मुझे कभी स्वप्न में यह आभास नहीं हुआ कि तुम ऊपर खड़ी मुझे देखा करती हो।"

"देखा करती तो बुलाती न! मैं क्या रोज सड़क देखा करती हूँ। औरतों को ज्यादा ताक-झाँक नहीं करनी चाहिए। आज तबियत ऊब रही थी। मन थका थका-सा था। खड़ी हो सड़क देखने लगी। इधर से तुम कहाँ जाते हो भैया!"

"कुछ काम है इधर। तुम सुखी तो हो? दुबली हो गयी हो। तुम्हारे विवाह का निमंत्रण मुझे मिला था। पर मैं आ न सका। इधर हमारे कुछ कार्यकर्ता गिरफ्तार हो गये हैं। मेरा काम बढ़ गया है। मैंने कालेज भी अब छोड़ दिया है।"

"तुमने पढ़ना छोड़ दिया भैया! यह ठीक नहीं हुआ।"

"क्या होगा पढ़ लिखकर मम्मी! संघर्ष हमारे सिर पर आ गया है। सरकार हमारे साथियों को पकड़ पकड़कर बन्द कर रही है। काम करने वालों की संख्या दिन पर दिन कम होती जाती है। ऐसी स्थिति में दूसरा उपाय न था। तारा ने कहा—तुम्हारे कालेज जाने से काम न चलेगा। हमें चौबीस घन्टे काम करना होगा। देखा जायगा—अगले साल 'ज्वाइन' कर लूँगा। सौ सवासौ रुपये का नुकसान ही तो है।"

फिर तारा का नाम। ममता भीतर ही भीतर अपने में खो गई। कुछ मिनट तक चुपचाप बैठी मोहन को देखती रही। तारा के कहने पर अब कालेज भी छोड़ा जा सकता है। पर तत्काल उसे अपने चित्त के पापी संशय पर ग्लानि हुई। इस्पात के समान दृढ़ और निष्कपट भैया के चरित्र की उज्ज्वलता पर वह अखण्ड विश्वास करती है। मोहन कमरे में लगी तस्वीरें देख रहा था। एक बड़ी सी तस्वीर को देखकर बोला—"क्या श्यामाचरण बाबू यही हैं।

मुझे तो आज तक दर्शन न हुए।"

"सचमुच वे दर्शनीय हैं—और श्रवणीय भी। बैठो भैया! आज दोनों पुन्य लूट लो। घन्टे दो घन्टे में आते होंगे"—ममता ने हँसते हँसते कहा।

"मैं ज्यादा नहीं रुकूँगा मम्मी! जरूरी काम है।"

"यह न होगा। तुम्हें खाना खाकर जाना होगा। मैं जानती हूँ आज से तुम यह रास्ता छोड़ दोगे। पर मैं तुम्हें अब दो चार घन्टे न छोड़ूँगी। तुम इतने दुबले और रूखे क्यों दीखते हो? क्यों इतना परिश्रम करते हो? बैठे बैठाये एक झंझट पाल लिया है। पढ़ने के लिए आए थे—पढ़ते और अपना स्वास्थ्य देखते।"

मोहन के मन में आया कहे—जिस चीज के लिए तुम्हें छोड़ सकता हूँ उसके लिये कालेज की तुच्छ पढ़ाई क्या है। अब तो संघर्ष में आ कूदा हूँ। जीवन में मेरे लिए यही तो रह गया है।

नौकरानी पान ले आई। ममता ने आल्मारी खोल एक रुपया निकालकर नौकरानी को दिया और बाजार से मिठाई—नमकीन लाने के लिये कहा। घर में इत्तिफाक से न था। मोहन ने नौकरानी को रोकते हुए कहा—मम्मी! मैं तुम्हारे यहाँ पान भी नहीं खाऊँगा।

"क्यों भैया? क्या अब मैं इस योग्य भी न रह गई।"

"नहीं! तुम सब योग्य हो। पर छोटी बहन के यहाँ बड़ा भाई जल भी नहीं ग्रहण करता—इतना तुम भी जानती हो। अपनी नौकरानी से कह दो मेरे पैसे से पान ला दे।" मोहन ने अठन्नी निकालकर दी। नौकरानी चली गई। ममता कुछ बोली नहीं।

"मेरे किन अपराधों का यह दन्ड दे रहे हो भैया!" नौकरानी के जाने के बाद ममता ने रोते रोते कहा—"अभी तुम्हारा जी नहीं भरा।"

"ऐसी बातें करोगी तो मैं इसी क्षण उठकर चल दूँगा। तुम जानती हो मैं कठोर हूँ। यदि चाहो कि मैं कुछ देर बैठूँ तो अपना वही प्रफुल्लित मुँह मुझे दिखाओ।"

जिस दन्ड को एक दिन मनुष्य अनायास अपने सिर पर उठा लेता है उसे कभी कभी घन्टे दो घन्टे को सिर से फेंक देने के लिए उसकी आत्मा छटपटाने लगती है। यह दशा हो जाती है कि किसी भी तरह इससे मुक्ति मिले तो जान बचे। काल के व्यवधान से अपराध का खोंचा अस्पष्ट और हलका हो जाता है। पर धुँधली पड़ी चेतना फिर धुँधुआ आती है। दन्ड का भार बोझिल और असह्य हो उठता है। ममता का मन मानव का ही मन है। उसकी गठन औरों से भिन्न नहीं। कठिनाई से आँसू रोककर—बहते हुओं को पोंछकर—ममता ने एक ठंडी साँस ली जिसकी शीतलता से मोहन का रक्त भी सर्द हो चला।

मोहन ने बात बदलते हुए कहा—"भाईसाहब कब तक घर आते हैं?"

"कुछ ठीक नहीं है। सात के पहले तो आते नहीं। आठ और नव भी बज जाते हैं। बाजार की हलचल और काम पर है।"

"तुम्हारे ब्याह में बाबू आये थे? अम्मा वगैरह तो रही होंगी। सीता के ब्याह की चर्चा तो नहीं है?"

ममता ने आवेगहीन स्वर से कहा—"सब लोग थे। सीता का ब्याह अभी कहीं नहीं तय हुआ। चाची का कहना है गर्मियों में हो जायगा। मैं गई तो तभी जाऊँगी। तुम चलोगे न!"

"कह नहीं सकता। मेरे जाने न जाने से क्या होता है?"

नौकरानी पान लेकर आगई। बाकी पैसे मोहन ने उसे दे दिये। ममता सूखे दिल—भीगी आँखों—से सब देख रही थी। मोहन ने पान खाकर बाकी टेबिल पर रख दिये।

ममता ने पूँछा—"कुछ और काम भी करते हो भैया!"

"हाँ, 'जागरण' में तीन चार घंटे काम करता हूँ। पचास रुपये मिल जाते हैं। हड़तालें शुरू हो गईं तो वह भी छोड़ना पड़ेगा। मुझे अब जरूरत क्या है? कालेज का खर्च बन्द है।

खाने को कहीं न कहीं मिलता जायगा।"

ममता के सिर के ढेर से बाल रूखे पड़े थे। देह में एक गहना न था। हाथों में सिर्फ आठ आठ चूड़ियाँ थीं। नाक में एक साधारण कील थी। मोहन ध्यान से देख रहा था। कमरा काफी सजा था। कोने में एक बड़ा गोडरेज का सेफ रक्खा था। और बहुत से बाक्स रक्खे थे। मोहन ने कहा—"मम्मी! मैं तुम्हारी देह पर एक भी आभूषण नहीं देख रहा। क्या बात है? तुम्हारी धोती भी साफ नहीं है। तुम अपनी ओर से इतना विरक्त क्यों रहती हो?

ममता कुछ बोली नहीं—सिर नीचा करके उसके पैरों को देखने लगी। मोहन सब समझ गया। बोला—मम्मी! मुझे वही बात उठानी पड़ती है जो तुम्हें कहने से मैं रोक रहा था। सब प्रकार के प्रसाधनों के बीच रहकर भी मुझे लगता है तुम्हारा तन और मन सुखी नहीं है। एक मृगतृष्णा के पीछे सामने के अमृत को ठुकराना मूर्खता ही नहीं पाप भी है। जो सारे पाप-पुण्य—लाभ-हानि—न्याय-अन्याय के मालिक हैं—जिनके ऊपर तुम्हारा अटल विश्वास है वे तुम्हारे इस प्रमाद के लिए रत्ती भर भी रियायत न करेंगे।"

"विश्वास मुझे जब था तब था भैया! आज मेरा स्वयं अपने ऊपर विश्वास नहीं रह गया। कब क्या कर बैठूँगी—नहीं जानती। लज्जा के सिर पर लात मारकर कब कहाँ चल दूँगी नहीं कह सकती।"

"मेरा सारा पढ़ाना लिखाना और तुम्हारे संस्कारों को गढ़ना व्यर्थ गया। तुम चिकना घड़ा निकलोगी और मेरा सारा श्रम विफल हो जायगा—यह मैंने नहीं सोचा था।

देर तक कुछ सोचते रहने के बाद मोहन ने कहा—"तुमसे श्यामाचरण बाबू से बातचीत होती है या नहीं। तुम उनकी प्रत्येक आज्ञा मानती हो?"

ममता ने सहज—सरल—निःसंकोच भाव से कहा—"रोज आठ

दस बातें हो जाती हैं। यह उनकी चारपाई है—वह मेरी। प्रवृत्ति नहीं होती कि उनसे बात करूँ। कभी कुछ पूँछते हैं तो उत्तर दे देती हूँ।"

मोहन सब समझ गया। दो बीड़े पान और खाकर बेचैनी से कमरे में टहलने लगा। ममता ने भरे गले से कहा—"जिस दुनिया में मैं एक दिन अपना आनन्द रखने की जगह नहीं पाती थी उसी में आज मुझे अपनी वेदना रखने के लिये स्थान नहीं मिलता। कैसा सर्वनाशी परिवर्तन मेरे जीवन में आगया!"

"यह तुम्हारा भ्रम है मम्मो! तुमने अपने स्वामी को विवाह का पवित्र मंत्र पढ़कर पाया है। वहाँ भाने—न भाने का प्रश्न नहो उठता, यदि उनमें कोई दोष हो—चारित्रिक दुर्बलता—अकारण, व्यर्थ ही तिरस्कार करने—अत्याचार करने की आदत हो तब मैं उनके न भाने का कारण समझ सकता हूँ। दुनिया में न किसी पत्नी को पूर्ण पति मिला है न किसी पति को पूर्ण पत्नी—आज तक। समझौता करना पड़ता है बहन! नहीं तो इसका इतना बड़ा मूल्य तुम्हें चुकाना पड़ेगा जो तुम्हारे चुकाये न चुकेगा! तुम अपने बड़े से बड़े शत्रु के लिये भी वह दन्ड एक दिन के वास्ते न चाहोगी। मैं तो उस दिन तुमसे बड़ी आशायें लेकर लौटा था।"

मैं उन्हें शरीर का स्पर्श भी नहीं करने देना चाहती—मन देना तो दूर रहा। उसका कभी प्रश्न ही नहीं उठता—न उठेगा। उन्हें तन देने में ऐसी ग्लानि और सत्यानाशी लज्जा आती है कि अपनी निगाह में मैं तत्काल जलकर क्षार हो जाती हूँ।"

"तुम्हें काहे का गर्व है? रूप—यौवन—शिक्षा-संस्कृति का! तुम अपने को किस बात में उनसे ऊँचा समझती हो? मैं हर प्रकार तुम्हें उनसे तुच्छ पाता हूँ।"

"मुझे किसका गर्व है यह मेरे बताने पर तुम जानोगे? हृदय चीरकर दिखाया नहीं जा सकता। वरना दिखा देती—इस यौवन

और अतुल रूप के भीतर जो बुढ़िया पचास-साठ वर्ष का गात और हाड़ लिए बैठी है वह कैसी भयावनी है—जहाँ बैठी वह स्मृतियों का चर्खा काता करती है वह खडहर कैसा भयकारी है। इन सब पर गर्व करने की कौन सी सामग्री मेरे पास है ? देह का अणु परमाणु दिन रात रोया करता है। तुम्हें यही करना था तो क्यों मेरे मानस में छिप छिपकर अपने को परिव्याप्त कर दिया ? क्यों मुझे संसार का सबसे सुनहला सपना दिखाया ? मैं तुच्छातितुच्छ हूँ भैया ! मेरी तुच्छता में जो सन्देह करे वह पागल है—पूरा पागल !"

मोहन की बेचैनी का आर पार न था। स्थिति यहाँ तक आगे बढ़ गई है। वह तेजी से कमरे में टहल रहा था। उसके पैरों की धमक से फर्श हिल उठता था।

ममता ने कहा—"तुम छुरियाँ चलाते हो पर रोने नहीं देते ! मुझ सी पापिन को यही दन्ड चाहिए। दो और जी भर दो। मैं कुछ न बोलूँगी—मैं कुछ न कहूँगी।" कहते कहते उसने अपनी छाती को दोनों हाथों से जकड़ लिया—जैसे हृदय को कोई भीतर से पकड़कर मरोड़ रहा हो।

मोहन ने कहा—"इस तरह कितने दिन काम चलेगा मम्मी ! मुझे अपनी परेशानियाँ और विडम्बनायें क्या कम हैं जो तेरी यह यातना भी मैं भोगूँ। तू जानती है दुनिया में मुझे जो नहीं बरदाश्त होता वह है तेरा दुःख। आज तू वही अजस्र निर्भर की तरह झरझर मेरे ऊपर उड़ेल रही है।

"तुम्हारे आगे न रोऊँ तो कहाँ रोऊँ ? पूछने पर भी तुमसे न कहूँ तो किससे कहूँ ? मुझे माफ करो मेरे अच्छे भैया ! अब एक शब्द न बोलूँगी।"

मोहन हाथ में बँधी घड़ी की तरफ देखने लगा। ममता ने कहा—"खाना खाकर जाना भैया !"

मोहन ने कहा—"तू बेवकूफ है क्या ? मैं तेरे यहाँ खाना खाऊँगा ? देने के लिए पास में कुछ नहीं है तो क्या तुझसे लूँ ? क्यों ऐसी

बात कहकर मुझे पीड़ा पहुँचाती है।"

"तुम्हारे पास देने के लिए क्या नहीं है? तुमने मुझे क्या नहीं दिया? पर देकर तुमने ले लिया—सब ले लिया—जो दिया था। रहा सहा मेरा भी लेते गये।"

"अब मैं चलता हूँ। तुमसे दो बात कहना चाहता हूँ। विश्वास है तुम मुझसे झूठ न बोलोगी। मैं मन-वाणी-काया से तुमसे केवल एक भिक्षा चाहता हूँ। दोगी न! मैं हाथ जोड़कर खड़ा हूँ—मेरी ओर देखो!"

कैसी विचित्र बात है! राजराजेश्वर स्वयं भिखारिन से भिक्षा माँगे। ममता ने देखा सचमुच मोहन भैया दोनों हाथ जोड़कर खड़े हो गये। चेहरे पर मुर्दे का-सा फीकापन—अजीवन है। गले में—स्वर में पूरी सरिता की आर्द्रता है।—श्यामा की विह्वलता और चकोर का आत्मदाह है। ममता झपटकर कुर्सी से उठ बैठी और मोहन के पैरों पर सिर टेककर बोली—"तुम मुझसे भिक्षा न माँगो! मुझे आदेश दो—अपना आदेश पूर्ण करने की शक्ति का वरदान दो। मैं तुम्हारी हूँ। जो जो कहोगे करूँगी।"

"सच कहती हो? मोहन ने उत्सुकता और दिल की धड़कन के साथ कहा—"तुम कर सकती हो इसी से तुमसे कहता हूँ। तुम दे सकती हो इसी से तुमसे माँगता हूँ। जीवन के समस्त सत्य, शिव और सुन्दर तुम्हारी जैसी क्षमताशालिनी के सामने भिक्षु बनकर आते हैं। हर युग और हर देश में—प्रणय की साधना ने—वियोग की उज्ज्वलता ने तुम्हारी जैसी के सामने ही आँचल पसारा है।"

ममता पगली की भाँति देखती रही। सामने संध्या की अँधेरी क्षितिज के ढलान से बढ़ती आ रही थी। नौकरानी ने आकर बत्ती जलाई और रहस्यभरी दृष्टि से देखकर चली गई। दोनों ने

उधर ध्यान भी न दिया।

मोहन ने कहा—"तुम तन और मन दोनों से पति की निष्ठा-पूर्वक सेवा करोगी। सोच लो और कहो—हाँ। नहीं तो मैं कानपूर क्या शायद दुनिया ही छोड़ दूँगा। तुम जानती हो जब मैं तुम्हें छोड़ सकता हूँ तो दुनिया भी छोड़ सकता हूँ। पति के प्रति तुम्हारी सारी घृणा का आज से अन्त हो जाना चाहिए।"

ममता को लगा—इस पुकार की प्रचण्डता और शक्ति दुर्निवार है। मोहन ने कहा—"आज तक तुम्हारी सोहागरात नहीं हुई। तुम छोटी नहीं हो—भोली नहीं हो। जीवन के सारे सौख्य और असौख्य को चीन्हती हो। आज तुम्हारी सोहागरात है। आज तुम्हें पति के सम्मुख तन और मन का समर्पण करना है। तुम्हें उनसे कोई शिकायत नहीं है। उन्होंने तुम्हारे साथ कोई दुर्व्यवहार तो नहीं किया?"

"नहीं।"

"उठो—मेरे पास खड़ी होकर—मेरे मस्तक पर हाथ रखकर शपथ खाओ—मेरी यह विनती मानोगी। विनती इसलिए कहता हूँ कि तुम अब मेरी नहीं हो। मेरा कोई अधिकार तुम पर नहीं है। मैं तुम्हें आदेश कैसे दूँ? अपनी तसल्ली और शान्ति के लिए यह भीख चाहता हूँ।"

ममता का सारा द्रोह—तनाव—जैसे पानी बनकर गल गया। पास आकर अपने मक्खन जैसे मुलायम हाथों से मोहन के दोनों कंधों को छूकर बोली—"ऐसी बात न करो। मैं सदैव तुम्हारी थी—मेरे पूरे अस्तित्व पर—मेरी सम्पूर्ण सत्ता पर तुम्हारा अधिकार है। तुम जो कहोगे वही होगा। आज से मैं सारा शरीर उनके आगे फेंक दूँगी। पर मन—मन—मन के विषय में कोई 'अन्डरटेकिङ्ग' देने का सामर्थ्य मुझ में नहीं है भैया! यहीं मैं विवश हूँ। यहीं संसार की प्रत्येक सती विवश हो जाती है। यहीं मैं लाचार हूँ। तुम विश्वास करो—मैं पूरा यत्न करूँगी कि अपनी सारी विपथ-गामिनी वृत्तियों को एकाग्र

कर अपने मन के भीतर बहते सारे उल्टे स्रोतों को उनकी ओर ले चलूँ। आज तक उनसे अपने को बचाती फिरती थी। अब अपने से अपने को बचाऊँगी।"

"मैं धन्य होगया बहन! मुझे तुझपर अभिमान है। आज तेरी सोहागरात है। मैं तुझे क्या दूँ! मेरे पास कुछ है भी नहीं। तुझको कुछ देने योग्य कभी जीवन में हो सकूँगा—नहीं जानता। मेरे पास सिर्फ दस रुपए हैं। तू इन्हें ले ले। देख—इन्कार न करना वरना मुझे कष्ट होगा।"

ममता ने सिर झुकाकर नोट ले लिया—उसे मस्तक से लगाया और ब्लाउज के नीचे रख लिया।

मोहन ने टेबिल पर पड़े पानों को मुँह में रखते हुए कहा—"मैं एक आदर्श के लिए लड़ रहा हूँ। जीवन और मरण का प्रश्न—वह भी केवल मेरा नहीं वरन् मेरे जैसे करोड़ों का—आ पड़ा है। मुझे जाना है—कब लौटूँगा—कह नहीं सकता। क्रान्ति का बिरवा हमने लगाया है। उसे मैं और मेरे जैसे कितने ही अपने रक्त से सींचेंगे। पर तू मुझे सदैव याद रहेगी। तेरी ओर से यह महान आश्वासन पाकर मुझे साहस हो आया है कि अपने दिल की दो चार बातें कह सकूँ। मैं कहीं भी रहूँगा जीवित या मृत—मेरी आत्मा तेरे पैरों के पास मँडराती रहेगी। मैं जड़वादी होकर आत्मा के अस्तित्व को मानता हूँ—सिर्फ तेरे कारण। तू मेरे जीवन में न होती तो पत्थर के नीचे बहता हुआ यह पानी का सोता सूख गया होता—ढहे सपनों का यह अवशिष्ट शून्य में बिखर चुका होता।"

ममता को लगा वह आज अपने इस जन्म जन्म के साथी से दूर पड़कर भी उसके सबसे निकट आ गई है। उसके देवता भैया आज उससे सब कह देंगे—वह पुलकित होकर सुनती चलेगी। उससे शपथ लेने के पहले आन्तरिक वेदना से उन जैसा विषण्ण हो जाते जैसे उसने किसी को न देखा था वैसे ही आन्तरिक उल्लास की

यह ज्वलन्त आभा उसने कभी उनके चेहरे पर न देखी थी। बोली—"मुझे कुछ नहीं कहना भैया! तुम सुखी रहो यही मेरा सुख है। मेरे कारण तुम्हें अकुलाहट हो तो मुझे धिक् है। मेरे अन्दर का ज्वालामुखी कितना गहरा—कितना विदारक और खूनी है—मैं जानती हूँ। आज से मैं उसे बरफ से ढक लूँगी। मेरे जीवन का नया अध्याय आरम्भ होगा। आज मैं जान गई हूँ—तुम कितने महान हो। मुझे अपने ऊपर अहङ्कार था। आज वह सब तुम्हारे पैरों की धूल में मिल गया है। ईश्वर से मैं माँगती हूँ — वह कहीं भी हो मुझे इसके लिए कदापि क्षमा न करे। अधिक से अधिक दन्ड इसके लिये मुझे मिले—तभी मुझे शान्ति होगी। मेरा कैसे उद्धार होगा—मेरा कैसे उद्धार होगा।"

ममता फूट फूटकर रोने लगी—बिद्ध हिरणी की भाँति फर्श पर लोट लोटकर रोने लगी। साड़ी और ब्लाउज तर हो गये।

"कुछ नहीं। तुम्हारी छाया बड़े से बड़े पापी, दुश्कर्मी और कलंकी को तारने के लिए काफी है। तुम्हारा अधिवास नर्क को स्वर्ग बना सकता है। तुम साक्षात पुन्य हो। कल्याण की मंगलमयी चन्द्र-लेखा हो तुम! तुम सुखी रहो—मैं चलता हूँ। सात बज चुका है। आठ बजे मुझे एक मीटिंग में बोलना है।"

ममता उठकर आँसू पोंछती खड़ी हो गई। बोली—"अब कब आओगे? एक बात मैं साफ बता दूँ। यह सब मैंने तुम्हारे सन्तोष के लिए किया है। मुझे जो झेलना पड़ेगा मैं झेल लूँगी। पर तुम भी वायदा करो मेरे सिर पर हाथ रखकर—मेरी शपथ खाकर--बराबर यहाँ आते रहोगे। जीवन में जो बचा खुचा—कभी कभी मिलने-वाला सुख है वही मुझसे न छीन लोगे।"

मोहन ने ममता के सिर पर हाथ फेरकर कहा—"मैं आऊँगा—जल्दी आऊँगा। श्यामा बाबू से तब भेंट होगी।"

"तारा को भी साथ लाना। मैं मिलना चाहती हूँ। ढाई महीने से मैं यहाँ हूँ—उनसे भेंट न हो पाई। बैठो भैया!

उनसे मिल लो तब जाना। आते ही होंगे।"

"नहीं मम्मी! जाता हूँ--कहकर मोहन चल दिया। ममता ने दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया। मोहन नमस्ते करके बाहर निकल आया। ममता खिड़की पर खड़ी जब तक उसकी छाँह की छाँह लिखी--देखती रही। सड़क पर बिजली की बत्तियाँ जल चुकी थीं। उसने देखा उसका प्यारा साथी बाहर भीड़ में विलीन हो गया--जैसे आत्मा का रुँधा चीत्कार निकलकर श्वासों—प्रश्वासों में खो जाता है।

मोहन के जाने के बाद ममता टूटे तरु की छुटी लता-सी बिस्तर पर लेट गई। उसे सब कुछ खाया खोया लग रहा था। ऐसी ही निष्चेष्ट वह बीस मिनट तक पड़ी रही। मोहन जैसे उसके आँसुओं का स्रोत लेता गया था। श्यामाचरण ने कमरे में प्रवेश किया। ममता बोली—"मेरे मोहन भैया आए थे। लगभग तीन घन्टे बैठे रहे। तुमसे मिलना चाहते थे। अभी अभी गये हैं।"

श्यामाचरण ने पूँछा—"मोहन भैया कौन हैं?"

ममता ने उत्तर दिया—"मेरे बड़े भाई की तरह हैं। यहाँ कालेज में पढ़ते थे। इधर पढ़ना छोड़ दिया है। मजदूरसभा में काम करते हैं। पढ़ने में बड़े तेज हैं। थोड़ा बहुत जो मैं जानती हूँ उन्हीं का दिया है। मेरी शादी में 'सीता' एक लड़की थी। वह इन्हीं की छोटी बहन है।"

श्यामाचरण ने भेदभरी दृष्टि से देखकर पूँछा—"मकान कैसे मालूम किया?"

"नीचे फुटपाथ पर जा रहे थे। मैं खिड़की पर खड़ी थी। महरी को भेजकर बुलवा लिया। वह जुलाई से यहीं रहते हैं। पहले इलाहाबाद में पढ़ते थे।

"खाना खिला दिया होता। पूँछा था या नहीं।"

"उन्होंने पान तक तो खाए नहीं। अपने पास से चार पैसे के पान

मँगाकर खाते रहे। कह रहे थे तुम छोटी बहन हो—तुम्हारे यहाँ का पानी तक पीना मना है। चलते समय रुपये भी दे गए।"

"तुम्हारा कुछ सम्बन्ध होता है क्या।"

"सम्बन्ध कुछ नहीं है। गाँव घर के हैं—ऊँचे विचारों के आदमी हैं। आप मिलकर खुश होते। देखिये फिर जब आवें—मैंने कहा तो है। सार्वजनिक कामों से उन्हें फुरसत मिले तब न। कह रहे थे मजदूरसभा के बहुत से कार्यकर्ता गिरफ्तार हो चले हैं। मेरे ऊपर बहुत काम आ पड़ा है।"

"क्या नाम बताया तुमने ? मोहन !"

"हाँ क्या आप जानते हैं !"

"जानता तो नहीं। पर तारा नाम की एक औरत है—यहाँ के एक लीडर हैं नरेन्द्रकुमार वर्मा—उनकी बहन। उसके साथ ये आज कल बहुत रहते हैं। शहर में बदनामी है। मुझे भी आदमी लोफर लगता है।"

"ऐसी बात नहीं। लोफर का मतलब मैं समझती हूँ। उनसे मिलकर और बातचीत कर के देखना। दुनिया उन्हें जो कहे—मैं तो देवता समझती हूँ। चाहते तो पढ़ लिखकर ऊँची से ऊँची नौकरी पा सकते थ। एन्ट्रन्स में पूरे सूबे में अव्वल आए थे। अब क्या पढ़ेंगे। देश के लिए कालेज छोड़ दिया।"

कपड़े उतारकर श्यामाचरण मुँह हाथ धोने चला गया। वहाँ से खाना खाकर आया और ममता से भी जाकर खाने को कहा। ममता बोली—"मुझे भूख नहीं है।"

"क्या मोहन भैया का रूप देखकर भूख प्यास हरगयी या उनकी बातों से पेट भर गया है।" व्यंग पूर्वक श्यामाचरण ने कहा—

ममता कुछ न बोली। चुपचाप पड़ी रही। खाना खाने नहीं गई। उसके हृदय में भीषण मंथन चल रहा था। केवल एक

आत्मा ही उसे जानती थी। वह कहाँ जा रही है—उसका सारा विद्रोह—सारी बगावत निष्फल क्यों हो जाती है ? मोहन के सामने उसकी सारी दृढ़ता—सारी विप्लवभावना कहाँ लोप हो जाती है ? और बाद में जो खूनी ललकार उसके अंगों में घहराती है उसे वही सुन सकती है ! मृत्यु और सृष्टि को जीवन में एक साथ लेकर वह कैसे चलेगी ? अब तक दीपक की उज्ज्वल बर्तिका-सी वह निष्कलंक जलती रही है। आज से उसकी लौ किमाकार होगी।

ममता बारह बजे चुपचाप उठकर पति के बगल में लेट गई। श्यामाचरण सो रहा था ! पर ममता के निश्वासों की तीव्रता से जग उठा। कहीं वह स्वप्न तो नहीं देख रहा—ममता उसके बगल में लेटी थी। उठकर उसने बत्ती जलाई—ममता को सिर से पैर तक देख गया। जो दोनों आँखें खोले छत की ओर देख रही थी। श्यामाचरण ने बत्ती बुझादी और आकर अपनी जगह पर लेट गया। ममता के माथे पर हाथ रखकर बोला—"तुमने खाना नहीं खाया ! मैं मजाक कर रहा था—तुम इतना बुरा मान लेती हो तबियत भारी है क्या ? मैं खुद तुमसे बात करने में सावधान रहता हूँ—फिर भी ख़ता हो जाती है। तुमने मुझे ! माफ कर दिया न ? बोलो ! आज चुप रहने से नहीं बनेगा।"

ममता ने कंपित कंठ से कहा—"मैं नाराज ही कहाँ हुई थी। तबियत ठीक नहीं है। सोचा न खाना बेहतर होगा।

श्यामाचरण ने कहा—तुम्हारे मोहन भैया मुझ से बिना मिले चले गये। मुझे दुःख है। मैंने उन्हें शहर में देखा है—तारा के साथ वे लगे रहते हैं।"

"क्या करें—दोनों साथ साथ काम करते हैं। इसमें हर्ज क्या है।"

श्यामाचरण ने बात बढ़ाना उचित न समझा। ममता का निर्विरोध, स्वप्रेरित और सर्वाङ्ग समर्पण उसे निहाल कर देने के लिए काफी था।

# [ १६ ]

रात को करीब ११ बजे मोहन लौटकर घर आया। तारा उसके कमरे में कुर्सी पर बैठी थी। दस मिनट पहले वह भी आई थी। मोहन को देखते ही बोली—"छः बजे से पार्टी की मीटिङ्ग थी। साढ़े छः तक आपका रास्ता देखा गया। आप कहाँ गायब हो गए थे ? क्लास लेने गए या नहीं ?"

वहीं से आरहा हूँ। मीटिंग में नहीं आसका। रास्ते में ममता मिल गई। उसने रोक लिया।"

"अच्छा! वे कहाँ रहती हैं ? एक दिन मुझे भी ले चलिये !"

"जरूर चलो। उसने तुम्हें लाने को दो बार कहा है। लाटूश रोड पर उसका मकान है। मैं नीचे फुटपाथ पर चला जा रहा था। उसने आवाज देकर बुलाया। वहाँ तीन घन्टे बैठा रहा।"

"उसके पति भी थे ?"

"वे नहीं थे। मेरे आने के बाद आए होंगे। मिलना मैं उनसे भी चाहता था। खाना खाने के लिये कह रही थी। मुझे क्लास मिस होजाने का भय था। पार्टी मीटिङ्ग में पहुँचना तो नामुमकिन था।"

दोनों खाना खाने लगे। तारा मीटिङ्ग का हाल बताती रही। अंत में उसने कहा—"मैं अपनी मीटिङ्ग का हाल बता चुकी—अब आप अपनी का हाल बताइये।"

"अपने क्लास का हाल बताऊँ ? मुझे अब अपनी वाणी पर संयम नहीं रह गया। आज न जाने कैसी कैसी उग्र बातें कह गया। भविष्य में होनेवाली महाक्रान्ति की चर्चा आते ही मैं दीवाना हो जाता हूँ।"

"वहाँ का हाल नहीं पूँछती। मैं ममता के यहाँ का हाल पूँछ रही हूँ। अपने जीवन से संतुष्ट है न ? आप उसकी शादी में नहीं गये इसकी शिकायत तो न कर रही थी।"

मोहन तारा से कुछ छिपाता न था। यह स्फटिक-सी शुभ्र निर्मल बालिका उसके हृदय का प्रत्येक स्तर देख लेती थी। ममता के यहाँ का हाल सुनाकर बोला—"इस तरह मैंने यह मामला सुलझाया ! फिर भी मुझे सन्देह है वह अपनी पुरानी घृणा की परिधि में फिर न पहुँच जाय।"

तारा ने पूँछा—"आप उससे जो करने को कह आए हैं सचमुच क्या उसे उचित समझते हैं ?"

"जो उचित समझता हूँ वही सबसे करने को कहता हूँ। जिस दिन यह बात मुझमें न रहेगी उस दिन क्या शेष रह जायगा ? अपने प्रति जो ईमानदार न रहा उसका जीवन व्यर्थ है। सोचो ! उसके लिये मार्ग क्या है ? वह मुझे प्रेम करती है मैंने माना। पर मैंने आजीवन विवाह न करने का निश्चय किया है। मेरी अपनी मजबूरियाँ हैं—अपनी 'ईडियासिन क्रेसी' है। विवाह उसका हो चुका है। कब तक वह 'बैरन लाइफ' रहेगी ? इसे मैं व्यर्थ की भावुकता समझता हूँ। आदमी को जीवन में मन के विपरीत बातें भी करनी पड़ती हैं। पति स्वस्थ्य, सुन्दर, सुशील और सम्पन्न है। अब क्या चाहिये ?"

"मुझे इसमें शुरू से आखीर तक आपकी स्वार्थपरता और भावुकता जान पड़ती है। आप जानते हैं—मानते हैं वह आपकी संगिनी होने योग्य है। आपने इसके लिए उसे हर प्रकार से तैयार किया—पढ़ाया—लिखाया। जीवन में विरोधों से लड़ना सिखाया। अब सिर्फ इसलिये कि आपके साथ उसे कष्ट होगा—आपके अनिश्चित जीवन में वह दुख भोगेगी—आप उसे अपनाना नहीं चाहते। यह भावु-

कता नहीं और क्या है। प्रेमको आप hot house plant समझते हैं। आपने व्यर्थ में एक लड़की को जो जीवनसंग्राम में योद्धा बनने के लिये प्रस्तुत थी अपने मन की थोथी भावुकता को तुष्टि देने के लिए दुख के जीवनव्यापी चक्र में ढकेल दिया। मैंने शुरू से आपकी इस बात का विरोध किया है। आप के प्रति मेरे हृदय में सच्ची श्रद्धा है—पर आपका यहकृत्य आपकी कायरता का द्योतक है।"

"तुम चाहे जिस नामसे इसे पुकारो मगर मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं। उसको साथ लेकर मैं तूफान में डोलती—बेपतवार और नाविक-हीन नौका की तरह कहाँ कहाँ निकल जाता—सागर की विक्षुब्ध—विस्फूर्जनवाही तरंगों में पड़कर किस घाट जा लगता यह नहीं समझ पाता। उसको पाकर मैं किसी काम का न रह जाता। मेरे सारे आदर्श हवा हो जाते। मैं बंधनहीन हो जाता। आठ वर्षों से अपनी तृष्णा का आहार कर मैंने अपनी क्षुधा को दबाया है। मेरी वासना ही मेरा भोजन रही है। तुम सोच नहीं सकतीं—समझ नहीं सकतीं मेरे अन्दर क्या क्या है—कहाँ कहाँ के बवंडर भरे पड़े हैं। मेरी आत्मा में विष का जो भीषण स्रोत है उसे मैं जानता हूँ—उससे भय भी खाता रहता हूँ। मेरे जीवन का जो आदर्श है और जिसके लिए मैं लड़कर-खपकर बरबाद हो जाना चाहता हूँ वह मुझसे सदा के लिए छूट जाता। तब मेरे अन्दर कैसा संघर्ष उठता—कैसा झंझावात चलता—दिन रात—चौबीस घन्टे! सब कुछ सोचकर मैंने ऐसा निर्णय किया है। मेरा पहलू साफ है। ममता मुझे जान की तरह प्यारी है। मेरा आदर्श मुझे ईमान की तरह प्यारा है। मैं जान दे सकता हूँ—ईमान नहीं।........

"तुम यह विश्ववास करो—जिस दिन मैं देखूँगा कि ममता पर उत्पीड़न हो रहा है—उसे ऊँचा मस्तक लेकर जीवन में नहीं चलने दिया जाता—उसका पति उसके साथ पशुता से पेश आता है उस दिन मैं सब से पहले उसे वहाँ से

ले आऊँगा—अपने साथ रक्खूँगा। दुनिया की कोई शक्ति मुझे उस समय ऐसा करने से न रोक सकेगी। कानून, समाज, धर्म सब को मैं ठुकरा दूँगा। अभय होकर आत्मा की पुकार के पीछे चलूँगा।"

तारा विस्मित हो रही थी। मोहन कहता गया—"सिद्धान्त रूप से मैं एक स्त्री का एक पुरुष के साथ सम्बन्ध मानता हूँ—चाहे वह विवाह के द्वारा हो चाहे बिना विवाह की। जो स्त्री पति के मरने के बाद किसी दूसरे पुरुष से स्थाई सम्बन्ध स्थापित कर लेती है उसे मैं सती समझता हूँ। जो पति के साथ रहते हुए जीवन-पथ पर इधर उधर डिगती रहती है उसे मैं नीची निगाह से देखता हूँ। 'सेक्स' जीवन की ऐसी प्रधान प्रवृत्ति नहीं है जो उसी की ग्रन्थियों के खोलने में जीवन बीत जाय। जीवन का उद्देश्य इससे ऊँचा है। जीवन एक महान क्रिया है—एक साधनामयी क्रिया है—एक क्रान्तिकारी योजना है। जीवन शिवता की पुकार है—आत्मा के सर्वोच्च सत्य की उपलब्धि की चेष्टा है। ये सब बीच की छोटी छोटी बातें हैं।"

"शिवता की पुकार क्या है? वह सर्वोच्च सत्य क्या है?"

"विश्व की समस्त विषमता, दैन्य, दुःख, दरिद्रता और दुर्व्यवस्था के नाश की योजना—'सब सुखी और सब समान' का महान सिंहनाद प्रचारित करने की प्रचंड पिपासा। यह क्रान्ति के उपादानों का गठन करने से होगा। यह है अपने आदर्श के आह्वान पर सर्वस्व होम देने की प्राण-पुञ्जित भावना। यह आदर्श है मानवता का आदर्श—कोटि कोटि मानवों की मुक्ति का आदर्श। नवयुग का यह क्रन्दन व्यक्ति विशेष का क्रन्दन नहीं है—यह निपीड़ित मानव समुदाय का क्रन्दन है। हमारा लक्ष्य है धनी और दरिद्र की श्रेणी-सीमा का अन्त करना।"

"मैं मानती हूँ। प्रत्येक नरनारी जिसमें सामाजिक न्याय की भावना

शेष है आपकी बात मानेगा। पर ममता वाले मामले में मैं अब भी सहमत नहीं हो सकती"।

"तुम्हारा दृष्टिकोण नारी का दृष्टिकोण है। मेरे सामने नर नारी का प्रश्न अलग अलग नहीं आता। मेरे सामने एक सामूहिक समस्या है—एक सम्मिलित दृष्टिकोण है। मेरा उसके प्रति एक उत्कट आसक्ति-भाव है। मेरे प्रेम में पूजा है-उपासना है—घन्टा बजाकर आरती उतारनेवाले पुजारी की तन्मयता और देवोपमता है। साँसारिक स्तर से मेरा प्रेम ऊँचा है। वह कुछ कुछ वैसा है जैसा जल और पवन का होता है—आकाश और ज्योत्स्ना का होता है—कविता और रस का होता है। मेरे जीवन का ठिकाना नहीं! कल मैं 'अन्डरग्राउन्ड' जा सकता हूँ—पकड़ा जाकर आजीवन कारागार-प्रवासी भी हो सकता हूँ। तुम सोचो उस दशा में उसका भविष्य कैसा हो जाता? जीवन का कौन सा सुख वह जान पाती? यौवन की एक भी लहरीली कमनीयता क्या वह भोग सकती? अभी तो विवाह की संस्कारी दुनिया में वह जीवन को मोड़ सकती है—अपने को एक साँचे में ढाल सकती है। पर पहली स्थिति में वह क्या करती? मेरे दिल पर क्या बीतती? एक बच्चा भी अपने घरौंदे को नहीं बिगाड़ता। एक छोटी बालिका भी अपनी गुड़िया को जानदार—स्पंदनशील समझती है। मैं उस मूर्ति को खन्ड खन्ड कर देता जिसे पिछले बारह वर्षों से सँवारता आया हूँ—अपने हृदय के रक्त से—मस्तिष्क की सर्वश्रेष्ठ चेतना से मैंने जिसका निर्माण किया है। मुझे कायर कहो—भावुक कहो—चाहो तो सिड़ी भी कह लो पर मैं यह न कर सका—नहीं कर सकता। अपना अपना हृदय तो है।

तारा ने कहा—"जाने दीजिये। मैं आपसे इस मामले में एकमत न हो पाऊँगी। किस दिन उनके यहाँ चलेंगे? मैं उन्हें कुछ उपहार देना चाहती हूँ। वे स्वीकार करेंगी? अनदेखे—अनजाने ही मुझे उनसे बड़ा स्नेह हो गया है।"

"इन्कार करने का कोई कारण मैं नहीं देखता।

तुम यह भूल जाती हो कि यह कायरता या भावुकता मुझे कितनी मँहगी पड़ी है। अपने सपने को अपने हाथ से इतना बड़ा झटका देकर तोड़ना सहल नहीं होता। त्याग की इस निष्ठुर आत्मचेतना को—उत्सर्ग की इस जीवन्त ज्वाला को तुम कायरता कह लो—भावुकता मान लो पर कभी जीवन में अनुभव हुआ तब जान सकोगी कि अपने शरीर का कोई दुखता अंग काटकर फेंक देना कितना पीड़क—कितना दाहक होता है।"

तारा उठकर ऊपर अपने कमरे में चली गई। एक हल्की सी—बहुत हल्की सी—लाली उसके गालों पर भरभरा आई थी।

## [ २० ]

तारा के हृदय में ममता से मिलने की दुर्दमनीय इच्छा जागृत हो गई। मोहन से कई बार कहा पर उसने बार बार इस प्रसंग को टाला। वह ममता से मिलना जुलना बिल्कुल ही न चाहता था। ममता यदि उस दिन अकस्मात उसे देख न लेती और बुलाती न तो शायद वह कभी यह जानने का प्रयास न करता कि उसका मकान कहाँ है—कैसे उसके जीवन के दिन बीत रहे हैं। अब मोहन को लगता है उसने उस दिन ममता से मिल-कर अच्छा ही किया—नहीं तो पति-पत्नी का यह अप्रिय प्रसंग न जाने कब तक और चलता। अब वहाँ जाकर उसके हृदय में उसी पुरानी आँधी की सृष्टि करना किसी प्रकार अभीष्ट नहीं है। पति से दूरी की जो बाढ़ धीरे धीरे हट रही है उसे फिरसे बढ़ाना भावुक और विद्रोह-प्रवण ममता के लिये कल्याण-कर न होगा।

तारा कुछ और सोचती है। मोहन पर उसका अपनत्व है—उसे वह हृदय से श्रद्धा करती है। पर इस श्रद्धा में शुष्कता नहीं

—रस है। कठोरता नहीं—नर्मी है। ऊपर की ओर उड़ा ले जाने वाली निःसंग विभोरता नहीं—मानवीय स्तरपर आकर अधिक समझने और समझाने की चेष्टा है। उसकी श्रद्धा में हृदय की चेतना के सब तार एक साथ बजते हैं—दिल की आरती की सब बत्तियाँ एक साथ जल उठती हैं। सारे के सारे सपने जो यौवन की बाढ़ आते आते कर्तव्य की कठोरता और समाजीजीवन की विषमता को नष्ट करने की पुकार पर एकाएक खो गये थे इस रसमयी श्रद्धा के प्रकाश में एक एक कर लौटने लगे हैं। इस श्रद्धा के प्रभात के भैरवी स्वर में उसकी आत्मा की सारी शतदल-पंखड़ियाँ एक साथ खुल जाती हैं। उसे लगता है उसका चिर-वाँछित संगी मिल गया है—अब मिला है। प्राण रहते उससे विछोह न हो यही वह चाहती है। मोहन उसकी प्रति गति—प्रति पुकार में रमगया है। नहीं—वह मोहन को न छोड़ सकेगी। मोहन को सुखी देखना उसे जीवन का एक ध्येय—एक लक्ष्य जान पड़ता है। संक्षेप में तारा मोहन को जैसे प्यार करने लगी है। अब तो उससे यह सब छिपाया नहीं जाता। कैसे वह इस प्रचण्ड प्रवाह को रेगिस्तानी सुनसान में सूख जाने दे। कैसे उसकी उन्मत्त कल्लोलों को घोंट दे।

मोहन सब देखता है। उसकी समझ में सब आता है। भीतर ही भीतर इस नवीन परिणति पर वह हँसता है—रोता है—व्याकुल और चिन्तित होता है। कभी कभी भयङ्कर रूप से गंभीर भी हो जाता है। सोचता है किस अज्ञात सागर के अज्ञात पुलिन का यह अमंगल उसे अपनाए लेता है। जीवन की सबसे बड़ी यथार्थता के पथ से वह क्यों इस प्रकार भ्रष्ट किया जाता है? उसका सबसे बड़ा सत्य अब भी उसका है। जिस जीवन ने ममता को छोड़ दिया उसके लिए अब किसी नूतन पाश की सृष्टि करना कैसे संभव होगा! तारा क्या सब नहीं समझती—देखती। तारा की प्रत्येक बात—प्रत्येक स्वर—प्रत्येक ध्वनि उसे भयकारी लगती है—तारा जब उसे अधिक से अधिक देखना और सुनना चाहती है।

आठ दस दिन बाद तारा मोहन से बोली—"आज चलिए ममता के घर—आप आज भी खाली हैं।"

मोहन ने रुखाई से कहा—"तुम अकेले जाओ। मकान का पता मैंने ठीक ठीक बता दिया है।"

तारा ने कुछ अप्रतिभ लेकिन असंकोच कहा—"अकेले मैं कैसे जाऊँ? बिना आपके साथ चले न बनेगा। मैं एक बार भी पहले मिल चुकी होती तब बात दूसरी थी। आपको चलने में आपत्ति क्या है?"

"उसमें मेरा सम्बन्ध क्या?। मैं उसके पास नहीं जाना चाहता। मुझे 'जागरण' के लिए दो लेख तैयार करने हैं।"

"आज चले चलिए—मेरे कहने से! केवल एक बार आपको साथ ले चलना चाहती हूँ। फिर मुझे जब जाना होगा—अकेली चली जाऊँगी।"

मोहन तारा की ओर पीठ कर लिखने लगा। तारा कुछ देर चुपचाप खड़ी रही—फिर सामने आकर खड़ी हो गई और बोली—"मैं काम करने दूँगी। आपको आज चलना ही होगा। फिर तो आपके क्लास होंगे और बहाना मिल जायगा।"

मोहन ने उद्वेगहीन—शान्त कण्ठ से कहा—"जिद न करो तारा! मैं वहाँ जाना नहीं चाहता। कारण तुम जानती हो। वहाँ जाकर मुझे तो कुछ नहीं मिलता पर उसका बहुत कुछ खो जाता है।"

"उसका कुछ नहीं खो जाता। जो इतनी जल्दी खो जाय उसका खो जाना ही श्रेयस्कर है। आपको उससे मिलकर कुछ नहीं मिलता यह मैं कैसे मान लूँ? आप जितनी आसानी से अपनी 'साइकालोजी' बदलना चाहते हैं उतनी आसानी से वह नहीं बदला करती। मैं जानती हूँ वहाँ जाने पर आपको सुख मिलेगा। सुखी होना प्रत्येक मानव का अधिकार है। आपके सुख में यदि मैं भी कुछ सुखी हो सकूँ तो आपको इन्कार न होना चाहिए। मैंने उसे आज तक कुछ

नहीं दिया। उसके विवाह के उपलक्ष्य में कुछ उपहार देना चाहती हूँ। बगैर आपके साथ चले वह कैसे एक अपरिचित का उपहार स्वीकार करेगी ?"

मोहन ने कहा—"अपनी हार्दिक इच्छा तुम्हें बता रहा हूँ। मैं नहीं जाना चाहता।"

"आप उससे उस दिन जो जो करने को कह आए हैं वह सब उसने किया या नहीं--आपकी बातें मान लीं या नहीं यह भी तो आपको जानना चाहिये।"

"मुझे उस पर विश्वास है। उसने शपथ ली है तो पूरा करेगी। मैं उसे जानता हूँ—वह झूठ नहीं बोलती।"

"झूठ बोलने का प्रश्न नहीं—यहाँ अपनी आत्मा का गला घोंटकर स्वयं छटपटाते हुए एक ऐसा काम करने का आदेश है जिसके लिए मैं प्राण दे सकती हूँ।"

"प्राण इतने सस्ते नहीं होते तारा! उन्हें मनुष्य को अन्य महत्व-पूर्ण कामों के लिये सुरक्षित रखना चाहिए। जीवन का उद्देश्य स्त्री पुरुष की समस्या सुलझाते रहना ही नहीं है। जीवन इससे बड़ी और व्यापक मान्यता के लिये उत्सर्ग करने की चीज है। तुम्हें साथ ले जाकर—तुम्हारा उससे परिचय कराकर—मुझे लगता है मैं कहीं एक नया तूफान न उसे दे दूँ। यों ही उसमें विद्रोह क्या कम है।"

"आप भयभीत न हों। मैं उसकी 'साधना' में विघ्न न डालूँगी--विश्वास कीजिये। मैं इस प्रसङ्ग में बोलूँगी ही नहीं। यह व्यक्तिगत रूप से उसका और आपका मामला है। उसके और पति के सम्बन्धों से मुझे मतलब क्या? आपके इस आदर्शवाद को मैं चुपचाप देखूँगी। कसम ले लीजिए यदि बीच में एक शब्द बोलूँ। यहाँ लौटने पर जो कहना होगा कहूँगी। आप शायद जानते नहीं--मैं भी झूठ नहीं बोलती।"

"अपने स्वभाव को तुम क्या करोगी? पराजय के उस जीवित महाश्मसान को देखकर कैसे अपने को रोक सकोगी?"

"पर यह आपकी सृष्टि है। आपको ऐसा कहते तनिक भी हिचकिचाहट नहीं होती? मृत्यु की अवज्ञा करके वह आपकी ओर आई। आपने अपने को एक असाधारण व्यक्ति समझा और अपने इस विश्वास पर एक नारी का बलिदान चढ़ा दिया।"

"आदर्शों के युद्ध में ऐसे अगणित उत्सर्ग होते हैं। एक दिन तुम्हें पता चल जायगा मैंने जो किया उचित किया। तुम मुझे ठीक तरह से समझ नहीं रही हो। मेरी शक्ति और दुर्बलता दोनों को तुमने नहीं पहचाना। मानव स्वभाव और चरित्र के अध्ययन में तुम्हारी गति नहीं है। तुम ऊपर की सतह पर तैरती रह जाती हो। तुम जुआरी की नशीली आँखों से जीवन को देखती हो—एक व्यापारी की दृष्टि से कहूँ तो उचित होगा। वैज्ञानिक की साफ और कठोर निगाह से देखने का तुम्हें अभ्यास नहीं।"

"आप जिस अंगहीन मनुष्यत्व की दुहाई देते हैं उसे मैं गलत और गुमराह समझती हूँ। आपने उसके कल्याण के लिए यह सब किया हो पर मैं इसमें उसका अकल्याण—उसका सर्वनाश पाती हूँ। आपके इस कृत्य ने इन्सानियत का सिर नीचा किया है।"

मोहन विचित्र हँसी हँसा। वह हँसी जो जीवन में हार भी बड़ी मानती है—जीत भी बड़ी मानती है। बोला—"तुम जो कह रही हो उसके तल तक कभी पहुँची हो? एक सस्ती प्रतिक्रिया ही क्या तुम्हारे इन उद्वेगपूर्ण शब्दों में नहीं गूँजती? मेरी असाधारणता एक दिन तुम्हारी समझ को चकाचौंध कर देगी। दो आत्माओं की इस भयंकर अशान्ति में जिस विशाल रस की सृष्टि होगी उसे तुम समझ नहीं पाती हो! मुझे हैरत होती है।"

"यह 'रसायन' की साधना आपको ही मुबारक। उठिए

वरना शाम हो जायगी।"

"मुझे लेख लिखने हैं! आज जाने दो। फिर कभी देखा जायगा।"

"आपके लेखों के कारण 'जागरण' को सरकार से चेतावनी मिल चुकी है—जमानत माँगी जा चुकी है इस बार जमानत जब्त होने की नौबत आ जायगी। उस पत्र की पाई पाई में मज़दूरों की छाती का खून है। आपकी लेखनी के अन्दर सचमुच आफत ढाने का 'डायनामाइट' है। आपकी कलम एक विराट प्रवर्तन का खाका खींचती है। वर्गचेतना और वर्गसंघर्ष का आपको खूनी अहसास है। इस आग से आप डरते नहीं?"

"जो आग से डरता है वह उसका इस्तेमाल नहीं कर सकता। मनसा—वाचा—कर्मणा जो आग को पृथक रखता है वह सृष्टि क्या करेगा? सृष्टिकर्ता तो आग से खेला करता है। ज्वालाओं के घरौंदे बनाता बिगाड़ता है वह।"

"मैं हाथ जोड़ती हूँ—आज वहाँ अवश्य चलिए। देखिए! हाथ जोड़ती हूँ। इन्कार न कीजिए।" तारा घुटने टेककर जमीन पर बैठ गई। उसकी आँखों में पानी भर आया था।"

मोहन ने विवशता से कहा—"चलो—मैं फौरन वहाँ से चल दूँगा। तुम्हारा परिचय हो जायगा। तुम बैठी रहना।"

"मैं आप के साथ चलूँगी और आपके साथ लौट आऊँगी। अधिक से अधिक एक घन्टा लगेगा।"

तारा दौड़कर एक पोटली ले आई। बोली—"आप कपड़े न बदलेंगे।"

"कोई जरूरत नहीं—इस बंडल में क्या है?"

"ममता के लिये कपड़े हैं। उसे मेरी भेंट स्वीकार करने में आपत्ति तो न होगी?"

"अगर हो तो लौटा लाना। जबर्दस्ती किसी को कुछ नहीं दिया जा सकता।"

तीसरे पहर ममता कमरे में बैठी पढ़ रही थी। नौक-

रानी नीचे जमीन पर बैठी दाल बीन रही थी। श्यामाचरण बाजार गए थे। ममता पढ़ते पढ़ते बीच बीच में खिड़की के बाहर दूर तक सूर्य की किरणों से उद्भासित दिगंत की मेघाकिंत शेष-सीमा पर आकाश के मिलते हुए होठों को देख लेती थी। कलरवहीन शान्त मकान जैसे एक मुमूर्ष और विवर्ण उदासी से साँय साँय कर रहा था। नीचे वही चिरपरिचित--आकुल वीणा का गुँजनभरा-सा स्वर सुनकर वह एक दम उठ बैठी। दासी से बोली—"बदलिया उठ! मेरे मोहन भैया आए हैं —जा बुलाला।"

बदलिया ने थाली एक ओर रख दी। चुपचाप नीचे चली गई। ममता ने पुस्तक आलमारी में रख दी। कमरे के बाहर दालान में आकर खड़ी होगई।

मोहन के पीछे तारा और सब से पीछे नौकरानी आ रही थी। ममता ने दोनों हाथ जोड़ते हुए कहा—"आओ भैया--आज सुबह से तुम्हारी याद कर रही थी। ये तारा हैं?"

"हाँ मम्मी! यही हैं। तुम अच्छी तरह हो? मुझे काम इतना है कि मरने की फुरसत नहीं। इन्हीं की जिद से आना पड़ा।"

तारा ने ऐसी खड़ी, उजली और हृदय से सीधी निकली वाणी सुनने की आशा न की थी। ममता ने वर्षों की परिचित सहेली की तरह उसका हाथ पकड़कर बगल में कुर्सी पर बैठाते हुए कहा—"मेरे पास बैठो बहन! तुमसे मिलने की बड़ी इच्छा थी। भैया को मेरी बात याद रह गई यह क्या कम है! देख पान बना ला। आज घर के बने पान खालो भैया! पैसे दे देना। बजाय तँबोली के मुझे मिल जाँयगे।"

मोहन सामने के पलँग पर इतमीनान से बैठ गया था। बोला—"कोई हर्ज नहीं। मुझे तो मोल लेना है। श्यामा बाबू कहाँ हैं? उनसे मेरा सलाम कह दिया था न!"

"मैंने कह दिया था भैया! मेरे ऊपर नाराज भी हुए थे कि मैंने तुम्हें उनके आने तक रोक क्यों न रक्खा। आज तुम्हें उनसे मिले

बगैर जाने न दूँगी। खाना तुम खाओगे नहीं। तारा खाँयगी। आराम से बैठो बहन !"

मोहन ने कहा—"तुम्हारे मकान में और कमरे हैं। मैं वहीं बैठकर अपना काम करूँगा। तुम तारा से बात करो। तारा को तुम जानती हो। वर्माजी के बारे में मैं तुम्हें सब बता चुका हूँ। आज वे हमारे बीच में नहीं हैं पर जेल की आत्मसंहारी कोठरी में बन्द उनकी आत्मा हमें प्रकाश का पथ दिखाया करती है। इनसे बात करके तुम्हें ज्ञान मिलेगा। मैं जाता हूँ—बैठक में बैठकर लिखूँगा।"

ममता की आँखें सहसा जलमय हो उठीं। कंपित कंठ से बोली—"तुम्हें यहाँ आने की क्या ज़रूरत थी? तारा मुझसे मिलना चाहतीं तो अकेले भी आ सकती थीं। तुम्हें मेरे पास बैठना तक सह्य नहीं!"

इस करुण कंठ की उपेक्षा मोहन कैसे करे। बोला—"मुझे व्यर्थ का अपराध न लगाओ मम्मी! केवल अपना काम करना चाहता हूँ। दो लेख पूरे करके रात को नौ बजते बजते प्रेस में देने हैं।"

तारा ने कहा—"आप कहीं न जाँयगे। लेख रात में पूरे करके सुबह प्रस में दीजियेगा—आप यहीं बैठिए।"

ममता ने अपनी रुलाई रोकने के लिए मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

तारा ने बात बदलते हुए कहा—"तुम्हारा मकान बहुत बड़ा है बहन। क्या तुम अकेले रहती हो?"

ममता ने अपना उदास मुँह तारा की ओर फेरकर कहा—"मेरी बुआ और जेठानी हैं। वे नीचे हैं। दो नौकरानियाँ हैं। मैं अकेली नहीं हूँ। वे भी शाम को आकर घर पर ही रहते हैं—कहीं जाते आते नहीं।"

तारा समझ न पा रही थी क्या बात करे। मोहन चुपचाप चारपाई पर पड़ा कमरे की तस्वीरें और आलमारियाँ देख रहा था। ममता की ओर देखने की उसकी हिम्मत न पड़ती थी।

ममता ने निस्तब्धता भंग करते हुए मोहन के मुँह की तरफ देखकर पूँछा—"भैया ! गाँव के कुछ समाचार मिले ?"

मोहन ने कहा—"नहीं—पर तुम्हारे पास चाचाजी का पत्र आया होगा । समाचार वहाँ होंगे ही क्या ?"

"मेरी विदा के सम्बन्ध में आया था । यहाँ से लिख दिया गया कि अभी नहीं हो सकती । मेरी इच्छा जाने की थी पर बोल क्या सकती हूँ । जो वह करेंगे वही मुझे करना होगा ।"

तारा ने पोटली खोलते हुए कहा—"ममता ! मैं तुम्हारे विवाह में न आ सकी थी। मोहन आते तो मैं साथ चली आती। तुम्हारे लिये यह मेरी तुच्छ भेंट है—स्वीकार कर मुझे आभारी बनाओ !

ममता ने मोहन की ओर देखते हुए कहा—"इन सब की आवश्यकता नहीं। आपने क्यों कष्ट किया ? आपका स्नेह मेरे लिए बहुत है। भैया तुमने मना क्यों न कर दिया—इन्हें लेकर आने की क्या जरूरत थी ? आप मुझे माफ करें।

तारा ने कुछ खिसिआये कंठ से कहा—"तुम न लोगी तो मुझे आन्तरिक कष्ट होगा। यदि मोहन भैया की अनुमति की जरूरत है तो दिलाए देती हूँ। मैं जानती हूँ—तुम्हें ज़रूरत नहीं है। पर मेरी भावना का तिरस्कार न करो—मैं बड़े उल्लास के साथ लाई हूँ।"

"मैं तिरस्कार नहीं करती बहन ! तुम मुझसे हर तरह से बड़ी हो । मैं सिर्फ कह रही थी —तुम्हारा स्नेह ही मुझे सुख पहुँचाने के लिये पर्याप्त है। क्या ज़रूरत थी इस बाह्य परिचय की।"

मोहन ने कहा—"ले लो मम्मी ! तारा तुम्हारे विवाह में भेजने के लिए कह रही थी। मैंने मना कर दिया। तुम यहाँ आ

रही हो तब भेजना व्यर्थ था। मैंने कहा—खुद मिलना और अपना उपहार देना। तुम दोनों की भेंट हो गई। तारा इस मामले में बड़ी भावुक है। मेरी कोई चीज़ होती — तुम न लेतीं तो मुझे दुख न होता। पर तारा को कष्ट होगा। यह सब लेना ही होगा बहन !"

"तुम्हारे भैया की अनुमति अब मिल गई—कैसे इन्कार करोगी। मै कुछ न कहूँगी।"

"अनुमति की बात नहीं बहन ! मैंने दिल की सच्ची बात कही थी। एक साड़ी और एक ब्लाउज लिए लेती हूँ। अब जिद न करना। मुझे इन्कार करना पड़ेगा—मैं दुखी होऊँगी।"

मोहन ने कहा—"तारा ! मम्मी ठीक कहती हैं। एक साड़ी और ब्लाउज देकर बाकी लेती चलो।"

तारा ने उदास होते हुए कहा - "यह शोभा नहीं देता कि मैं यह सब इनके लिए लाकर फिर वापस ले जाऊँ। आप अगर चाहेंगे तो ममता सब स्वीकार कर लेंगी।"

ममता ने कहा—"सब शोभा देता है बहन ! तुम्हारी भावना एक साड़ी से व्यक्त होती है—एक दर्जन से भी। मेरे निकट उसी का महत्व है। तुम कुछ न कहो। भैया के कहने से शायद तुम लाई हो। अब मेरी बारी है। मैं उनसे कहला दूँगी—तब तो वापस ले जाओगी।"

मोहन ने कहा—"कोई हर्ज नहीं तारा !—वापस ले चलो। इस बार मैं लाद लूँगा—आते समय तुम लाई थीं !"

तारा ने हँसते हुए कहा—"मैं जानती थी आप उन्हीं का पक्ष लेंगे। आप मेरा साथ देते ही कब हैं ?"

बदलिया पान बनाकर ले आई। मोहन ने पान खाते हुए उससे कहा—"तुम पान के बीड़े जोड़ती जाना। पैसा याद करके ले लेना। अक्सर मैं पैसा देना भूल जाता हूँ।"

ममता ने तारा के लिए नाश्ता लाने को कहा। तारा चुपचाप

बैठी इस प्रखर स्वभाव वाली देहाती लड़की को देखती रही।

मोहन ने कहा—"मम्मी! तारा से मेरा कुछ छिपा नहीं—इनके सामने तुझे बातचीत में संकोच करने की जरूरत नहीं। मुझे लगता है तू जैसे संकोच कर रही है।"

"संकोच करने योग्य मेरे पास है क्या ? न कभी था—न होगा।"

तारा ने कहा—"तुमको लेकर मोहन से घन्टों मेरी बहस हुई है। इनकी महानता है जो मुझ जैसी स्वल्प-परिचिता को इन्होंने बिना हिचक—संकोच के इतना बड़ा रहस्य बता दिया—पर मैं तुम्हारी कठिनाई समझती हूँ। तुम मेरी जाति की हो—मेरे सामने तुम्हें संकोच होना स्वाभाविक है।.............."

ममता की समझ में कुछ आ रहा था—कुछ नहीं। बोली—"ऐसी बातों से मुझे बड़ा वैसा लगता है। भैया से न मैंने आज तक दुराव किया है—न मेरे द्वारा यह संभव है। आपको उन्होंने क्या बतलाया है—क्या नहीं यह मैं नहीं जानती—न जानना ही चाहती हूँ। यह आपका उनका व्यक्तिगत सम्बन्ध है। मेरी ओर से आप न कुछ आशंका करें—न मुझसे कुछ कहें।"

मोहन को लगा जैसे वह नींव की नींव जिस पर इस अभिमानिनी नारी ने अपना स्वप्न खड़ा किया था हिल रही है। उसे अपने ऊपर क्रोध आया—उसने क्यों यह प्रसङ्ग शुरू किया।

तारा भी चुप रह गई। बदलिया तश्तरी में नाश्ता ले आई थी। ममता ने टेबिल के बीच में तश्तरी और पानी का गिलास रखते हुए कहा—"आओ बहन! हम लोग कुछ खा लें। तारा को आश्चर्य हुआ कैसे जो कंठ दो मिनट पहले इतना कठोर था एकाएक सहज और जलसिक्त हो उठा। चुपचाप ममता के पास बैठ गई। दोनों ने खाना शुरू किया।

तारा ने मोहन की ओर देखकर कहा—"क्या आप न खाँयगे ? आप को शायद पूँछा ही नहीं गया।"

ममता ने एक समोसा काटते हुए कहा—"मैं जानती हूँ वे न खायेंगे—पूँछने की जरूरत क्या है। छोटी बहन के यहाँ खाने से पाप जो लगेगा। मगर भैया ! पहले तो तुम ऐसे लोगों का मजाक उड़ाया करते थे—कहते थे सब ढकोसला है। जब तुम्हारी बारी आई तो वही मान्यतायें पालने लगे। तुम्हारी लीला भी अपरम्पार है भैया !"

मोहन जोर से हँस पड़ा। ममता ने वैसे ही स्निग्ध कोमल कंठ से कहा—"भैया कब क्या कहेंगे—क्या करेंगे यह बताया नहीं जा सकता। तुम इनके मन की स्थिरता पर विश्वास न करना बहन ! कब इनका कौनसा विचार किस तरह बदल जायगा—किस ओर इनका मन दृढ़ हो जायगा यह स्वयं इनके लिए अकल्पनीय है।"

तारा ने कहा—अभी तक मुझे ऐसा अवसर नहीं आया। आगे की बात कौन जानता है जो कहे......"

"तुम्हें पूरा साल भी इनके साथ रहते और काम करते नहीं बीता। मैंने दस साल इनके साथ बिताए हैं। जितना मैं इन्हें जानती हूँ उतना माता भी शिशु को न जानती होगी। जो अपना जीवन स्वयं न पाकर किसी को दे देना चाहता है—इस तरह जैसे उसे कुछ मिलेगा ही नहीं—वह कब कितने बोझ अपने ऊपर से उतार देगा—कब कितने नये बोझ चढ़ा लेगा यह कैसे कहा जाय। जीवन विचित्रता का दूसरा नाम ही तो है......"

तारा ने पानी पीकर रूमाल से हाथ पोंछते हुए कहा—"ठीक कहती हो बहन !"

मोहन चुपचाप लेटा दोनों रमणियों की बातें सुन रहा था। ममता ने कहा—"जो अपने व्यक्तिगत जीवन को समष्टि के जीवन का अंग बना चुका हो—जिसे अपने जीवन के प्रति वह मोह नहीं जो उसे औरों से विशिष्ट बनाता है उस से शिकायत कैसी ? जिस आँच में इनकी आत्मा प्रतिक्षण जलती रहती है वह मेरे लिये अपरिचित

नहीं है। अपने आप पर मेरा विश्वास भले टूट गया हो मगर इन पर बराबर दृढ़ होता गया है।"

मोहन ने कहा—"मम्मी ! तुम चाहती हो मैं श्यामाबाबू से मिलकर जाऊँ तो मुझे नीचे बैठक में जाने दो—मैं लिखने के 'मूड' में हूँ। वहाँ जाकर लिख डालूँगा। फिर आकर तुम्हारे पास बैठूँगा। तुम्हें पता नहीं मेरी जिम्मेदारी क्या है। मेरे कारण पत्र को सरकार से चेतावनी मिल चुकी है। मेरा समय पर मैटर न देना उचित नहीं लगता।"

ममता ने एक अत्यन्त उजली दृष्टि डालते हुए कहा—"जाओ भैया! नीचे कुर्सी टेबिल है—कलम दावात कागज अभी भेजती हूँ।"

"कलम मेरे पास है। कुछ शीट कागज भेज दो।"

मोहन नीचे चला गया। तारा एक भेदक—फिर भी निर्बल—कुछ कुछ झुँझलाई दृष्टि से सब देख रही थी। ममता को अकेले पाकर बोली—"तुमने रोका क्यों नहीं—लेख लिखने की जल्दी क्या थी। रात को लिख लेते—कल लिख जाता।"

ममता ने कहा—"क्या जरूरत है बहन! पहले काम है—बाद में और कुछ। इनका सदैव यही हाल रहा है। एक बार की बात बताऊँ—सुनकर सहसा विश्वास न करोगी। गाँव में एक लड़के को काले साँप ने काट खाया था। सावन-भादों के दिन थे। जमना का लबालब भरा पाट एक मील चौड़ा था। शाम से इन्हें बुखार था—सिर्फ मैं जानती थी यह। आठ या नौ बजे होंगे—भयानक काली रात थी कगारे टूटते थे। एक भी नाव इस पार न थी। उस पार के गाँव में झाड़नेवाला रहता था। दवा दी गई। इन्होंने खुद लड़के का घाव काटकर लाल दवा भरी। पर उसकी हालत खराब होती गई। उसकी बेवा माँ ने रोकर कहा—कोई अगर उस पार से झाड़ने वाले को बुला लाता तो मेरा लाल बच

जाता। विधवा का अकेला लड़का था। उसने चक्की पीस पीसकर पाला था। उसकी गोहार से आस्मान का दिल फटता था। हम लोग सब जमा थे। मैं तब छोटी थी। ये उसी साल मिडिल पास कर हाई स्कूल में गए थे। किसी से बिना कुछ कहे मुझसे बोले—मम्मी मैं जाता हूँ—तू अभी कुछ मत कहना। आध घंटे बाद चुपके से उसे बता देना—भैया गये हैं और झाड़नेवाले को लेकर लौटेंगे। मैंने रोकर इन्हें रोका। देह गरम थी। बहुत मना किया पर न माने। तैरकर एक मील जाना था। तीर की तरह भागे। तीन घंटे में दोनों भीगे हुए आए। लड़का तब तक मर चुका था। झाड़ने वाले ने कहा—अगर एक घन्टे पहले आता तो भी कुछ कर सकता था। बाद में भैया दस बारह दिन तेज बुखार में पड़े रहे। वह झाड़नेवाला कहता था—रात को जब ये काँपते हुए पहुँचे और मुझे जगाया तो मैं हैरान रह गया। नाव नहीं थी। पर इनकी तत्परता और पर-हित-कामना देखकर वह तैरता हुआ इनके साथ चला आया था। कैसी भयानक रात थी वह! वहाँ से आकर रात भर मेरे ही घर पड़े रहे थे। घर भर की रजाइयाँ और कम्बल इन पर छोड़े जाते थे पर सरदी का लहरा न जाता था। अभी तुम इन्हें जानती नहीं। देवताओं में भी यह साहस कम देखा गया है।"

तारा ने कहा—"वह लड़का जीवित हो जाता तो इन्हें कितना सुख मिलता।"

"यही तो इन्हें कलक रह गया। मंत्र वगैरह पर इनका विश्वास है नहीं। यह तो 'पोटेशियम परमैगनेट' भरकर सन्तुष्ट थे। उसकी माँ के रोने और गोहारने पर गए थे। कई महीने बाद वह झाड़नेवाला बीमार पड़ा और मर गया। मरने के पहले इन्हें बुलवाया और बोला—तुम्हें सामने देखता रहूँगा तो मेरी मुक्ति हो जायगी। पिताजी इन पर इतने नाराज हुए कि कहने की बात नहीं! वे दस बारह दिन ऐसे भयंकर कष्ट में इन्होंने बिताए कि क्या

बतलाऊँ !"

ममता ने फिर कहा—"तुम मुझसे ज्ञान, वय, शिक्षा, अनुभव—सब में बड़ी हो। तुम्हें मैं क्या बताऊँ ! मुझे लगता है करोड़ों वर्षों से मानव की एक साधना—चेष्टा—एक श्रमशीलता रही है। जीवन का यही निश्चयात्मक आधार उसने अधिकाधिक दृढ़ किया है कि या तो वह सुख पाले या उसकी कामना खो दे। पर इन दोनों में वह असफल होता आया है। भैया ने दूसरे का उपकार करने में ही सुख माना है। पर ये इतने गरीब और साधनहीन रहे हैं कि अपने शरीर से छोड़कर और किसी प्रकार कभी दूसरों की सेवा न कर सके। यह कामना भी इनके छोड़े नहीं छूटती। मुझे लगता है इसी कामना के चिथड़ों से लिपटे लिपटे इनके प्राण जाँयगे।"

ममता ने कुछ रुक कर कहा—"खाना तुम मेरे साथ खाओ। मेरे पति से भी मिल लो। तुम्हें देखकर वे प्रसन्न तो न होंगे पर कोई हर्ज नहीं। तुम क्या खाओगी ? मैं वही बनवाऊँ। हम लोग शाम को पूड़ी या पराठा खाते हैं।"

"जो होगा खा लूँगी। मुझे एक प्याला चाय मिल जाती तो अच्छा होता।"

"अभी बनवाती हूँ। क्या भैया भी चाय पीने लगे हैं ? पूँछ कर ही क्या करूँगी ? वे तो पियेंगे नहीं। पड़ोस के किसी मकान से उनके लिये मँगवा देती। पास में कोई होटल भी नहीं है।"

"वे नहीं पीते—यों कभी कभी की बात दूसरी है। मुझे यह नशा जरूर है।"

"नशा कैसा ? घर में जैसा सब करते हैं वैसा लड़के लड़कियाँ भी करते हैं। मेरे माता पिता पान बहुत खाते हैं—भैया के भी। नतीजा यह हुआ कि भैया बहुत खाते हैं। मैं भी खाने लगी थी। एक दिन पढ़ाते पढ़ाते बोले—तू पान न खाया कर। तेरे दाँत

गन्दे लगते हैं—कुन्दरू जैसे लाल लाल। उस दिन से मैंने बिलकुल छोड़ दिया। कभी इच्छा भी नहीं होती। मेरे पति भी बहुत पान खाते हैं—एक दिन मुझे खिलाने की जिद करने लगे। मैंने साफ कह दिया—मेरे भैया ने एक बार मना कर दिया था—तब से मैंने छोड़ दिया है। आप जिद न करें।"

तारा ने पूँछा—"तुम्हारे पति मेरा परिचय पाकर अप्रसन्न क्यों होंगे। मैंने उनका क्या बिगाड़ा है?"

"बिगाड़ने की बात कुछ नहीं। उन्हें औरतों की स्वतन्त्रता—उनके स्वच्छन्द रूप से बाहर घूमने फिरने पर आपत्ति है। उनका यह पीढ़ीगत, वर्गगत और संस्कारगत विश्वास है कि बाहर घूमने फिरने वाली औरतें बिगड़ जाती हैं। उस दिन जब भैया आये थे तब मैंने उन्हें बताया था। कहते थे......... ....."

"क्या कहते थे? कहो न! तुम्हारे पति का यहाँ व्यक्तिगत प्रश्न नहीं है। प्रश्न है एक 'टाइप' का। तुम्हारे पति एक 'टाइप' हैं। समाज के मध्यवर्ग की दीवारें आज हिल रही हैं। झूठी नैतिकता के नारे लगाकर वह बढ़ती हुई सामाजिक स्वतन्त्रता, श्रमसत्ता और साम्यवाद की लहर को रोकना चाहता है जो रुकने की नहीं। उनकी मान्यतायें आज ढह रही हैं—उनका अपने ऊपर से विश्वास चला गया है। इस विराट शोषण में गाय के बछड़ों की तरह थोड़ी सी बूँदें वे भी पा जाते हैं—उसी का नमक बजाया करते हैं।"

"ठीक है बहन! इसीलिए तुमसे सब कह देने में मुझे रंच मात्र संकोच न हुआ। मैं भी तुम्हारे विचारों और विश्वासों में पली हूँ। मेरे पिता नये विचारों के हैं और भैया के साथ गाँव के सब कामों में उनका पूरा सहयोग रहता था। भैया के ज्ञान के विपुल प्रकाश के नीचे मेरा निर्माण हुआ है। मुझे भी अपनों में से एक समझो! शायद किसी दिन मुझ में इतना साहस आ जाय कि मैं तुम्हारी तरह इस नई इमारत की एक ईंट बन सकूँ।"

"जरूर बनोगी बहन! तुम जैसी लाखों—करोड़ों बहनें आज

इस नए आलोक का स्वागत कर रही हैं। हमें एक दिन तुम्हारा पूरा और सक्रिय सहयोग मिलेगा। एक बड़ी आत्मा के प्रभाव की परिधि में पलकर यदि तुम ऐसी न बन सको तो तुम्हारा और हमारा दुर्भाग्य होगा।"

"मैं तो कहीं की न रही बहन! आज जिन लौह बन्धनों में मुझे बाँध दिया गया है वे आजीवन मुझे अधिकाधिक जकड़ते रहेंगे। मैं तो एक यन्त्र बनकर रह गयी! मेरा सारा अस्तित्व एक महान निष्फलता की भूमिका है। मैं जिसे 'मैं' कहती हूँ उसका जैसे अर्थ ही नहीं समझती—मेरी समझ में ही नहीं आता। मेरी सारी चेतना जैसे एक ठंडे विद्रोह में जकड़ी पड़ी है... . ... ... ... ... ... ..."

× × ×

बदलिया चाय लेकर आई। एक ही प्याला देखकर तारा ने कहा—"तुम न पियोगी?"

ममता ने कहा—"मैं नहीं पीती।"

"मेरे कहने से आज पी लो।"

"एक प्याला और दे जा। जल्दी। बड़ी बहू से कह दे—तारा बहन खाना खाँयगी। तू भी उनके पास बैठ जाना। शायद कोई काम लग जाय।"

दोनों चाय पीने लगीं। ममता ने कहा—"चाय में स्वाद तो विशेष नहीं होता पर आप लोग पीती हैं—शायद कुछ ताजगी आ जाती है।"

"यही बात है बहन! हम लोगों का दिन दिन भर का—दौड़-धूप का काम रहता है। थकने पर एक प्याला पी लेने से तबियत में स्फूर्ति आ जाती है।

तारा ने चाय पीते पीते पूँछा—"तुम्हारे मोहन भैया ने तुम्हें पढ़ाया लिखाया। माफ करना! मैं व्यक्तिगत बात कहने जा रही हूँ। उनके सामने होने पर शायद न कह पाती। वे इस समय नहीं हैं—मैं तुम्हारी जात की हूँ। उनके सामने मैं

जितना संकोच मानती—उनके यहाँ न होने पर उतना ही असंकोच मानूँगी। उन्होंने मुझे बतलाया कि तुम............"

"उन्होंने ठीक कहा। उनकी आशा—उनकी भौहों का एक संकेत पाकर मैं क्या नहीं कर सकती ? उनके एक इशारे पर मैं जीवन—जगत और समाज का सारा मोह तोड़ सकती हूँ—उनके कहने पर मैं मिट्टी की तरह मर भी जा सकती हूँ। वह सदैव वही करेंगे या मुझसे करने को कहेंगे जिसमें मेरा कल्याण हो। ऐसे हितचिन्तक की कोई भी बात मैं बिना हिचक अपने गले के नीचे उतार सकती हूँ। उनका आदेश पाने पर बड़ा से बड़ा पातक आँख खोले खोले निगल सकती हूँ। मेरे सब कुछ का अन्त उन्हीं पर आकर होता है—मेरा सब कुछ जाकर उन्हीं में तो मिलता है। मेरे हाथों में तृप्ति के जो दो चार साधारण उपकरण हैं वे अन्त में उनके ही निकट अपनी मुक्ति पाते हैं। तुम्हारी कही--अधकही बात मैं समझ गई। उसे हफ्तों--महीनों मैंने तुम्हारे तरह—तुम्हारे ही ढंग से सोचा है। मैं जानती हूँ मैं कितनी दीन और साधनहीन हूँ। मैं सोचती हूँ सम्पूर्ण हृदय से उन्हें देश के हाथों सौंपकर मैंने उचित किया है। उनकी शक्ति स्थान की कमी से—प्रसार के अभाव से वहाँ तकलीफ न सहेगी...... ..।

"और रह गई मैं ! मुझमें न शक्ति है—न साहस। मुझे लगता है और ठीक लगता है मैं उनके पैर की जन्जीर बनकर ही रह जाती। उन्हें ऊपर उड़ा लपट की तरह कभी कभी भड़का जरूर सकती थी पर कुटिया के दीपक की तरह स्नेहिल—स्थिर ज्योति से उनके जलते रहने का विधान नहीं बन सकती थी। आज मैं अभागिन हूँ पर पापिनी नहीं। जो सब का है—सारे समाज का—सारे विश्व का—सारी मानवता का है उसे अपने तक ही सीमित कर लेने का अपराध मुझ पर कोई नहीं लगा सकता। मेरे प्यार और भक्ति के छोटे से नीड़ में उनके डैने बराबर फड़फड़ाते रहते। आज मैं उन्हें यदि इस नील आकाश के विमुक्त विहार से वंचित करके अपने

"पिंजड़े में बन्द कर लेती तो मैं जितना कुछ पा जाती उसका हजार गुना विश्व का खो जाता। यह सब मैं पहले अपने स्वार्थ में अन्धी होकर समझ न पा रही थी। आज जब यह मेरी समझ में आ रहा है तब अपनी निगाहों में मैं स्वयं ऊँची उठती जाती हूँ।"

"तुम्हें जो भयंकर आत्मिक यन्त्रणा मिल रही है—मिलती रहेगी उसे भी सोचा समझा है? तुम्हारी जिन्दगी जो जलकर खाक होती जाती है क्या असत्य है—मिथ्या है—भ्रम है—छलना है?

"वह सत्य है पर मेरे निकट—विश्व के निकट नहीं। इस जलन में—जलते जाने में—अकथ आनन्द है। पहाड़ से टकराकर भागते हुए जीवित बादल की भाँति मैं अनुभव करती हूँ जैसे एक अनन्त को छूकर दूसरे अनन्त को पार करने जा रही हूँ। मेरे हृदय की समस्त भावनायें एक छोटे से बिम्ब पर केन्द्रित हो गई थीं। आज वे इस सिमटन से मुक्त होकर विपुलता के विस्तार में फैलती जाती हैं। संसार में सदैव परिवर्तन हुए हैं—राजक्रान्तियाँ हुई हैं--मानवता समता, मुक्ति और प्रगति की ओर अग्रसर हुई है। उस समय मेरी जैसी हतभागिनियों और सौभागिनियों ने ही आत्मदान करके जनजीवन के प्रशस्त पथ को सँवारा है। आज मैं सब समझ रही हूँ—एक स्पष्ट आइने की तरह सब देख रही हूँ।"

तारा ने निष्ठुरता से कहा—"यह तुम्हारी आँसू पोंछने वाली बातें हैं। तुमने अपनी ओर से उन्हें पाने में कोई यत्न न छोड़ा। अन्त में तुम्हें निराशा हुई जिसकी प्रतिक्रिया तुम्हारे वर्तमान जीवन में है। जो ज्ञान और प्रकाश तुम्हें आज सूझ रहा है वह उस समय न सूझा था। क्या तुमने अपनी इच्छा से उन्हें छोड़ा?"

"बहन! तुम बहुत स्थूल दृष्टि से देखती हो। शायद भौतिकवाद की अतिशयता के कारण हार्दिक सूक्ष्मता और आत्मा के संवेदनों पर

तुम्हारा विश्वास नहीं। पर एक बात तुम्हें बता दूँ—विश्वास कर सको कर लेना। मेरा और उनका अब अलग अस्तित्व नहीं रह गया। मैं उन्हें अपनाती—वे मुझे त्याग देते यह ठीक वैसा थां जैसे वह मुझे अपनाते और मैं उन्हें त्यागती। तर्क यहाँ मौन है—मनोविज्ञान यहाँ धुँधला पड़ जाता है। इसे मैं समझा नहीं सकती—साबित नहीं कर सकती। पर उन्होंने जो जो कहा—सब मैं सहज में या विवशात मानती गई—क्यों? इसके मूल में जीवन का सब से निगूढ़ तत्व है। हमारा उल्टा—बाहरी वैपरीत्य देखकर अपनी धारणा न बना लो। हम लोग उस भूमि पर पहुँच गए हैं जहाँ जो उनका है वही मेरा सर्वस्व है। वीणा के तार जब काँपते हैं तो झङ्कार किसी एक तार की नहीं होती। वह सब की होती है। इस समस्तता में ही संगीत का सौंदर्य है।"

ममता ने दो मिनट रुककर वैसे ही कहा—"यदि उनकी आत्मा का तार मेरे भीतर न बज उठता—यदि उस अपर शक्ति का अवतरण मेरे अन्दर न होता तो क्या मैं उनकी बात मान सकती—क्या वे मुझसे अपनी बात मनवा सकते? संसार की कौन भौतिक शक्ति मुझे उनसे अलग कर सकती थी—तुम न समझो—न विश्वास करो—पर मैं जानती हूँ। मैं जानती हूँ—इसलिए मानती हूँ। मानती हूँ—इसलिए जानती हूँ। उस दिन भैया ने आकर कहा—मैं अपने पति को अपना तन न देकर गलती कर रही हूँ—मुझे ऐसा न करना चाहिए। मैंने उसी महान प्रेरणा की पुनरावृत्ति अपने अन्दर पाई। मेरे सन्देह—मेरे शंकायें—मेरी विस्मय का निराकरण हो गया है। मुझे उस दिन की प्रतीक्षा है जब यह वेदना—यह उन्मादक आत्महिन्सा सजीव और यथार्थ होकर उन्हीं के चरणों का अनुसरण करेगी।.........."

मोहन एक गीत की कड़ी गुनगुनाता हुआ आ गया।

कमरे में अँधेरा देख बत्ती जलाता हुआ बोला—"एक लेख

खत्म होगया । यहाँ से जाकर प्रेस में दे दूँगा । दूसरा नहीं चलता--बारह बजे तक लिख जायगा । तुम दोनों खूब बात करती रही! श्यामा बाबू नहीं आए ? मम्मी चुप क्यों बैठी है ? कुछ बोल—कुछ बात कर । नीचे के सुनसान से आकर फिर सुनसान में बैठना कष्टकर है ।"

मैं अभी बोल रही थी--अब क्या बोलूँ ? तारा से आज इतनी बात की । मन में सोचती होंगी—बड़ी बातूनी है ।"

तारा कुछ बोली नहीं । सोच रही थी—इस रहस्यमयी नारी के जीवन का मूलाधार कहाँ है । कौन है जो भीतर के सब बिखरे हुए छिन्न भिन्न स्रोतों को थामकर एक अविभाज्य, अटूट, अकाट्य और अद्भुत बल देता है ? कहाँ से यह विश्वास का प्रवाह चलता है जो इसके भीतर की समस्त आँधियों को थामे रहता है ! ममता के ललाट की आश्चर्यमय निर्दोष सुन्दर गठन को देखते हुए वह इसी बात की मीमाँसा कर रही थी । किसी से शिकायत नहीं—किसी के प्रति विरक्ति नहीं । पर आग की जिन लपटों में वह साँस ले रही है उनका दाह तो छिपाए नहीं छिपता । तो इस जीवन के पीछे वह क्या है जो महासागर के गम्भीर गर्जन सी आस्था लिए सुननेवाले के मर्म को ऐसी तीव्रता से बिद्ध कर देता है ! क्या यह सब आत्मप्रवंचना और परप्रवंचना ही है ! जिसकी उसने आशा की थी तो कुछ सुनने को न मिला । नारी का दीन, अकिंचन--अशेष कातरता-दग्ध रूप देखने और अनुनय के स्वर सुनने की उसने आशा की । पर उनका कहीं नाम निशान न था । थी एक अविराम निष्ठा—एक दुर्दम्य प्रेरणा । भग्न जीवन के सारे अस्पष्ट संकेत--अवरुद्ध पुकारें खोई उत्तेजनायें ममता सह चुकी । बड़ी बात यह कि उसमें सत्य को सब ओर से सह लेने की शक्ति आ गई थी । वह एक तूफानी समुद्र को पारकर किनारे पर वनदेवी सी खड़ी-किरणों में नहा नहाकर मुस्करा रही है । वह सम्पूर्ण है—मुक्त है—नारी है ।

मोहन ने कहा—"तारा! तुम ममता से ज्यादा गंभीर हो। कारण क्या है? तुम लोगों को क्या हो गया? आज मैंने बड़े कड़ा लेख लिखा है। बहुत मैं इसे 'माइल्ड' करूँगा—ज्यों का त्यों छप गया तो गजब हो जायगा।"

ममता ने कहा—"भैया! तुम्हारे लिखे दो तीन अधूरे उपन्यास भी हैं। पूरे हुए या नहीं? तुम्हारे लेखों की कुछ कापियाँ मेरे पास थीं—जो तुम मुझसे ले गए थे। बहन! तुमने देखीं या नहीं! मैं ज्यादा समझती बूझती नहीं पर इनकी शैली में प्रचंड प्रवाह होता है—एक तेज रहता है जो आग लगाता है पर प्रकाश भी देता है। मुझे भैया स्वयं पढकर सुनाया करते थे। सुन सुनकर मैं न जाने कहाँ की—आकाश पाताल की बातें सोचने लगती थी।"

"गाँव में पड़ी हैं। दो चार तेरे घर—चाचाजी के पास हैं। लिखने की ओर मेरी प्रवृत्ति आरम्भ से रही है। अब यह सब करने की इच्छा नहीं होती—पैसे के लिए लिखना पड़ता है। लिखने की अपेक्षा पढ़ने में मन लगता है या सभाओं में बोलने और क्लास लेने में।"

ममता ने कहा—"मैं नहीं मानती। लिखना यानी साहित्य-सर्जना ऊँची बात है। संसार में उससे बड़ी उपलब्धि भी कोई है—मैं नहीं जानती। राजनैतिक कार्यकर्ता—क्रान्तिकारी जनसेवक बहुत होते हैं—हो सकते हैं। लेखक और मानवता के भविष्य के उपकरण गढ़नेवाला लेखक एक घटना है मैं तुमसे कहूँगी—अपनी प्रतिभा कुन्ठित न होने दो। यह सब तो करोगे हीं—अपने उपन्यासों को पूरा कर डालो। पर तुम्हें, अवकाश मिले तब न!"

"तू जान गई मम्मी! अवकाश मुझे मरने तक का नहीं।"

सीढ़ियों पर जूतों की आवाज सुनाई दी। ममता ने घड़ी की ओर

देखते हुए कहा—"आज कुछ जल्दी आ गए। अच्छा हुआ—देर होती तो भैया ऊबने लगते।"

श्यामाचरण ने कमरे में प्रवेश किया। देखते ही मोहन ने चारपाई से उठकर नमस्ते किया। ममता को कहने का अवसर न देकर बोला—मेरा नाम मोहन है। मैं बीच में एक दिन और आया था। दो घन्टे बैठा रहा—आप से मुलाकात न हुई। आज तय कर लिया था आपसे मिले बगैर न जाऊँगा।"

श्यामाचरण अपनी टोपी और बन्द कालर का कोट खूँटी पर टाँगते हुए बोला—"आप आए थे—मैंने सुना था। इनसे पूँछा भी था कि आपको रोका क्यों नहीं। उस दिन आपने खाना भी नहीं खाया। आज बैठिए।"

"जी—"मोहन ने विवश कंठ से कहा—मुझे कोई आपत्ति नहीं है पर ममता मुझसे छोटी है। मैं मजबूर हूँ—आप इस सम्बन्ध में न कहें। मम्मी! थोड़े पान मँगवा दो।

"अच्छा भैया!" ममता ने उल्लासपूर्वक कहा। पति के सामने अपने और मोहन भैया की निकटता का खुलना देखकर उसे अलौकिक पुलक-संचार हो रहा था। उसने नौकरानी से पान लाने के लिए कहा।

श्यामाचरण ने तारा को अब तक न देखा था। उसकी ओर दृष्टि जाते ही उसने कुछ चौंककर कहा—"आपको तो मैंने देखा है!"

तारा ने दुष्टतापूर्वक मुस्कराकर कहा—"मेरा नाम तारा है—इसी शहर में रहती हूँ। आपने मुझे मोहन बाबू के साथ देखा होगा।"

"आप..........आप वर्माजी की बहन हैं। आप तो यहाँ मजदूर सभा की.........।"

"जी—मैं वही हूँ।" तारा ने फिर शरारतभरे स्वर में कहा। मोहन बोला—"मैं आपके साथ रहता हूँ। आज कल वर्माजी जेल में

है। आप को तो मालूम होगा।"

"सुना था! आप वर्माजी के मकान पर रहते हैं। यहाँ पढ़ते हैं न? इन्होंने मुझे बताया था।"

"आया इस इरादे से था। मगर अब छोड़ दिया है। अब मैं —मजदूरसभा में काम करता हूँ। मैंने देख लिया पढ़ना और देशसेवा दोनो साथ नहीं चलते।"

श्यामाचरण ने एक गहरी—कुछ कुछ असंस्कृत दृष्टि से तारा की ओर देखकर कहा—आपके भाई साहब से मेरा परिचय है—आपसे भी हो गया। आप तो हमारे शहर की खास लीडरानी हैं। मोहन बाबू भी मशहूर हो गये हैं। जुलाई में आए थे न?"

"जी हाँ! आपकी शादी में मैं पहुँचता पर यहाँ काम ज्यादा था। मेरे माता पिता वहाँ थे। ममता से मेरा घर का सम्बन्ध है। मैंने इसे पढ़ाया लिखाया भी है—यह सब भूल तो नहीं गई।"

"आप इनके गुरू हैं—फिर आपको शिष्या के यहाँ खाने पीने से परहेज न करना चाहिए। आप लोग तो 'फारवर्ड' हैं—पुराने ढकोसलों में क्या रक्खा है?"

यह व्यक्तिगत बात होती है—आप इसके लिए न कहें।"

"तारा देवी तो खाँयगी या आप के नाते छोटी बहिन मानकर ये भी न खाँयगी। हम लोगों में बड़ी बहन भी छोटी बहिन के घर नहीं खाती।"

"चाहिए मुझे भी यही"—तारा ने व्यंगपूर्वक कहा—"मगर मैं नालायक हूँ—खा लूँगी। खाना मेरे लिए बन रहा होगा। ममता को पहले से ही ख्याल था।"

"मैं मुँह हाथ धोकर आता हूँ। आप का पान नहीं आया मोहन बाबू! मैं जाकर भेजता हूँ। इन्हें तो कुछ ख्याल नहीं।"

ममता उठी और जाकर पान ले आई। श्यामाचरण कमरे के बाहर जा चुके थे।

हाथ मुँह धोकर वे कुछ देर में आगए। तारा का खाना कमरे

में आ गया। ममता ने भी अपनी थाली वहीं मँगा ली। श्यामाचरण मोहन से इधर उधर की बातें करते रहे। बातचीत के सिलसिले में मोहन ने कहा--हम लोगों का कुछ ठीक नहीं— किसी दिन बाहर जाना पड़ सकता है। एक पैर हमेशा जेल में समझिए। हम लोग तो सरकार के खास दुश्मन हैं — [स।"

श्यामाचरण भी शहर की राजनीति में दिलचस्पी लेते थे। बोले— "आप लोगों ने तो आज कल बड़ी सनसनी फैला रक्खी है। मिलों में हलचल मची है--उथल पुथल जारी है। मजदूरों की माँगें बढ़ती ही जाती हैं। एक माँग पूरी की जाती है तो दूसरे दिन दूसरी तैयार हो जाती है। मिलें कोई कल्पवृक्ष नहीं हैं। जिनकी पूँजी लगी है उनकी मर्जी पर चलना ही होगा। आप लोग मजदूरों को भड़काते हैं—सुना है रात में गुप्त रीति से सभायें करते हैं जिनमें बड़ी भीड़ें होती हैं--खुल्लमखुल्ला बगावत का एलान किया जाता है। आम तौर पर लोगों को आपसे बड़ी शिकायतें हैं! लोगों का कहना है—आपके आने से यहाँ और आग लगी है। मिलमालिकों और मजदूरों के बीच की खाई बराबर बढ़ती जाती है। सोचिए हड़तालें शुरू होने पर किसका नुकसान होगा? मजदूर ही तो भूखों मरेंगे। बाहर से मजदूर बुलाए जाँयगे तब आप लोग धरना देंगे। यह सब ज्यादती है न!"

मोहन और तारा ने ऐसी बातें सुनने की आशा न की थी। लज्जा और क्षोभ से ममता का चेहरा बिगड़ रहा था। दोनों खाना खा रही थीं। पीठ मोहन और श्यामाचरण की ओर थी। मोहन ने कहा—"आप केवल एक पहलू देखते हैं। यह कहाँ का न्याय है कि जिनके श्रम से ये बड़े बड़े व्यवसाय—ये महान मिलें—यह भारी पूँजीवादी व्यवस्था चल रही है उनका इस प्रकार शोषण किया जाय? मजदूर चाहते हैं उनके साथ पशुओं जैसा व्यवहार न हो--उन्हें भी इन्सान समझा जाय। मन्दी के बहाने मजदूरों को काम से हटाया न जाय—मिलों में उन्हें काम दिया जाय और फिर से

रक्खा जाय। मजदूरी में किसी प्रकार की कमी न की जाय—मजदूरी के समय के साथ तरक्की की दर मुकर्रर की जाय। किसी मजदूर को सजा देनी हो तो उनकी पंचायत से इसका फैसला हो। जिनके पेट पहले से ही खाली हैं उन मजदूरों पर जुल्म न हों। आपकी आराइशों और विलास के लिये हमें अपनी सूखी रोटियों से क्यों वंचित किया जाय ? हम इस अन्याय का प्रतिकार करेंगे। खाली बातें करने और व्याख्यान देने के दिन अब नहीं रहे। अब संघर्ष होगा और हमारी लाशों पर इस महान प्रश्न का निपटारा होगा। तेजी के समय हमारी मेहनत से जो लाभ उठाया गया वह आज कहाँ है ? मन्दी के समय मालिकों के मोटे मोटे मुनाफे में कभी कमी नहीं की जाती—जिनके पास गुजारे के लिए कोई कमी नहीं। हमारी गरदन पर क्यों जहर से बुझी छूरियाँ चलाई जाती हैं ?"

ममता सब सुन रही थी—भीतर भीतर उसकी छाती फूल रही थी। तारा के मुँह पर एक भाव आता था—दूसरा जाता था। उसे लगा जैसे हड़ताल आरम्भ हो चुकी है—मिल के फाटक पर मोहन की स्पीच हो रही है। खाते खाते ही उसके नथने फड़कने लगे। वह विचित्र मुद्रा में आ गई।

श्यामाचरण कुछ नहीं बोला। उसने दूसरी बात छेड़ी। मोहन भी अन्य विषयों पर बात करता रहा। खाना खाने के बाद तारा ने घूम-कर मोहन की ओर देखा। मोहन ने कहा—"मम्मी ! अब मुझे आज्ञा दोगी न—आठ बजता है। यहाँ से प्रेस भी जाना है।"

"फिर कब आओगे भैया ? तुम समझते हो मैं यहाँ हूँ ही नहीं। बता दो कब आओगे—तब मैं जाने दूँगी। जानती हूँ तुम्हें बहुत काम रहता है। पर हफ्ते में क्या एक दो घन्टे भी मेरे लिए नहीं हैं। तुम मुझे बेगानी समझने लगे हो न ! वे दिन भूल गए जब दिन दिन भर मुझे पढ़ाया करते थे और घंटे भर की छुट्टी भी न देते थे।"

मोहन ने कहा—"अब तुम बड़ी हो गई हो।"

ममता ने कोयल के गीले स्वर में कहा—"कहाँ ? मैं तो जैसी की तैसी हूँ—मैं तनिक भी बड़ी नहीं हुई। मुझे वैसी ही छोटी जानो भैया ! बोलो—कब आओगे ?"

ममता को यह आग्रह और अनुनय करने में विचित्र उल्लास मिल रहा था। मोहन भी थोड़ी देर के लिए सब भूल गया।

बदलिया पान ले आई। मोहन ने पूँछा—"कितने पान खिलाए ? बदलिया कुछ बोली नहीं—ममता का मुँह देखती रही। ममता ने कहा—"बतला दे—कितने बीड़े पान भैया को खिलाये हैं। मेरा मुँह क्या देख रही है—वहाँ क्या लिखा है।" बदलिया ने कहा—एक बीस चार पान।"

"बहुत पान खा गया। चार आने ले जा—चार पैसे मुझे मत लौटाना।" मोहन ने कहा फिर जेब से पाँच रुपये का नोट निकालकर ममता को देते हुए बोला—"तुम लो।"

"क्यों भैया ? यह सब मैं नहीं लेती। उस दिन तुमने रुपए दिए। मैं समझी—पहली बार मेरे घर आए हो इसलिए दे रहे हो। मैंने ले लिए। आज देने की क्या जरूरत है। तुम्हारे पास रुपए न हों तो तुम मेरे यहाँ आओ न ! न भैया मैं न लूँगी। मुझे क्या करना है रुपए का ? तुम्हारे चरणों के आशीर्वाद से मुझे कोई अभाव नहीं—तुम देख रहे हो।

"ले लो ! मैं तुम्हें दूँगा क्या ? पास में होने की बात है। आज मेरे पास है—तुम्हें देता हूँ। जिस दिन न होगा न दूँगा। समझीं ! लो—हाथ बढ़ाओ। मैं जाऊँ। तारा को क्लास लेना है—मुझे प्रेस जाना है।"

ममता कुछ न बोली—चुपचाप खड़ी रही।

मोहन ने कड़े स्वर में कहा—"चलो इधर—मेरे पास। लो यह।"

ममता पुतली की तरह आगे बढ़ी। हाथ फैलाकर उसने नोट ले लिया—जैसे बचपन में मोहन से पैसे लिया करती थी। मोहन ने उठ-

कर चट्टी पहनते हुए कहा—"श्यामाबाबू ! अब चलता हूँ। नमस्ते।"

"नमस्ते"—श्यामाचरण ने अनमने स्वर में कहा।

तारा ने श्यामाबाबू को चुपचाप नमस्ते किया। दोनों नीचे उतरे—ममता पीछे आ रही थी। जीने के पास बत्ती जलाकर पीछे पीछे उतरी। दरवाजे के पास बोली—"भैया! ठहर जाओ। नौकरानी को भेजकर सवारी मँगवा दूँ।"

"हम लोग पैदल चलते हैं। सवारी पर वे चलते हैं जिनको पैसे का अजीर्ण होता है।"

ममता ने पास खड़ी होकर सिर झुका श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। मोहन ने पीठ थपथपाते हुए कहा—"जाओ—सुखी रहो।"

दोनों बाहर निकल आए। चलते समय आवेश के कारण ममता तारा से बोल भी न सकी। खाली हाथ जोड़कर खड़ी रह गई।

## [ २१ ]

तारा और मोहन के चले जाने के बाद श्यामाचरण ने ममता से कहा—"तुम्हारे मोहन भैया मजेदार आदमी मालूम पड़ते हैं। तारा-देवी हर समय उनके पीछे छाया की तरह लगी रहती हैं। शहर में बड़ी बदनामी है। पहले भी एक न एक के साथ चिपकी रहती थी।"

घृणा से ममता का शरीर जल उठा पर कुछ बोली नहीं। चुपचाप चारपाई पर लेट गई।

श्यामाचरण ने फिर कहा—"बात क्या करती है ढेला मारती है। बड़ी मरदानी औरत है। यहाँ भी आगई। अब मकान देख लिया है। जब देखो खड़ी रहेगी। यहाँ काँग्रेस में दो चार बड़ी खाऊ औरतें हैं।

ममता ने कहा—"आप व्यर्थ में बुरी धारणा बनाते हैं। मुझे तो पवित्र और ऊँचे विचारों की महिला जान पड़ी।"

श्यामाचरण ने व्यंग से कहा—"तुन्हें क्यों न जान पड़ेगी! तुम्हारे मोहन भैया की चहेती है न! जो औरत इस तरह मर्दों के साथ

रहेगी वह भला बदचलनी न करेगी ? आज कल वर्माजी जेल में हैं—मोहन के साथ अकेली घर में रहती है। तुम्हारे मोहन भैया न देवता हैं न तारा कोई देवी। यही करना है तो एक आदमी के साथ स्थाई सम्बन्ध कर ले या विवाह कर ले।"

ममता ने कहा—"मैं हाथ जोड़ती हूँ—आप मोहन भैया के सम्बन्ध में कुछ न कहें।"

श्यामाचरण की थाली कमरे में आगई थी। उसे एक कोने में ढँकवाकर ममता से आँख मिलाते हुए बोला—"क्यों—जरा सुनूँ तो। क्यों मेरे ऊपर यह बन्दिश लगाई जाती है?"

ममता ने कहा—"इसलिए कि मैं उनकी छोटी बहन हूँ—शिष्या हूँ—उन्हीं की रची हुई हूँ। मेरी आत्मा का उनसे अटूट सम्बन्ध है। मेरी उन पर श्रद्धा है—भक्ति है। उन्हें अपशब्द कहकर आप मेरे मर्मस्थल पर प्रहार करते हैं। और सुनिएगा?"

श्यामाचरण के चेहरे पर असाधारण काठिन्य था। उठकर टहलते हुए बोला—"इसका अर्थ यह है कि मैं तुम्हारा कोई नहीं हूँ—वही सब कुछ है। उसके विषय में कुछ कहने से तुम्हारे मुलायम दिल पर चोट पहुँचती है। लेकिन आज फैसला हो जायगा।"

ममता ने कहा—"आप अकारण मुझसे लड़ रहे हैं। भोजन करिए—ठंडा हो रहा है।"

श्यामाचरण ने विद्रूपभरे स्वर में कहा—"अकारण नहीं—मैं आज तुम्हें साफ बता दूँगा। तुम समझती हो—मैं बेवकूफ हूँ। देखने में वैसा जरूर लगता हूँ पर भीतर से नहीं हूँ। वरना मामूली पढ़ा लिखा होकर आज बड़े बड़े एम. ए., बी. ए. के कान न काटता। मुझे सब पता है?"

ममता ने तेज स्वर से कहा—"क्या पता है आपको? कहते क्यों नहीं?"

श्यामाचरण ने कहा—"देखो! तुम मुझसे उसी तरह बात किया करो जैसे स्त्री पति से करती है।"

ममता ने कुछ नर्मी से कहा--"वैसे ही कर रही हूँ। पर आप बार बार यह क्या कहते हैं—मैं सब जानता हूँ—जानता हूँ। मैं सच्ची बात कभी छिपाती नहीं—मुझे आरम्भ से यही शिक्षा दी गई है कि सच बोलूँ।"

"इन्हीं मोहन भैया ने यह शिक्षा दी होगी! वही तो तुम्हारे गुरू हैं।"

"आपने ठीक कहा। ऐसी शिक्षा--सत्य पर अविचलित रूप से दृढ़ रहने का जीवन्त मंत्र वही दे सकता है जो सत्य को हड्डी हड्डी—मज्जा मज्जा तक अपने जीवन में उतार चुका हो। मोहन भैया कितने महान हैं—मैं जानती हूँ। आप भी जिस दिन जान जाँयगे उस दिन..............."

"मैं सब जान गया हूँ। तुम्हारा रात रात भर उसके साथ घर से गायब रहना, गाँव में आजादी से यहाँ जाना--वहाँ घूमना, जमना किनारे की सैर और बिहार—प्रेम और निर्लज्जता की सारी किलोलें मुझे मालूम हैं। तब तुम कुँआरी थीं—उस जीवन की जिम्मे-दारी तुम्हारे पिता पर थी। अब तुम विवाहित हो—मैं तुम्हारा पति हूँ। तुम मेरे अधिकार में हो। मैं तुम्हें साफ साफ बता देना चाहता हूँ—उसका यहाँ आना और तुम्हारा इस तरह आजादी से मिलना जुलना—मेरी गैरहाजरी में घन्टों बैठना और चलते समय तुम्हें नोट पकड़ा देना मुझे कतई पसन्द नहीं। मैं शायद यह सब न कहता अगर तुमने अपनी गुस्ताखी से मुझे कहने पर मजबूर न किया होता। यह तारा! यह तो रन्डियों से गई बीती है। ऐसी औरत के साथ तुम्हारा उठना बैठना मैं बरदाश्त नहीं कर सकता।"

ममता के सामने भैया की शपथ लेती हुई सजल मूर्ति छहराकर घूम गई। उसने धीमे पर स्थिर कंठ से कहा—"मेरी बात सुन लीजिए। तारा को न मैं जानती हूँ—न आज के पहले उसे कभी देखा था। मेरे भैया के साथ वह चली आई। क्या मैं उसे घर से निकाल देती? रह गये मोहन भैया—उनके

बारे में आपने जो सुना है ठीक सुना है। पर यह सब जानने के लिए आपको गाँव के किसी आदमी से पूँछने और छानबीन करने की क्या जरूरत थी ? आप मुझसे पूछते—मैं सब बता देती। आपको अपनी नई ब्याहता स्त्री के चरित्र की चर्चा गाँव के किसी असभ्य या अर्धसभ्य बनिए से करने में संकोच न लगा ?"

श्यामाचरण ने कहा—"यह तो बताओ तुम्हारे साथ उसका ब्याह क्यों नहीं हुआ। गाँव में सालों से लोग यही समझ रहे थे कि तुम दोनों का विवाह होगा ! ठीक भी है। जिसके साथ इतना सब हो चुका हो वह विवाह क्यों करने लगा—वह मूर्ख नहीं है। नया नया माल तब कैसे मिलता !"

ममता का सर्वांग घृणा से सिहर उठा। श्यामाचरण की बात में जो ध्वनि थी—जो भयंकर संकेत था उसने उसे विचलित कर दिया। एक धधकती हुई नेत्रहीन अनुभूति से उसने सामने खड़े पति की छाती को भेदकर वहाँ जो लिखा था सब देख लिया। पर नेत्रहीन, मनहीन, कर्णहीन अनुभूति से वह सारा विष पी गई। कुछ बोली नहीं।

श्यामाचरण ने इस खामोशी को स्वीकारोक्ति का एक दुर्बल प्रकार समझा। पत्नी के मानस की गठन से वह अभी परिचित न हो पाया था। कहता गया—"जब मैं कुछ बोलता हूँ तब तुम मेरे मुँह पर ताला डाल देना चाहती हो। तुम्हारी धृष्टता और निर्लज्जता की सीमा नहीं है। भैया—भैया—भैया—सुनते सुनते मैं जब ऊब गया और यह सारा पाखंड सहन न हुआ तभी मैंने यह सब कहा—वरना न कहता। बात को हजम करना मुझे आता है। इतना जरूर कह देता—देखो ! यहाँ कानपूर में कभी मोहन के साथ बाहर जाने का विचार न करना। मुझे किसी परपुरुष के साथ अपनी स्त्री का मिलना जुलना पसन्द नहीं। वह यहाँ आये—शौक से। पर मेरे सामने आये। मेरी अनुपस्थिति में उसे यहाँ आने की जरूरत नहीं। तुम चाहो तो उससे कह देना या मैं खुद कह दूँगा। यह तो व्यवहार की बात

है—इसमें संकोच कैसा ?"

ममता ने चारपाई पर उठकर कहा—"मैं ये आज्ञायें नहीं मान सकती। मैं मोहन भैया से मिलना जुलना नहीं छोड़ सकती। उन्हें पत्र नहीं लिखती—बुलाती नहीं। उनका यह असीम अनुग्रह है जो वे मेरी जलती आत्मा को शीतल करने आ जाते हैं और..."

"और क्या ? कहो—चुप क्यों हो ? बोलो—मैं आज फैसला करूँगा। जिस दिन से मैंने सब सुना है तुम्हारा सारा व्यवहार मेरी समझ में आ गया है। कहो! क्या कहना चाहती थीं?.............. तुम मोहन से प्रेम करती थीं पर तब तुम कुँआरी थीं। अब कैसे उसे प्रेम करती हो? मैं तुम्हारा स्वामी हूँ। वह तुम्हारा कोई नहीं। जब था—तब था। उस जमाने से मुझे कोई मतलब नहीं। पर अब अपने पैरों पर कुल्हाड़ी न चलने दूँगा। ओफ! तुम्हारे इस देवी के से रूप के भीतर इतनी कालिमा—ऐसी राक्षसी वृत्ति छिपी है! ऐसे सहज भाव से इतना बड़ा पाप छिपा कर तुम मेरे ऊपर शासन करना चाहती हो!"

ममता ने कहा—"यह सब नहीं होने का। आप उस व्यक्ति से मिलने के लिए मुझे मना कर रहे हैं जो चाहता—भौहों का एक इशारा कर देता तो मैं आपके इस मकान पर लात मारकर उसके पीछे चल देती। आप उस आदमी के साथ मिलने के लिए मुझे मना कर रहे हैं जिसके पास रात रात भर बैठकर मैंने कभी जाना नहीं—कभी मेरे ध्यान में भी न आया कि जीवन में वह अकथ्य—घृणित—अचिन्तनीय भ्रष्टाचार भी होता है जिसकी ओर इतने गंदे ढंग से आप बार बार संकेत कर रहे हैं। उस व्यक्ति के साथ गुँथा मेरे जीवन का सूत्र आप काट देना चाहते हैं जो मेरे लिए परमात्मा से भी बड़ा है—जिसके कहने पर मैंने अपनी सारी—घृणा को दबाकर—अपनी आत्मा को कुचलकर आपको अपने तन के साथ घोरतम अश्लीलता से खेलने का अधिकार दे दिया। न केवल अधिकार देना वरन् आपकी चारपाई पर अपने शरीर को लेजाकर डाल दिया............"

श्यामाचरण आश्चर्य से फटी आँखें खोले सुन रहा था। ममता के स्वर में सत्य का वह सशक्त उत्तेजन था जो न दिखने पर भी अपनी आग फेंकता है।

ममता ने कहा—"आप मुझे धमकियाँ देते हैं! आपकी दो रोटियों के लिए मैं अपनी आत्मा के सबसे बड़े सौंदर्य--जीवन के सब से बड़े सत्य—छाती के सब से बड़े अंग को काटकर फेंक दूँगी? जानते नहीं औरत का यही सबसे बड़ा धन होता है जो आसानी से नहीं छूटता। जिस महान आत्मा के पैरों की धूल भी आप नहीं हैं--न हो सकते हैं—उसपर कलंक लगाने चले हैं! उस व्यक्ति पर आप आक्षेप करते हैं--मेरे सामने—मुझे सुना सुनाकर—जो चाहता तो मुझे कोठे पर बैठाकर वेश्या का पेशा करा सकता है! जिसके एक इंगित पर मैं पशु को भी अपना तन दे सकती हूँ! जो मेरे जीवन के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक का स्वामी है!"

आवेश के कारण ममता काँप रही थी। क्षण क्षण पर उसके प्रत्येक रोम से बिजली का कौंध छूट रहा था। वह अपने आपे में न थी। बोली—"आप चाहते हैं उनसे कोई सम्बन्ध न रक्खूँ! आपको पता नहीं आज मैं आधी रात को उनकी आवाज पर आपकी चारपाई छोड़कर जा सकती हूँ! आप मुझे उनसे छुड़ावेंगे? आप तो क्या अब स्वयं वे भी अपने को मुझसे जितना छुड़ा ले गए उससे अधिक नहीं छुड़ा सकते! मेरी सहनशक्ति की सीमा है--एक सीमा है..........."

श्यामाचरण ने कहा—"मैं यह नहीं सह सकता। मैं तो जानता हूँ--भली मार करतार की दिल से दिया उतार। तुम जहाँ कहो तुम्हें भेज दूँ। पर अपनी छाती पर मूँग नहीं दलवा सकता। तुम पढ़ी लिखी हो—स्वतन्त्र हो—नए विचार की हो। मुझे सब मंजूर है। पर मेरी स्त्री होकर तुम दूसरे के इशारे पर नाचोगी—मेरी धर्मपत्नी होकर किसी और के इशारे पर अपने तन का सौदा करोगी यह मैंने स्वप्न में भी न सोचा था। तुम चाहो मैं

तुम्हें मोहन के यहाँ भेज दूँ ।"

"उनके यहाँ क्या कोई अनाथालय है या महिलाश्रम जो आप मुझे भेज देंगे। मैं कहीं न जाऊँगी—यही रहूँगी। जो करूँगी आपके सामने करूँगी—आप को बताकर करूँगी।"

श्यामाचरण क्रोध से अन्धा होकर सीधा बाहर निकल गया। ममता कमरे में अकेली रह गई। बात खत्म हो चुकी थी। अब उसके चेहरे पर उत्तेजना का नाम न था। दुश्चिन्ता का चिन्ह भी कहीं न दीखता था। शीशे के सामने खड़ी होकर ममता ने अपना मुँह देखा। ऐसा पवित्र और मंगलमय तो वह कभी न ज्ञात हुआ था। आकर खिड़की के पास खड़ी हो गई। सड़क पर बिजली के प्रकाश की जगमगाहट उसे अपने हृदय की खिड़कियों से आते हुए उजाले के सामने तुच्छ लगी। एक अनिर्वचनीय शान्ति और तृप्ति की तरंग में पड़कर उसकी इच्छायें—कामनायें जैसे स्वतन्त्र हो गईं। अपनी सम्पूर्ण मुक्ति वह जिन दूरवासी चरणों पर समर्पित कर रही थी वे जाने अभी मार्ग की धूल छान रहे हों या घर पहुँचे हों! कुछ देर के बाद वह अपने पलँग पर लेट गई। मन ही मन तारा के स्वभाव, विचार और चरित्र की आलोचना करने लगी। उसे ध्रुव विश्वास था—मोहन भैया उसके हैं। संसार में यदि उसकी ओर उनकी प्रवृत्ति नहीं हुई तो किसी अन्य नारी के प्रति प्रवृत्ति का परिहास भी वे नहीं कर सकते। वह उन्हें जानती है! उन पर उसे विश्वास है। कहीं ईर्षा करने की गुञ्जायश नहीं। पर तारा! वह कहाँ जा रही है? एक आकस्मिक वेदना का अनुभव—उसे हुआ। सूर्य की ओर मुँह उठाकर आँखें बन्द करने पर भी जिस प्रकार तरह तरह के रंगों के रूप में आलोक का संचार होता है उसी प्रकार तारा के जीवन और उसके गठन को समझने की इस एकान्त चेष्टा के भीतर से एक अस्पष्ट किन्तु दाहक वेदना की अनुभूति उसकी सारी देह में धीरे धीरे व्याप्त होने लगी। उसका अपना जीवन बाइस्कोप की तरह विचित्र वर्णों में तेजी के साथ उसके मन के भीतर एक ओर

से दौड़कर आया और दूसरी ओर चला गया। तारा अभी नहीं जानती—जिस पुरुष को केन्द्र बनाकर वह अमरबेल की तरह लिपटी जाती है वह कितना कठोर और बेगाना है। ममता आज हार मानती है—अपने को असमर्थ पाती है—मोहन के हृदय की थाह पाने में। जब वह प्राण की धड़कन की तरह बसकर उसके हृदय की थाह न पा सकी तब तारा कैसे उस समुद्र की भाँति गम्भीर—हिमालय की तरह विराट हृदय को परख सकेगी? आज की बातचीत से—तारा की चेष्टाओं से मोहन के प्रति जो मुग्धता प्रकट होती थी उसे ममता ने समझा था। उसे स्पष्ट दिखा—इस सारी घनिष्टता का श्रोत कहाँ है। उसका जो धन एक दिन एकाएक बिना किसी पूर्व सूचना के उसके हाथ से निकल गया उसे कोई भी न पा सकेगा। कहने के लिए मोहन उसका नहीं—पर वह उसका है—अपनी सारी व्यापकता, प्रसार और परिधि में उसका है।

श्यामाचरण विमर्ष और क्षोभ के कारण खाना न खा सके। उनका सर्वाङ्ग घृणा और ग्लानि से भर भर जाता था। ममता की चारपाई पर एक कठोर दृष्टि डालते हुए बोले—"नीचे जाकर उन लोगों के पास हो आओ। खाना तुम नेतानी के साथ खा चुकी हो फिर भी यह अच्छा नहीं लगता..........."

"मैं कुछ नहीं जानती। मैं कहीं न जाऊँगी।"

जिस क्षोभ की कालिमा से बचने के लिए श्यामाचरण ने यह प्रस्ताव किया था उससे मुक्ति पाने का और कौन उपाय था? जिस समय उसकी बुआ या भौजाई अप्रत्यक्ष रूप से उसके और ममता के विरोध को इंगित कर कोई बात कहती थीं उस समय उसे अपना सम्पूर्ण अस्तित्व निष्फल और बेमानी लगने लगता था। थोड़ी देर पहले उन लोगों ने इस ओर इशारा किया था। बुआ ने मोहन और तारा के विषय में विस्तार से पूँछा भी था। उनके चले जाने के बाद श्यामाचरण और ममता में जो

बातें हुई थीं वे भी भनक रूप में सब के कानों पड़ी थी। श्यामाचरण की विधवा भौजाई को इसमें विशेष रूप से रस मिलता था। ममता के उग्र स्वभाव के भय के कारण उससे तो वह न बोलती थी—पर श्यामाचरण से दो चार बातें रोज कर लेती थी। आज की बातों की कुत्सा और आन्तरिक वितृष्णा से त्राण पाने के लिए श्यामाचरण ममता को नीचे भेजना चाहता था। वह ममता को इतना पहचान गया था कि वहाँ जाकर न केवल पति-पत्नी की आपसी विरोधी कटुता की बातें वह प्रकट न करेगी वरन जो अन्यथा भावनायें उन लोगों ने बना ली हैं उनका भी निवारण अपनी बलिष्ट उपस्थिति से वह कर देगी। ममता के इन्कार करने पर उसकी यह आशा भी टूट गई।

## [ २२ ]

रास्ते में तारा की चञ्चलता और अस्थिरता मोहन के लिये असह्य हो उठी। बोला—"तुम एक साथ इतनी बातें कैसे करती हो? तुम्हारे चित्त की वृत्ति अनेक रास्तों पर एक साथ ही कैसे भटकने लगती है? जब से निकली हो तब से ममता और उसके पति—उसके घर—उसके जीवन को लेकर तुमने कितनी बातें की हैं!"

"मैं आपके जीवन को शुरू से देखने—समझने की चेष्टा में हूँ। सच है—मुझे इतना ज्यादा न पूँछकर खुद सोचना—समझना चाहिए। पर मैं लाचार हूँ। आपके पास रहकर बिना बोले रहा नहीं जाता। आपको सुनकर आश्चर्य होगा—आपसे मिलने के पहले मैं कम बोलती थी। आपके संपर्क में आने के बाद.....लगता है—कितना बोलूँ...........। आपको मेरा अधिक बोलना कष्ट देता है तो माफ कीजिए। मुझे यह सोचना था कि ममता के मकान से निकलने के बाद आपको मानसिक विश्राम की आवश्यकता है। आज मैंने जीवन में जो देखा है सब नया ही नया है—इतना नया है कि पिछली सारी एकस्वरता और परिवर्तनहीनता

अक्षम्य लगती है। आपके पहले........"

"चुप क्यों हो गईं ? बोलो न ! आपके पहले............।"

"आपके पहले मैं यह सब न जानती थी। बाहर से रेशम के कोए की तरह मुलायम लगनेवाले जीवन में ऐसी बलिष्ट—तीखी और बद्ध आत्मप्रेरणा रहती है। ममता को मैंने जान लिया। मैं अपनी ज्यादती बताऊँ—बिना देखे समझे मैंने ममता के विषय में हीन धारणा बना ली थी। आज मैं जान गई। आज मैं जान गई जीवन को कैसी खूबसूरती से झेला जाता है!"

"और क्या नई बात देखने को मिली? जब मैं नीचे लिखने चला गया था तब मम्मी क्या कह रही थी? तुम यह न समझना मैं किसी और भाव से पूँछ रहा हूँ।" तारा ने आदर से अपनी जीभ दाँतों के नीचे दबाते हुए कहा—"आप कैसी बात करते हैं—मैं ऐसी मूर्ख नहीं! पर आपको क्या क्या बताऊँ? बहुत सी बातें हुईं—कोई निश्चित सिलसिला तो था नहीं। बल का ऐसा असह्य स्रोत मैंने इसके पहले नहीं देखा। कानपूर में हजारों स्त्रियों और पुरुषों के जीवन का हाल मुझे मालूम है—लोग मुझसे अपनी बातें बताते रहते हैं। पर ममता ने आज जो कहा वह एक शब्द में अपूर्व है।"

"बताओ न! क्या बात हुई?"

"मैं नहीं बता सकती। मुझे वे शब्द याद भी नहीं हैं। याद रह गई है प्राणों की वह विभोरता जो उसकी बातचीत के बाद मेरे तन मन पर छाई रही। मैं सचमुच नहीं बता सकती........."

"जाने दो—कौन सी बात है। श्यामाचरण और उसमें मेल रहता है न? इस बात का बराबर सन्देह बना रहता है। ममता को मैं खूब जानता हूँ—दूसरी ओर पुरुष होने के नाते श्यामाचरण को भी समझता हूँ। ममता कभी उसके पुरुष के अहं को निर्विरोध स्वीकार न करेगी। मैं डरता रहता है दोनों का यह विरोध बढ़कर कहीं भयानक

कठिनाई न पैदा करदे ।"

"आप आशंका न करें । आपके व्यक्तित्व का जो प्रभाव उसपर पड़ा है उसने उसे जीवन के ऊपर उठना सिखाया है। ममता के जीवन की गति—उसकी आत्मा का प्रवाह अप्रतिरोध्य है पर अंधा नहीं। आपके साथ बचपन से रहकर उसने बूँद-बूँद कर इतना रस इकट्ठा कर लिया है जो आज जमकर उसके मानस की मणि बन गया है । उसके उज्ज्वल प्रकाश में वह चलती चलेगी। आप चिन्ता न करें ।"

"मुझे लेकर ममता ने अपने पति से कोई विच्छेद किया तो मेरी लज्जा की सीमा न रहेगी । मैं अपने को ही तब कौन सा मुँह दिखाऊँगा ? श्यामाचरण भी मुझे उस ऊँचे हृदय और विकसित आत्मा का व्यक्ति नहीं लगा जो ममता जैसी सुकुमार 'तन्तुओं' की नारी को समझ सके ।

"आप ठीक कहते हैं । वेदना इतनी हार्दिक—इतनी असह्य होते हुए भी जीवन में ऐसे विस्तृत और प्रेरक प्रबोध का सृजन करती चले यह मैंने आज जाना । आप मुझे भावुक कहियेगा पर आज मेरा रोम रोम आपको प्रणाम कर रहा है ।

दोनों पैदल चले जा रहे थे । रात को दस बजे थे—सड़क लगभग निर्जन थी । तारा यह कहकर अज्ञात रूप से मोहन के कंधे के नीचे ही नीचे और सट गयी— जैसे मा की छाती के घोंसले में नन्हा शिशु दुबक जाता है। मोहन ने तारा के कन्धे पर हाथ रखकर उसे देखते हुए कहा—"तुम्हारे रोम रोम के प्रणाम की मुझे जरूरत नहीं—केवल दोनों हाथ का प्रणाम काफी है । ममता को मैंने पढ़ाया लिखाया—इस विस्फोट की चिनगारी चुपके चुपके उसके दिल में रख दी—मानता हूँ। पर वह अब कितना अधिक न फैल जायगा—यह कैसे कहूँ ? तुमने उससे कोई बात ऐसी तो नहीं कही जो उसे और झुँझला दे ?

"ममता से मैंने क्या कहा क्या सुना—मुझे स्मरण नहीं । अपना

दिमाग मुझे इस समय एक गहनवन की तरह लगता है—सब कुछ खोया सा है। मैंने कुछ भी ऐसा नहीं कहा!"

"मुझसे ममता के घर चलने को अब न कहना। आज केवल तुम्हारा दिल रखने के लिए चला गया।"

"यही बात मुझे नागवार लगती है। मैं अब आपके साथ न जाऊँगी। पर आपको सप्ताह में एक बार वहाँ भेजूँगी—मैं ममता से वायदा कर आई हूँ। आपको घन्टे दो घन्टे के लिए जाने में आपत्ति क्या है? आपको देखकर उसे पाने के लिए क्या शेष रहता है? आप उसका और अपना इतना थोड़ा सा सुख भी असंभव कर देना चाहते हैं!................"

तारा के सारे उत्तरहीन प्रश्न जिन्हें वह अपने भीतर दबा रखती थी—निरन्तर जिन्हें दबाने की चेष्टा करती रहती थी—दुगने दबाव से—दूने वेग और जलन से एक एक कर उसके दिल में जुट आए। एक हिंस सुख उन्हें मिल रहा था।

"तुम्हारा ख्याल गलत है तारा! मुझे उससे मिलकर कोई सुख नहीं मिलता। उसे भी अब क्या पाने को शेष है जो मेरे मिलने से पूरा होगा?"

"आप मुझे और अपने को धोखा दे रहे हैं। ममता की बात जाने दीजिए। उसे क्या होता है—क्या नहीं—यह हमारे वहम की बात नहीं पर आप अपना यह गर्व त्याग दीजिए कि नारी की क्षुधा, तृषा, राग, द्वेष और मान-मोह आप दूसरी नारी की अपेक्षा अधिक समझते हैं। पहले मैं खुद न समझती थी। पहले मैं नारी कहाँ थी? नारी तो मैं अभी थोड़े दिनों से हूँ। अब मैं सब जानती हूँ—अब आप इस मामले में मुझसे ज्यादा अभिज्ञ नहीं। सचमुच वे मेरे दुर्दिन थे जब आपसे कोई पहचान न थी। आपको पाकर मैंने अपने को पा लिया। पर यह पाना एक कठोर दायित्व है—कितना सुखद—पुलकित करने वाला—कभी कभी रोमाँचकर। जब तक नारी प्रेम नहीं करती तब तक उसका नारीत्व विफल और अर्थहीन रहता

है ।"

मोहन सुन रहा था—उसकी समझ में सब आ रहा था। तारा दो मिनट चुप रहने के बाद बोली—"आज मैं ममता के विषय में उसी अधिकार के साथ बात करूँगी जिससे वह स्वयं करती है। हम दोनों का एक पन्थ है। आप सप्ताह में एक बार—केवल एक बार उससे मिल लिया करें। उस मिलन का खुमार उसे सात दिन तक जीवन के जुए में बँधे बैल की तरह कोल्हू के चारो ओर खींचता रहेगा। उस सुख की आप कल्पना नहीं कर सकते। वह सुख नारी का है—चिर काल तक उसी का रहेगा। जिसे एकबार उसका स्वाद मिल जाता है उसे जीवन के सब रस अनरस हो जाते हैं। विश्व की समस्त मिठास फीकी जान पड़ती है। मैं ममता से वायदा कर आई हूँ। आपको मेरी विनय माननी होगी।"

"तुम मेरे सम्बन्ध में वायदा करनेवाली कौन होती हो? यह तुम्हारा अविचार ही नहीं—अन्याय है!"

"हम सब साथी हैं। सबका एक दूसरे पर अविछिन्न अधिकार है। मेरा वायदा आपका वायदा है। आप न जाँयगे तो मेरी अपनी आत्मा का शाप तलवार की तरह मेरे ऊपर मँडराता रहेगा।"

"मैं कहीं न जाऊँगा—मैं कुछ न करूँगा। मैं तुम्हारा मकान छोड़ दूँगा—पर इस तरह का शासन मुझसे न सहा जायगा। तुम न जाने अपने को क्या समझे बैठी हो! आज मेरी जाने की कतई इच्छा न थी—तुम मुझे जबर्दस्ती ले गईं! गलती मेरी है। यदि उस दिन तुम्हें सब बातें न बता देता तो क्या तुम अपने आप जान जातीं? मुझसे अब ममता को लेकर कुछ न कहना—वरना मैं तुम्हारा मकान छोड़कर चला जाऊँगा। दादा को बाद में जबाब देता रहूँगा।"

"आपको घर पर रखने की कभी मेरी प्रबल लालसा नहीं रही। आपको जहाँ आराम हो वहाँ रहें। दादा इसके पहले भी जेल गये हैं। घर पर अकेली रहने की मैं आदी हूँ। मेरी चिन्ता न करें।

अपनी चिन्ता मैं आप कर लूँगी। आप पुरुष हैं—आपको अपने पौरुष और निर्ममता पर अभिमान है। मैं भी अब नारी हो गई हूँ। उस हतभागिनी को निरुपाय—निःशब्द धरातल की तरह आप जलाते रहे हैं—क्यों ऐसी तेज धूप अपने चारों ओर लेकर आप चलते हैं? उस समय किसी को दिखाई न देनेवाले आकाश में यदि बूँद बूँद इकट्ठी होकर एक बादल की सृष्टि होती है तो आपको सह्य क्यों नहीं? आपका सूर्य का स्वभाव जो ठहरा! मैं लाचार हूँ। उस बादल को अज्ञात रूप से—निःशब्द गति से घेर कर मैं रोक नहीं सकती।"

मोहन सोच रहा था—तारा किस वेदना की थाती पकड़े चल रही है? कभी कभी उसके दर्द और दाह की साकार स्वीकृति में सत्य की कैसी ज्वाजल्यवान ज्योति प्रकट होती है! पर उसकी एक एक पुकार में कितना अहंकार है! इस अहंकार को नत करना होगा। बात बात में प्रेम करने की दुहाई देकर उसे यहाँ तक मजबूर नहीं किया जा सकता। मकान दो फर्लाङ्ग बाकी था। तारा अन्दर अन्दर विद्रोह से फूल रही थी। मोहन ने एक बार उसके मुँह की ओर देखा। उसका कंठ—उसका मुँह—उसकी दोनों आँखें मानों किसी अदृश्य आक्रमण से दबी जा रही थीं। मोहन ने आँखें फेर लीं और सामने देखने लगा। सड़क पर सन्नाटा बढ़ता जा रहा था। दोनों घर के निकट पहुँच रहे थे। तारा ने खामोश रहने की प्रबल चेष्टा से एक बार फिर अपने को मुक्त करते हुए कहा—"जिसके साथ चौबीस घन्टे में बारह घंटे आप रहते हैं उसके प्रति ऐसी घृणा आप में है तो उससे आपका दूर रहना ही अच्छा। मैंने कभी नहीं सोचा था—मेरी समझ में न आता था कि मानव कैसे मानव से घृणा कर सकता है। आपको देखकर मैं सब जान गई। आप मुझसे घृणा करते हैं—मैं जानती हूँ। ऐसी स्थिति में आपका मेरे साथ रहना अपने ऊपर ज्यादती है। आपको मकान छोड़कर जाने की जरूरत नहीं। मैं कल भाभी के यहाँ चली जाऊँगी। आप अकेले

रहिएगा—तब जी भरकर मुझसे घृणा कीजिएगा।"

मोहन फिर भी चुप रहा। तारा को आश्चर्य हुआ! ऐसे मार्मिक प्रहार पर वह चुप है—यह तो भारी मानस की स्वीकारोक्ति है। मनुष्य का मन जब अत्यन्त भारी हो जाता है तभी तो वह बोलना नहीं चाहता। तारा जैसे अपने को ही इस समय काटने दौड़ रही थी। मकान में प्रवेश करते ही मोहन अपने कमरे में जाकर बैठ गया। तारा चुपचाप ऊपर चली गई। नौकर ने मोहन से खाने के लिए पूँछा। मोहन ने इन्कार कर दिया। तारा ने ऊपर से बुलाकर कहा—"क्या मोहन खाना न खाँयगे?"

"न बिटिया—उनकी तबियत नहीं है। तुम्हारे लिए लाऊँ?"

"मैं तो खा आई हूँ। मगर उन्होंने वहाँ भी नहीं खाया—उन्हें भूख क्यों नहीं है! तूने पूँछा नहीं? यह सब ठीक नहीं!

नौकर बेचारा कुछ न समझा। क्या ठीक है क्या—नहीं वह क्या जाने। वह तो जल्दी फ़ुरसत पाना चाहता है।

तारा ऊपर से उतरकर मोहन के कमरे में आई। मोहन चारपाई पर पड़ा था। बोली—"आप खाना क्यों न खाँयगे—जरा सुनूँ तो।"

मोहन ने मीठे स्वर में कहा—"भूख नहीं है। बदन दर्द कर रहा है। मैंने रमई से कह दिया था।"

"हाँ—कह तो दिया था। उसने सुन भी लिया था। पर मैं पूँछती हूँ आपको भूख क्यों नहीं है!"

"अजीब सवाल है!" मोहन ने कहा—"व्यर्थ की बात न करो तारा! कोई 'सेन्स' की बात हो तो करो वरना मुझे अकेले लेटने दो। रास्ते में जितना लड़ चुकी हो उससे क्या दिल नहीं भरा?"

तारा ने अपने को सँभालते हुए कहा—"मैं लड़ने नहीं आई—आपसे खाना खाने के लिए कहने आई हूँ। थोड़ा बहुत तो आप खा लें।"

मोहन ने दृढ़ता से कहा—"मुझे बिलकुल भूख नहीं है। मैं कुछ

न खाऊँगा। आखिर तुम मेरी हो कौन जो तुम्हें इतनी फिक्र है ?"

"मैं आपकी कोई नहीं। केवल शराफत और शिष्टाचार का नाता है। आप मेरे यहाँ हैं—मेरा कर्तव्य है आपको भूखा न सोने दूँ।"

सुबह उठते ही मोहन अपना सामान बाँधने लगा। दस मिनट में सब बाँध बूँधकर वह तैयार हो गया। नौकर को बुलाकर इक्का लाने के लिए कहा—साथ ही तारा को ऊपर से भेज देने के लिए भी।

तारा को खबर देकर रमई इक्का लाने चला गया।

तारा ठीक तरह से जागी भी न थी। मुँह हाथ धोकर नीचे आई। मोहन ने कहा—"तारा! मैंने अपना सामान बाँध लिया है—अभी जा रहा हूँ। रमई इक्का लाने गया है। मुझे माफ करना। यदि बीच में मेरी जरूरत पड़े तो बुलवा लेना।"

"आप जा रहे हैं!—क्यों और कहाँ?"

"किसी सस्ते होटल में जाऊँगा—फिर कहीं क्वार्टर तलाश करूँगा। मजदूरों की बस्ती में ही रहूँगा। जब तक क्वार्टर नहीं मिलता तब तक होटल ठीक रहेगा।"

"आप क्यों जा रहे हैं?"

"यहाँ बहुत दिन रहा! अब बाहर की दुनिया देखूँ।"

"जो आपका जी चाहे करें। कल ही मैंने ममता से बड़े अभिमान के साथ कहा था '........" कहते कहते तारा का कंठ भर आया।

"अभिमान एक विकृति है तारा! स्वस्थ्य है मनुष्य की मनःशक्ति—अन्दर की वह घोर ईमानदार ताकत जो दुनिया की कठोरता का बोझ अपने ऊपर उठाकर चलते चलते विद्रोह करती है। वही शिखा सत्य है—वही जलन शिव है—वही अग्नि सुन्दर है। जिस दिन तुम अभिमान छोड़ दोगी उसी दिन सच्ची 'कम्युनिष्ट' बनोगी।"

"पर आप भी तो अभी अभिमान नहीं छोड़ पाए। अभिमान

के वश होकर ही आप जा रहे हैं। मैंने आपको क्या कहा है? ..................नहीं जानते आप मुझे कितना बड़ा दुख दे रहे हैं। मगर व्यर्थ हैं ये बातें। आप जाइए और जल्दी जाइए।"

"अभी जा रहा हूँ तारा—इक्का आने की देर है। तुम्हें मेरे कारण असुविधायें हुई पर तुमने स्नेह और अपनत्व से मुझे अपने पर रक्खा। मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूँ—अपने समस्त अपराधों के लिये क्षमा-याचना भी करता हूँ।"

इक्का आगया। सामान चढ़ने लगा। रमई को एक रुपया देते हुए मोहन ने कहा—"मैं जाता हूँ। बिटिया का ख्याल रखना।"

तारा कुढ़कर ऊपर चली गई थी। रमई कुछ न बोला। चुप-चाप एक ओर हाथ में रुपया लिए खड़ा रहा। इक्का परेड की ओर चल पड़ा।

× × ×

दिन भर तारा उखड़ी पुखड़ी सी घर में पड़ी रही। उसके लिए यह नई बात थी। रमई भी सब देखकर हैरान था। वर्षों से उसे ऐसा कोई दिन न याद आता था जब वह दिन भर घर में पड़ी रही हो। तारा ने नहाया खाया और दिन भर बिस्तर पर लेटी रही। उसका चित्त ठिकाने न था। अपना यह घर जिसमें होश सँभालने के बाद से उसने अपने को पाया था कभी इतना सूना और भेदक न लगा था। भय और खीझ के कारण उसे मोहन के कमरे की ओर देखने का भी साहस न होता था। जो हुआ उसके लिए वह दोष किसे दे? एक छोटी सी कहानी यहाँ आकर खत्म हो गई। उसने कोई कड़ी बात नहीं कही। यह भी कोई धमकी है—बात करने का कोई तरीका है? समझते हैं घर से निकलकर मुझसे अलग हो जाँयगे। पर कल को मैं भी उनके स्थान पर धरना देकर जा बैठूँ तो क्या मुझे निकाल सकेंगे। इस तरह चले जाने के क्या मानी? रात को खाना नहीं खाया—दिन भर के

भूखे थे। रात को जरूर भूख रही होगी। कोई खास थकावट भी न थी! सुबह सारा सामान बाँधकर इक्का बुलवाने के बाद मुझे सूचना देते हैं! उनके लिए यह नई बात नहीं। जो अपने जीवन की निकटतम लड़की को ऐसा धक्का पहुँचा सकता है—उसके जीवन को सदा के लिए मसल सकता है उससे आठ महीने की परिचिता तारा और क्या आशा कर सकती है? रह रहकर मोहन के साथ हुई सब बातें तारा के अन्तस्तल में डुबकी लगाकर—हृदय के रक्त से भीगकर—भारी और लाल हो ऊपर चली आती थीं। मोहन का सारा ज्ञान और सिद्धान्त-चर्चा विडम्बना है—आत्मपरिहास है। जो बात वह खुद नहीं समझता उसे ही तारा को समझाने के लिए इतने दिन तक झूठी चेष्टायें करता रहा है। जीवन के यथार्थ को ठुकराकर जो केवल कल्पना में ही पड़ा रहता है वह राष्ट्र के अंग तो बना लेगा—पर उनमें प्राण नहीं डाल सकता। वह बोझ ढो सकता है पर मार्ग नहीं देख सकता। उस पथ-प्रदर्शक प्रकाश को वह स्वयं नहीं पा सका और जैसे बराबर आँखें मूँद उसे बिसराने का यत्न करता रहा!

रात को नौ बजे तारा का क्लास था। वह उठी—मुँह हाथ धोकर—नौकर से चाय लाने के लिए कहकर मोहन के कमरे में आई और बैठ गई। कमरे की श्री जैसे चली गई थी। इसी कमरे में सैकड़ों आदमी आकर रहे और चले गए। पर किसी के जाने के बाद वह इतना वीरान न लगा। जैसे इस कमरे के साथ पूरे मकान के प्राण निकल गए हों! असमर्थ मनुष्य की किसी प्रिय वस्तु को जब कोई पैर से कुचल डालता है तब उसके मन की जो दशा होती है वही पूरे मकान की हो गई थी। चाय पीकर तारा बाहर निकली। शाम को पास की बस्ती में मोहन का भी क्लास था। आज तारा को श्रेणी-युद्ध—वर्ग-संघर्ष पर बोलना था। तारा का यह प्रिय विषय था—इस पर पहले बीसों बार बोल चुकी थी। पर आज वह अटपटी-सी रही। उसके शब्दों में पकड़ न थी—स्वर में

धधक न थी—आवेगों में विस्फोट न था। बुझी बुझी सी वह घन्टे भर बोलती रही। श्रोताओं को भी आज दिलचस्पी कम आ रही थी। दुख और शोषण के अटूट चक्र में जिन्होंने जीवन बिताया है--वे प्राणों की असली और नकली पुकारों को पहचानते हैं। मजदूरों को तारा की चेष्टाओं में एक विचित्र प्रतिघात लगा। क्लास खत्म करके तारा चली। उल्फत नामक एक मजदूर ने कहा—"कामरेड! क्या आज तबियत ठीक नहीं?"

तारा ने कहा—"दिन भर अजीब सुस्ती रही है। क्या कहूँ! क्या कुछ अन्टसन्ट बोल गई भाई!"

"नहीं--अन्टसन्ट आप क्या बोलेंगी। मगर हम लोगों को लगा जैसे आप आज तबियत से नहीं पढ़ा रही हैं। अब कहाँ जाँयगी?"

"अगले 'ज़ोन' में जाऊँगी। मोहन का वहाँ क्लास है। तुम भी चलो न!"

"मैं घर जाऊँगा। दोनों बच्चे बीमार हैं। हाजरी थी इसलिए चला आया।"

तारा जानती थी इस वर्ष स्टडी सर्किल के इतने जोरशोर से चलने का एक कारण मोहन भी है। प्रति दिन उसके दो क्लास रहते थे जब औरों का रोज एक एक का भी नम्बर न पड़ता था। उसके क्लास में बहुत से क्लास लेने वाले भी जाते थे। पढ़ाने का ढंग ऐसा सरल--समझाने का तरीका इतना सजीव था कि सुनने वालों के अन्धकाराछन्न मानसपट पर बिजली की तरह थिरकती हुई ज्ञान की रेखायें अंकित हो जाती थीं। तारा वहाँ चली। मोहन का व्याख्यान हो रहा था। वह चुपचाप जाकर पीछे बैठ गई। मोहन ने उसे देखा भी नहीं--वैसे ही धाराप्रवाह बोलता रहा। संसार का सारा धैर्य्य, साहस, विश्वास प्रेम और उल्लास जैसे उसकी वाणी में उमड़ पड़ा है—जैसे एक उद्दाम आल्हाद उसके रक्त में नाच रहा है। पौन घन्टे में मोहन ने खत्म किया। सीढ़ी के पास तारा को खड़े देखकर बोला—"तुम क्या अभी आ रही हो? चल रही हो न?"

"चलिए। मैंने अपना क्लास जल्द खत्म कर दिया। मेरी तबियत ठीक नहीं।"

"घर जाकर सोओ—व्यर्थ में इधर उधर घूमती रहोगी। तुम्हारी आवाज भारी है--सिर में दर्द है क्या?"

"थोड़ा थोड़ा—आप कहाँ ठहरे हैं इस वख्त!"

"मनोरमा होटल में। दो चार दिन में कहीं एक दो कोठरी मिल जाँयगी—ज्यादा मुझे क्या करना है। दो चार किताबें चारपाई के नीचे पड़ी रह गई हैं। किसी के हाथ भेज देना। नमस्ते!"

तारा खोई खोई सी पैदल घर चली आ रही थी। लगता था जैसे जीवन कहीं से ढीला, छिद्रमय और लचर हो गया है—कोई बड़ी असंगति आकर उसमें पैठ गई है। व्यक्ति की सहूलियत की माँग कभी कम नहीं होती। पर मोहन एक असाधारण व्यक्ति है—उसने जीवन में अपनी चाल और तेज़ कर दी है। रास्ते में मिसेज मेहरा का मकान पड़ा। तारा महीनों से उनके घर न गई थी। चारो ओर से ऊबी ऊबी आज उसे लगा जैसे भाभी की स्नेहमयी गोद में उसे चैन मिलेगी। ऊपर के कमरे में रोशनी हो रही थी। कमरे में भाभी अकेली लेटी पढ़ रही थीं। गोद में छोटा बच्चा होने के कारण वे आजकल क्लास न लेती थीं—बाहर भी कम निकलती थीं। बगल में गुलाब के फूल-सा बच्चा लेटा था। तारा को देखते ही बोलीं—"अरे! तू तो मेरे मकान का रास्ता ही भूल गयी। मोहन के पीछे मत-वाली रहती है!"

"इसी से मैं तुम्हारे पास नहीं आती। जब देखो तब चुटकियाँ लेना। मैं यह पसन्द नहीं करती। भैया कहाँ हैं?"

"एक केस में बाहर गए हैं। भतीजा देखेगी? इधर आ - यह सो रहा है। पर जगाना मत वरना 'केहाँ केहाँ' करके आफ़त ढा देगा! दादा का खत आया? मजे में हैं न!"

"एक महीने से नहीं आया। मजे में होंगे ही।"

"कहाँ से आरही है? इधर इतने दिन तक आई क्यों नहीं?

मोहन भी जब मिलता है यहाँ आने का वायदा करता है—मगर आता नहीं। तूने ही उसे भी रोक दिया होगा।"

"मैं उन्हें रोकने वाली कौन होती हूँ? वे मेरे कौन हैं? अभी तक एक साथ रहने का सम्बन्ध था। आज वह भी छूट गया। सुबह अपना सामान वगैरह लेकर चले गए।"

भाभी उठकर बैठ गईं। तारा के अर्ध-मुरझे, सूखे मुँह की ओर गहरी किन्तु स्नेहभरी दृष्टि से देखते हुए बोलीं—"क्यों चले गए? तूने कोई ऐसी वैसी बात कह दी होगी। तेरी जबान जब चलती है तब ……मैं क्या तुझे जानती नहीं।"

"बिना समझे बूझे मुझे ही दोष दोगी—तुम क्या दुनिया मुझे दोष देगी। तम मुझे जानती हो—इसलिए मैं दोषी हूँ—वे नए हैं—अभी काम परिचित हैं इसलिए निर्दोष हैं।"

"आखिर चले क्यों गए? जुलाई से तेरे यहाँ थे।"

"मैं क्या जानूँ! अपने सामने किसी को कुछ समझते नहीं। तब नए नए थे—कानपूर में कोई जानता न था इसलिए दादा के मकान में रहना जरूरी था। मेरे साथ घूमना—लोगों से मिलना जुलना जरूरी था। अब शहर के लोग उन्हें जान गए—नेता हो गए—इसलिए अलग रहना ही चाहिए।"

"सचमुच उनके जाने का यही कारण है? मेरी तरफ देख! —आँख मिलाकर मुझसे बात कर। इस तरह मैं नहीं मान सकती? तूने जरूर उससे कुछ कहा होगा। मोहन जैसा सीधा—बाहरी भीतरी सुन्दरता का ऐसा उज्ज्वल नमूना मैंने देखा नहीं। बिलकुल गऊ जैसा स्वभाव है।"

"बछिया कहो मेरी भाभी!"—खिलखिलाती हुई तारा बोली—बल्कि बछिया का ताऊ कहो। क्या पण्डिताऊपन की बात कही है तुमने! एक लड़का होने के बाद तुम इतनी 'रिएक्शनरी' हो गई हो! दो चार हो जाने पर क्या होगा!

"पगली कहीं की! दो चार की क्या जरूरत है? सुयोग्य हो तो

एक सन्तान माता पिता के संतोष लिये काफी है। तेरे भैया तो 'बर्थ कन्ट्रोल', के बड़े हिमायती हैं।"

"क्या कुँआरेपन में भी उसका अनुभव उन्होंने तुम्हें कराया था? उनसे पूँछने की तो हिम्मत न पड़ेगी—तुम्हीं बतादो भाभी!" हँसते हँसते तारा ने कहा।

"कुँआरेपन में मैंने हाथ तक नहीं रखने दिया। मज़ाक की बात छोड़। मोहन को तूने क्यों निकाल दिया?"

"मैंने क्यों निकाल दिया? सुबह उठे और बोले—मैं जाऊँगा—दो चार दिन किसी होटल में रहूँगा। फिर कोई क्वार्टर ढूँढ़ लूँगा। वहीं चला जाऊँगा। मैंने कई रुकने के लिए कहा—जो मेरा कर्तव्य था। पर माने नहीं। उन्हें मजदूरों के बीच में क्वार्टर लेकर रहने का खब्त समाया है। हम लोग तो अब उनकी निगाह में 'बुर्ज़ुआ' जँचते होंगे।"

"फिर मुलाकात हुई या नहीं? यह बुरा हुआ तारा!"

"भेंट तो शाम को हुई थी! मेरा क्लास था। मैंने कुछ जल्दी खत्म कर दिया। तबियत ठीक नहीं। उनके ज़ोन में गई। वे क्लास ले रहे थे। हम लोग चौराहे तक साथ आए।"

"रास्ते में क्या बातचीत रही? तुम तो उसे प्यार करती हो। बहुत दिन तक दूसरों का मज़ाक उड़ाया—उन्हें भावुक कहा। अब मालूम होगा मोहब्बत क्या तमाशा है। तू खाना तो खायगी! अभी मैंने भी नहीं खाया—दो थालियाँ मँगाती हूँ।"

टेबिल के पास बैठकर खाना खाते खाते भाभी ने तारा से पूँछा—मोहन तुझे कैसा लगता है? उसके चले जाने से तुझे दुख नहीं हुआ?"

"दुख तो होता ही है भाभी! तुमसे मेरे दिल ने कब परदा किया है? मैंने ही कल रास्ते में कुछ लगती बात कह दी।"

"मैं पहले ही जान गई थी। तू तो कहती थी दुनिया में प्यार कोई चीज नहीं—एक रोग है—मानसिक बीमारी है। आज

जब मोहन से बिना मिले न रहा गया तो अपना क्लास जल्दी खत्म कर उससे मिलने गई ! क्यों ?"

"इसलिए कि व्यर्थ की लज्जा मुझमें कभी नहीं रही। अगर मैं किसी को प्यार करती हूँ तो प्लेटफार्म पर खड़े होकर इस बात को 'डिक्लेयर' भी कर सकती हूँ।"

"तूने आज अपने क्लास में यह 'होली डिक्लेरेशन' किया या नहीं!"

"तुम्हें बात बात में मज़ाक सूझता है। मैं जानती कि तुम इस तरह मुझे बनाओगी तो मैं तुम्हारे पास न आती। तुमसे मुझे सहानुभूति के चार बोलों की आशा थी।"

"तू जो कह करूँ। मोहन को जाकर तेरी ओर से मनाऊँ—समझाऊँ बुझाऊँ ? दूती का काम करने की मेरी उमर तो अभी नहीं आई पर तेरे लिए वह भी कर सकती हूँ। बोल !"

"मुझे कुछ नहीं करवाना है। वे समझते होंगे उनके बिना मैं मर जाऊँगी। उन्हें नहीं मालूम मेरे लिए यह सब गौण हैं। जो मेरा प्रधान कार्य है उससे मैं कभी विचलित न होऊँगी। जब मुझे उनकी जरूरत होगी तो उनके बुलवाने की प्रतीक्षा न करूँगी—आप से आप पहुँच जाऊँगी। पर एक बात बता दो - तुम तो इन मामलों में बड़ी अनुभवी मानी जाती हो। पुरुष का यह रूप असल में है क्या चीज़ ? उसके साथ प्रेम ऐसी घनिष्टता से क्यों लिपटा रहता है ?"

भाभी ने गंभीरता से कहा—"तूने यह बड़ी बात पूँछी है। कुछ पुरुष ऐसे होते हैं जिन्हें देखते ही हृदय में अविश्वास जाग उठता है। अपने ऊपर उस अविश्वास पर प्रेम सूरजमुखी की तरह आप से आप खिल पड़ता है। कुछ दिन में अपने पर अविश्वास तो मिट जाता है पर प्रेम खिला और खुला रह जाता है। एक बात याद रखना। रूप पुरुष का प्रतिबिम्ब है पर वह पुरुष नहीं है। तू रूप के पीछे दीवानी होकर दौड़नेवाली लड़की नहीं है। तुझे मैं बचपन से जानती हूँ। तू तो प्रेम को एक वैज्ञानिक और रासायनिक क्रिया सम-

झती है। रूप के पीछे दौड़नेवाली भ्रमात्मक वासना प्रेम नहीं कहलाती।"

देर तक चुप रहने के बाद तारा ने कहा—"मुझे जलन हो रही है। मैं तुम्हें कैसे बताऊँ? ऐसी बेचैनी पहले न होती थी।"

भाभी ने मुस्कराकर कहा—"अभी इब्तिदा है रानी! आगे-आगे देखिए होता है क्या! कुछ दिन बाद जानोगी प्रेम कितना बड़ा अभिशाप—कैसा भयंकर और चीत्कारभरा सपना है। पर एक बात याद रखना। ऊँचा और विशुद्ध प्रेम सदैव देना जानता है—पाना नहीं। बड़े भाग्य से और उससे भी बड़े दुर्भाग्य से यह निगूढ़ रहस्य प्रतिफलित होता है। जब तक सर्वस्व-समर्पण की चेतना अपने ज्वलन्त-तम रूप में नहीं फूटती तब तक प्रेम पूर्णता से नीचे माना जाता है। तुम प्रेम करो—मैं मना नहीं करती। कोई मना न करेगा। मना कर भी नहीं सकता। पर तुम कभी दुखी न होगी यदि प्रतिदान की आशा न करोगी। उस दशा में तुम्हें कोई शिकायत कोई अभाव, कोई अतृप्ति और कटुता न रहेगी। तुम हवा की तरह हल्की और प्रसरणशील रहोगी। तुम्हारी यह पहली ज्वाला है। उनसे जाकर पूछो जो दिन रात वियोग के ज्वालामुखी पर सिंकते रहते हैं।"

तारा ने कहा—"मैं रात को तुम्हारे पास सोऊँगी। नौकर को बुलाकर कह दो रमई को सूचना दे दे।"

नौकर तारा का सन्देश लेकर चला गया। भाभी ने कहा—"देखती हूँ उसके बिना रात को घर पर रहने की कल्पना भी दाहक है।"

तारा ने आरामकुर्सी पर पैर फैलाकर बैठते हुए कहा—"भाभी! बेबी क्या सो रहा है? उसे जगावोगी नहीं?"

भाभी ने कहा—"अभी दूध पीने के लिये जगेगा—तब उसके साथ खेल लेना। सोते बच्चे को जगाना न चाहिए।"

"भाभी! भैया तुम्हें बहुत प्यार करते हैं—तुम्हें उनसे कोई शिकायत नहीं है।"

"मेरे पास कोई मीटर नहीं जिससे मैं प्यार नाप सकूँ। शिकायत मुझे यही है कि मेरे आराम का वह जरूरत से ज्यादा ख्याल रखते हैं। कभी कभी तबियत ऊब जाती है। बेबी काफी बड़ा हो गया है। मैं बाहर जाकर काम करना चाहती हूँ। पर वे लेडीडाक्टर से ज्यादा सजग और जानकार हैं। अभी कमजोर हो—कुछ दिन आराम करो तब बाहर घूमना फिरना। मैं विलास के जिन उपकरणों से ऊब चुकी हूँ—जिन्हें छोड़कर कठोरता और त्याग का जीवन बिताना चाहती हूँ वे अब तक मेरे जीवन को जकड़े हैं।"

"अगर तुम्हें पता लग जाय कि भैया किसी और स्त्री को तुमसे बढ़कर—अपने जीवन से भी बढ़कर—प्यार करते हैं तो क्या तुम्हें पीड़ा न होगी?"

"बिलकुल नहीं तारा! तुम्हारे भैया जानते हैं किन की आज्ञा से मैंने उनके साथ और उन्होंने मेरे साथ विवाह किया है। दादा आज हमलोगों के बीच में नहीं हैं—जेल की पाषाणी परिधि में उनकी क्रान्तिकारी आत्मा बन्द है। पर हम दोनों को प्रति क्षण लगता है जैसे उनका सजीव स्पर्श हमारे जीवन पर दौड़ा करता है। दादा के प्रति मेरे क्या मनोभाव है यह तेरे भैया जानते हैं। वे जानते हैं मैं दादाकी पूजा करती हूँ। पर वे क्षण भरको भी इसके लिए अनमने न हुए। दादा मुझे जानते थे। उन्होंने मुझे इतने उदार और महात्मा व्यक्ति के हाथों सौंपा जो मेरे इस पूजाभाव की—धन की रक्षा कर सके। मैंने उनसे कहा था आप मेरे लिए जीवनसंगी ढूँढ़ दीजिए—अधिक समय तक मैं अब अविवाहित नहीं रह सकती। उन्होंने काफी सोच-विचार और मुझसे बहस मुबाहिसे के बाद मि० मेहरा को चुना। हमने नतशिर उनकी आज्ञा शिरोधार्य की। हमारा जीवन कितना सुखी है यह हम जानते हैं और जानते हैं हमारे पूज्य दादा। मालूम नहीं जेल में उन्हें बेबी के जन्म का संवाद मिला या नहीं?"

"मैंने लिख दिया था।"

"अपने भैया की चारपाई पर लेट जाओ तारा—रेडियो सुनना चाहो सुनो—पढ़ना चाहो पढ़ो। तुम्हारी जैसी ताजी विरहिणी का मैं और कैसे मनोरंजन करूँ ?"

तारा ने कहा—"ख़ाक मेरा मनोरंजन करोगी ! मुझे न सुनना है न पढ़ना। भाभी ! 'स्टडी सर्किल' को विस्तृत करने का आशातीत फल हुआ। उल्फत को तुम जानती हो—लक्ष्मीरतन मिल का। आज अपने दो बीमार लड़कों को छोड़कर क्लास में आया था। न जाने ऐसे कितने लोग आते होंगे। हड़तालें शुरू हो गई तो और जोर आवेगा।"

"सारा श्रेय मोहन को है। हमारे अधिकाँश साथी उसका क्लास सुनते हैं और अपना काम करने की प्रेरणा पाते हैं। दो तीन दिन तेरे भैया ने मोहन का क्लास सुना। बोले—'बड़ा सुलझा हुआ 'पोलीटिकल ब्रेन' है इस छोकरे का। तर्क और स्फूर्ति—विज्ञान और रस का अद्भुत मेल पैदा करता है।' हड़ताल तुम लोग चाहे जब शुरू करो। मैं दादा के आने तक किसी प्रकार स्थिति को टालना चाहती थी पर अब टलती नहीं नज़र आती। मालिकों की मनमानी हद से बाहर चली गई है। पर रुपये का सवाल बड़ा है। तुम लोग सोच समझ लो। हड़ताल हो तो सफल हो—मजदूरों की विजय हो। मोहन क्या कहते हैं ?"

"मोहन के कहने न कहने से क्या होता है ? जो कुछ करना है हम लोग करेंगे। रुपए की चिन्ता ज़रूर है पर कहीं न कहीं से आवेगा ही। हम लोग चुटकी चुटकी भीख माँगेगे तब भी पूरा न पड़ेगा।"

"खूब सोच समझ लेना तारा ! हड़ताल शुरू करना सहल है पर उसे सफलतापूर्वक खत्म करना कठिन है। हमारे पास काम करने वालों की कमी है—हमें कठिनाई पैसों की भी है। इस संघर्ष में हमें अपना सर्वस्व होमकर विजयी होना है। एक एक मिल

श्रौर कारखाने में मज़दूरसभा बन गई है। लोगों में उत्साह की जबर्दस्त लहर दौड़ रही है। हमें उतावलेपन से काम न कर धीरज श्रौर बुद्धिमानी से श्रागे बढ़ना है।"

"एक बात कहूँ भाभी! जब युद्ध होता है तभी मुझे लगता है मैं जीवित हूँ। संघर्ष में ही मेरे प्राण बसते हैं। जल्दी से जल्दी हमारा मोर्चा शुरू हो। हमारे साथ जनता है--हमारे साथ मजदूर श्रौर किसान हैं—हमारे साथ देश श्रौर प्रान्त के बड़े नेता हैं। हमें चिन्ता नहीं।"

"तुझे पता नहीं तारा। कॉंग्रेस की श्रोर से हमें पूरी सहायता न मिलेगी। यदि मिलेगी तो उतना पैसा न मिलेगा। श्रादमियों श्रौर नैतिक सहानुभूति से पैसे की जगह नहीं भरती।

तारा ने कहा—"बेबी श्रभीतक न जगा। पहले पहल उसे देखा है। दो बात तो कर लूँ! बड़ा शैतान लड़का है। जब मैं सो जाऊँगी तब जगेगा—सुबह मेरे जाने तक सोता रहेगा।"

भाभी ने हँसकर कहा—"तेरा भतीजा है। क्या तू कम होशियार है? बड़े बड़ों के कान काटती है। दिनभर शहर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक तेरा चक्कर लगता है।"

"भाभी! श्रब श्रपनी साइकिल निकालूँगी। उन दिनों मेरे फेफड़े कुछ खराब हो गए थे। दादा ने कहा—साइकिल छोड़ दो—इक्के पर चला करो। पैदल मुझ से चला नहीं जाता। श्रब इक्के में पैसा खराब करना नहीं चाहती। तबियत भी ठीक है। पहले ही ठीक थी। डाक्टरों का वहम था।"

भाभी ने हँसते हुए कहा—"तेरा जमाना है—चाहे साइकिल पर चल—चाहे हवाईजहाज पर! हमारे लिए यही इक्का श्रौर ताँगा है। तू तो साइकिल श्रच्छी चला लेती है।"

"श्रच्छी! मैं यहाँ से इलाहाबाद श्रौर बनारस तक कई बार साइकिल पर श्राई गई हूँ। कॉंग्रेस श्रान्दोलन में साइकिल पर ही देहातों में जाती थी। तुम सीख लो तो मैं तुम्हारे साथ

रूस तक साइकिल पर चल सकती हूँ।"

"बुढ़ापे में अब क्या सीखूँगी ?"

"बच्चा पैदा करना इस उमर में सीख सकती हो—साइकिल पर चढ़ना नहीं।" तारा ने व्यंग से कहा !

भाभी ने निष्कपट और अनुद्वेगशील कण्ठ से कहा—"बच्चे पैदा करना सीखना नहीं पड़ता। वह 'बायोलाजिकल' क्रिया है। मानव मात्र में सृजन की प्रेरणा रहती है। स्त्री में वह पुरुष से कहीं अधिक होती है। सृष्टि है यह। इसमें सीखने न सीखने का सवाल कैसा ? तुम्हें भी एक दिन आपसे आप आ जायगा ! साइकिल सीखने की तरह रोज सुबह उठकर अभ्यास न करना पड़ेगा। तब तू जानेगी सृजन का सुख कैसा विपुल है—जैसे तृणों से भरी ऊषा की भूमि। उस सुख के आवेश में तन मन शिथिल होकर सो जाते हैं—हृदय का बीज जैसे अंकुर बनकर बाहर निकल आता है। यह बात तू अभी न समझेगी।"

तारा ने कहा—"मेरा मतलब यह था कि कोई काम सीखने के लिए कभी देर नहीं होती। तुम्हें साइकिल सीखने की ज़रूरत ही क्या है ? तुम अब ड्राइव करना सीखोगी।"

भाभी ने कहा—"यह दूसरा व्यंग ! तू तो फुलझड़ी हो जाती है। बिना छुटाए आपसे आप छूटती है। तेरे इसी गुण पर मैं मरती हूँ—ज़माना मरता है। अब मैं ड्राइव करना सीखूँगी ? तुझे पता है विवाह के बाद तेरे भैया कार खरीदने जा रहे थे पर मैंने मना कर दिया। हमें कार की जरूरत क्या है।"

"आप लोगों को ही तो सबसे ज्यादा जरूरत है। आप लोग नेता हैं—समाज के उच्चयवर्ग हैं। आप लोग सदैव शासक रहे हैं और रहेंगे।"

भाभी ने कहा—"बड़े छोटे का यही भेद मिटाकर हमें वर्गहीन समाज की स्थापना करनी है। हमारा यही ध्येय है। उसकी उपलब्धि की आशा हमारे जीवन को आन्धी की तरह कर्मपथ पर लिए चले

कैसा मङ्गलमय होगा वह दिन जब हमारे देश में—इस महान ऐतिहासिक राष्ट्र में वर्गहीन समाज का निर्माण होगा—जब सब के बराबर अधिकार और सबकी एक सी मान्यतायें होंगी। श्रमसत्ता के लाल झंडे के नीचे मानव का मानव से मिलन होगा। सब सुखी और सब समान होंगे। मुझे विश्वास है मेरे जीवनकाल में यह स्वप्न पूरा होगा। जरूरत है संघर्ष की—रक्तदान की—शोषितों के महा-उत्सर्ग की। उस दिन मानवता का चरम आदर्श प्रतिफलित होगा। पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के दानव का उस दिन सदा के लिए अन्त होजायगा…… …"बेबी सहसा जागकर रोने लगा। कुर्सी से उठकर तारा पलँग के सिरहाने खड़ी होगई। बेबी को भाभी ने उठकर गोद ले लिया। उसने नन्हें कुमुदों सी आँखें खोल दीं। तारा ने ज़ोर की किलकारी मारी और बच्चे को लेने के लिए हाथ बढ़ाए। भाभी ने कहा—"धीरज धर! अभी रोयेगा। दूध पिला दूँ तब लेना—तेरे साथ खेलेगा।"

"मैं न मानूँगी। दूध दस मिनट पीछे पिला लेना।" तारा ने बेबी को गोद में ले लिया। तीन महीने का नन्हाँ मुन्ना शिशु टुकुर टुकुर उसका मुँह देखने लगा। तारा तरह तरह से रिझाने खिलाने लगी।

भाभी ने कहा—"बच्चों को इस प्रकार खिलाना और बहलाना कहाँ सीखा? तेरे तो बच्चे अभी नहीं हुए। यह भी किसी स्कूल में सीखा है?"

तारा ने भाभी की ओर देखा। वे हिरनी जैसी चंचल आँखों में शरारत की ज्योति लिए मुस्करा रही थीं। उनके मुख की उज्ज्वलता, चितवन की उज्ज्वलता से मिलकर तारा की ओर सीधी आ रही थी। तारा ने मुदित होकर लजाते लजाते हँस दिया।

## [ २३ ]

मोहन को अकेले रहते कई हफ्ते हो गए। उसने ममता के मकान-वाली सड़क से निकलना छोड़ दिया था। तारा की अकेले ममता के यहाँ जाने की इच्छा न होती थी। एक दिन उधर से जा रही थी तो दृष्टि आपसे आप ऊपर चली गई। ममता खिड़की पर खड़ी उस को देख रही थी। 'नीचे से तारा ने दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया। ममता ने हाथ से रुकने का संकेत कर दासी को उसे बुलाने के लिए भेजा। ऊपर ममता के उसी पूर्वपरिचित कमरे में पहुँचकर तारा बोली—"आप क्या हमेशा खिड़की पर खड़ी रहती हैं ?"

"ममता ने कहा—"आपने और कब देखा ? यह सड़क आप लोगों ने छोड़ ही दी। मेरे भैया अच्छी तरह हैं ?"

तारा ने कहा—"मैं नहीं जानती।"

ममता ने कहा—"यह कैसी बात ? वे आपके यहाँ रहते हैं—आप उनकी कुशल अकुशल नहीं जानतीं। मैं कैसे मान लूँ ?"

तारा ने ममता के चेहरे पर आँख गड़ाकर कहा—"नहीं बहन ! अब वे मेरे यहाँ नहीं रहते। जिस दिन आपसे मिलकर गई उसके दूसरे दिन सुबह वे अपना सामान लेकर चले गए। मैंने रोका पर माने नहीं।"

"नाराज होने का स्वभाव तो उनका नहीं। क्या आपसे कोई ऐसी बात होगई ? क्या पहले भी आपका मकान छोड़कर जाने के लिए कह रहे थे।"

"आपके यहाँ से घर जाते समय रास्ते में मैंने कहा—आपको ममता के यहाँ सप्ताह में एक बार जाना चाहिए। बोले—मैं न जाऊँगा। मैंने कहा—मैं आपके लिए वायदा कर आई हूँ। आपको ज़रूर सप्ताह में एक बार उनके यहाँ भेजती रहूँगी। इस

पर नाराज हो गए। मुझसे बहस करते रहे पर मैं क्यों दबने लगी। मैंने तुमसे ऐसा वायदा तो न किया था लेकिन अपनी बात पर अड़ी रही। सुबह वे चल दिए। मैंने दो एक बार रुकने को कहा भी! फिर मैं क्रोध में ऊपर जाकर बैठ गई।"

ममता ने चिन्तित स्वर से कहा—"मेरे घर आने जाने के प्रसंग को लेकर क्यों इतना विवाद् खड़ा किया? मेरे यहाँ न आवेंगे—देखने को न मिलेंगे तो मैं मर न जाऊँगी। प्राण हो तब तो निकलेगा—नहीं है तो क्या जायगा। तुमने उनसे यह सब गलत क्यों कहा? मेरी तुम्हारी कोई बात थी नहीं।"

तारा ने उत्तेजित स्वर से कहा—"इसलिए कि मैं तुम्हारी स्थिति में जब अपने को रखकर सोचती हूँ तो लगता है यह उनकी घोर स्वार्थपरता है। उनकी बात पर विश्वास करते हुए भी मैं तुम्हारे साथ किए गये उनके इस जीवनव्यापी व्यवहार से सहमत नहीं हो सकती। मैं पशुता कहूँगी इसे!"

"ठहरो तारा! भैया के खिलाफ एक शब्द मैं नहीं सुन सकती। वे जो हैं मेरे हैं—जो नहीं हैं मेरे नहीं हैं। तुमसे हाथ जोड़कर निवेदन करूँगी—मेरे सामने और हो सके तो और कहीं भी मेरे मोहन भैया के लिए अपशब्द न निकालना।"

तारा से बात न बढ़ाई गई। ईर्षा की वेदना ने उसके सारे शरीर में दौड़कर मानों गला दबा दिया।

ममता ने कहा—"तुम इतना नहीं जानतीं बहन! सच्चा प्रेम जिस आसानी से नजदीक खींच लाकर हृदय से हृदय सटा देता है उसी तरह बेरहमी से वह दूर—बहुत दूर भी फेंक आता है। बिजली की डी० सी० और ए० सी० करेन्ट की तरह प्रेम के दोनों रूप हैं। वे यहाँ आते हैं—देखने को मिलते हैं तो मुझे सुख होता है। पर वे न आवेंगे तो मुझसे छिन न जाँयगे। जिस दिन उनके बिना मेरी नाव पार लगते न दीखेगी उस दिन जब मैं बुलाऊँगी तो वे न आयें ऐसी

उनमें नहीं है। तुमने यह कर क्या डाला बहन!"

तारा का चेहरा स्याह हो रहा था। इसे उसने आपही अनुभव कर एक फीकी मुस्कराहट की आड़ में अपने को छिपाना चाहा पर चेष्टा करने पर भी उसके होठों पर मुस्कराहट की रेखा न आई।

ममता ने कहा—" वे कहाँ गये हैं बता सकती हो—किसी मित्र के यहाँ या होटल में?"

तारा ने कहा—"कहते थे दो तीन रुपये महीने की कोठरी लेकर रहूँगा। खाना किसी होटल में खायँगे। कहते कुछ हैं—करते कुछ हैं। उनके मन की बात कौन जाने?"

ममता ने कहा—"उनका स्वास्थ्य जैसा है तुम जानती हो। घर में तुम थीं—नौकर था। उन पर हर प्रकार का बन्धन था। समय पर खाना सोना और नियमित रूप से पढ़ना लिखना। वहाँ जाकर जाने कैसे रहेंगे और स्वास्थ्य भी बिगड़ जायगा। मैं घबराती हूँ बहन! तुमने ठीक नहीं किया।"

तारा ने चिढ़कर कहा—"मैंने क्या कहा—क्या किया जो तुम बार बार मुझे दोष देती हो। मैंने उन के सुख के लिए कहा था। क्या मैं अन्धी हूँ? क्या मैं नहीं जानती या देखती तुम्हारे घर आने पर उन्हें कैसा आत्मिक उल्लास—कैसा आत्मसन्तोष मिलता है। आखिर क्यों तुम्हारे यहाँ से वह कटे कटे रहते हैं? उस दिन जिद करने पर मुझे लेकर यहाँ आए। कहते थे—अकेली चली जाओ।

भीतर भीतर ममता के प्राण डोल उठे। अपने आवेग को घोंटते हुए बोली—"आप उन्हें क्यों मजबूर करके यहाँ लाई थीं? इस तरह अन्य बहुत बातों के लिए आप उन्हें मजबूर करती रही होंगी—वे अपनी जान बचाकर भाग निकले।"

तारा की लज्जा की सीमा न रही। बोली—"मैं चुनौती दे सकती हूँ—मैंने उन्हें किसी बात पर आज तक मजबूर नहीं किया। जब जो चाहते रहे हैं उन्होंने किया है। हम लोग दो मुसाफिरों की

तरह एक साथ रहते थे।"

ममता ने तीव्र दृष्टि से तारा की आँखों में देखते हुए कहा—"आप सत्य कहती हैं ? आपने उन्हें किसी बात के लिए ज्ञात या अज्ञात रूप से--प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भाव से कभी मजबूर नहीं किया ? क्या आपने अपने किसी व्यवहार से अपने को उनके लिए असहनीय नहीं बना दिया ? केवल मेरे यहाँ आने की बात पर वह आपका मकान छोड़कर इतनी जल्दी न जा सकते थे--खास कर जब उनके और आपके दादा जेल में हैं।"

तारा के माथे की नसें फूलने लगीं। बोली—"आपका मतलब मैं नहीं समझी। और खुलासा कहिए—संकोच छोड़िए।"

ममता ने कहा—"खुलासा मैं नहीं कहना चाहती। आपको मैं कुन्दज़ेहन नहीं समझती कि आपने मेरी बात का मतलब न समझा हो।"

तारा ने कहा—"व्यर्थ की बात छोड़िए। साफ कहिए क्या बात है ?"

ममता ने कहा—"उनके चले जाने का जो कारण आपने मुझे बताया है वह गलत है या केवल बहुत स्थूल। मैं उनके चले जाने का कारण दूसरा ही समझती हूँ।"

तारा ने कहा—"आप दूसरी मुलाकात में मेरे ही मुँह पर मुझे झूठा कह रही हैं। क्या मेरा अपमान करने के लिए ही आपने नीचे से ऊपर बुला भेजा है ? जो बाकी बचा हो वह भी कह लीजिए। मैं इकट्ठा उत्तर दूँगी।"

ममता ने हाथ जोड़कर कहा—"आपका अपमान करने की न तो मेरी रंचमात्र अभिलाषा है न हिम्मत। आप ऐसा न सोचें। मैंने केवल अपने मन की बात कही थी। जितनी संभावना उसके ठीक होने की है उतनी ही उसके गलत होने की भी।"

"आपने पूरी बात अभी नहीं कही। उसे आपको पूरा करना होगा।" तारा ने उत्तेजित स्वर से कहा।

ममता ने कहा—"आपने उनके प्रति यदि अनुरक्ति दिखाई तो क्या आप समझती हैं उनके लिए यह सब सह्य हुआ होगा। मैं उन्हें शुरू से जानती हूँ बहन! गाँव में इसी बात को लेकर दो तीन सहेलियों से मेरी सदा के लिए अनबन हो गई।"

तारा अधिक उत्तेजित होकर बोली—"नहीं नहीं! हरगिज नहीं। आप अपने जैसा सबको न समझें। मैं स्वयं ऐसे बने हुए लोगों से दिल से घृणा करती हूँ। आप सोचती हैं मैं उनके प्रति आसक्त रही। हा हा हा हा!" नशेबाजों की तरह हँसते हुए तारा ने कहा—"न तो मुझे प्रेम करने की फुरसत है और न कानपूर जैसे विराट शहर में उसके लिए आदमियों की कमी।"

ममता ने कहा—यह व्यर्थ का अभिमान है बहन! फुरसत में यह काम नहीं होता। जीवन जब कठोरतम रूप से कार्यग्रस्त और क्रिया-व्यस्त होता है उस समय भी प्रेम करने के लिए अवकाश मिल जाता है। भैया के वहाँ से चले आने का मूल कारण मैं यही समझती हूँ। मन में न रखकर मैंने साफ कह दिया। मुझे क्षमा कर सकें तो कर दें।"

तारा ने कहा—"मोहन आपके लिए देवता हो सकते हैं। कामदेव इन्द्रदेव, ब्रह्म—क्या कहूँ मैं तो अधिक देवताओं का नाम भी नहीं जानती—सब कुछ हो सकते हैं। पर मेरे किस व्यवहार से आपने उनके प्रति मेरे प्रेम की कल्पना की?"

ममता ने कुछ और कहना ठीक न समझा। उसके होठों के कगारों पर शरद के मेघ सी धुँधली हँसी नाच रही थी। सिर नीचा किए बैठी रही। तारा की वही अवस्था थी जैसी एक सभ्य सुसंस्कृत व्यक्ति की चोर कह देने से हो जाती है। क्रोध से वह भीतर भीतर उबल रही थी। जिस अधिकार और दर्प के साथ ममता यह कह रही है वह उसे सहन क्यों नहीं होता।

तारा ने ममता की खामोशी से झल्लाकर कहा—"वे आपके यहाँ आते या न आते—मुझे इसमें कुछ मिल न जाता। मैं केवल इन्सानियत

के नाते उनसे कह रही थी। मेरी इतनी बात भी उन्हें सहन न हुई तो न हो। मैं खुद ऐसे आदमी के साथ रहना पसन्द नहीं करती। उन्होंने ही अपना और आपका सम्बन्ध मुझे बताया था। मैंने कभी पूँछा न था। इस पर यदि मैं उनसे एक बात कह दूँ तो वे इतने नाराज़ हो जाँय! खैर! मुझे आपके उनके बीच में बोलने की जरूरत न थी। मैंने व्यर्थ में यह भूल की। अब चलूँगी।"

"नहीं नहीं! अभी कैसे जाँयगी। चाय पी लीजिए। नौकरानी से मैंने पहले ही कह दिया है। ला रही है।"

तारा ने तमतमाते हुए कहा—"नारी होकर नारी का इस प्रकार अपमान करना आपकी समझ में कितना शोभनीय है मैं नहीं जानती। अधिकार-चेतना और दर्प की सीमा होती है। आपने यह कैसे समझा कि मैंने अपने को उनके ऊपर लादना चाहा और वे इसीलिए विरक्त होकर चले गए। आपको अभी पता नहीं मैं उस आदमी की बहन हूँ जिसने कानपूर की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी लड़की को अपने साथ व्याह करने से रोककर दूसरे व्यक्ति को सौंप दिया। आपने मुझे बाज़ारू औरत समझा। ठीक है—पत्नी पति के विचारों का प्रतिबिम्ब होती है। जो राय मेरे सम्बन्ध में आपके पतिदेव रखते हैं वही आपको विवश होकर बनानी पड़ेगी।"

ममता पर इस व्यङ्ग का प्रभाव पड़ा। शान्त कंठ से बोली—"इसमें बाज़ारूपन की क्या बात है बहन! प्रेम तो जीवन का सबसे बड़ा वरदान और सुख है। आत्मा की सबसे श्रेष्ठ पुकार है वह।" फिर ममता धीरे से तारा के बगल में आकर बैठ गई और उसका हाथ अपने हाथ में लेकर बोली—"नाराज होने की बात नहीं—मैंने सहज भाव से यह सब कहा है। मोहन भैया में अद्भुत मोहनी है। रूप, तेज, बुद्धि और चरित्र का ऐसा बढ़िया मेल जल्द नहीं मिलता। तुम बराबर उनके साथ रहती थीं। तुम दोनों के जीवन की दिशा एक थी। एक लक्ष्य था—एक पन्थ और एक गति। ऐसी स्थिति

में तुम्हारे मन में इस रिश्ते का अंकुरित न होना ही आश्चर्य होगा·· मेरे दर्प और अधिकार की तुमने एक कही! ये सब मेरे पास होते तो मैं आज यहाँ बैठी परतन्त्र बनी अपना सतीत्व लुटाती। मैं किस बूते पर कोई बात कहूँगी। वैसा करना मेरे स्वभाव में नहीं है। जिसका वे स्वयं आदर करते हैं उसके प्रति असम्मान दिखाकर मैं कैसे अपने आप में रह सकूँगी?"

तारा ने कहा—"आप क्यों झूठ बोलती हैं। आप कैसे यह कहती हैं वे मेरा आदर करते हैं।"

"मैंने जब जब आपका उल्लेख उनसे सुना है हार्दिक आदर और श्रद्धा के साथ। जिसका वे आदर करें उसका आदर और जिससे वे घृणा करें उससे घृणा मुझे करनी ही चाहिए।"

चाय आ गई। तारा ने पीते हुए पूँछा—"तब से आपके घर वे नहीं आए?"

"नहीं बहन! पर अब बुलवाना होगा। दो चार दिन देख-कर किसी दिन पत्र लिखूँगी। यहाँ न आयेंगे तो मैं खुद उनके घर जाऊँगी। सुना सीता का ब्याह तय हो गया है। यदि वे जाँयगे तो मैं साथ जाऊँगी। वे न जाँयगे तो मैं भी न जाऊँगी।"

"हड़तालें शुरू हो जाने पर उनका जाना न हो सकेगा। हम लोग अधिक न रुकेंगे। हमारी शर्तें मिल मालिकों ने न मानां तो हमें आम हड़ताल करनी पड़ेगी।"

"भैया के बिना गये न बनेगा। यह भी कोई बात है। इकलौती बहन का ब्याह है। उन्हें जाना पड़ेगा। मैं भी एक बार बाबुल का देस देख आऊँगी।"

तारा ने चाय पीकर प्याला एक ओर रख दिया। ममता ने पूँछा "आपके यहाँ तो कभी कभी भैया आते होंगे।"

तारा ने कहा—"मेरे आने की जरूरत क्या है। मैं घर में मुश्किल से घन्टे दो घन्टे बैठती हूँ। उस समय तो आये नहीं।

आप सोचती हैं मैं अकेली हूँ इसलिए मेरी खोज खबर लेने······"

ममता ने हँसते हँसते कहा—"आपकी अकेले रहने की क्षमता पर मुझे कण भर भी अविश्वास नहीं है। अवसर पड़ने पर हम सब अकेले रह सकती हैं। मेरा मतलब था कोई न कोई काम लगा रहता होगा—पार्टी का ही सही। कभी कभी आते रहते होंगे।"

तारा ने कहा—मेरे यहाँ तब से नहीं आए। एक दिन जाकर उनका घर देख आऊँगी कोई तकलीफ तो नहीं है। चारपाई वगैरह यदि बाजार से न लाए होंगे तो घर से भेजवा दूँगी। बरतन भी उनके पास नहीं हैं। जल्द ही किसी दिन जाऊँगी।"

"जरूर जाना बहन! मैं तुम्हारे साथ बाद में चलूँगी। पत्र मैं उन्हें कल ही लिखूँगी। न हो तुम आज ही चली जाओ। मुझे सब देखकर बता जाना कैसे रहते हैं। आये दिन तो उन्हें बुखार हो आता है।"

तारा ने रुखाई से कहा—"आज क्या शायद मैं इस हफ्ते भर न जा सकूँगी। मुझे और भी काम रहते हैं। एक दिन जाऊँगी जरूर। कहीं इधर उधर भेंट हो जाय तो डेरा पूँछ लूँ। कलकत्ते से एक कामरेड आ रहे हैं। पार्टी आफिस में उनका व्याख्यान होगा। उसमें आवेंगे ही। वहीं से साथ साथ चली जाऊँगी। चिन्ता क्यों करती हो।"

"चिन्ता करके ही क्या कर लूँगी? जिस बड़े सत्य की ड्योढ़ी पर मैं दिन रात खड़ी रहती हूँ वहाँ चिन्ता का स्थान आस्था ले लेती है। मुझे माफ करना अगर मैंने तुम्हें अनुचित बात कही हो। मैं उनका स्वभाव जानती हूँ। कब कौन बात उनके दिमाग में आ जायगी यह वे नहीं जानते पर मैं जानती हूँ। तुम मुझसे आकर सब बता जाना। मैं तुम्हारी राह देखूँगी।

तारा ने अनमनी होकर कहा—"अब मैं चलती हूँ।"

ममता ने करुण कण्ठ से कहा—"मुझे भूल न जाना बहन! मैं

बड़ी दुखिया हूँ । तुम जहाँ हो वहाँ पहुँच सकूँ। ऐसी मुझ में सामर्थ्य नहीं है ।"

तारा नमस्ते कर बाहर निकल आई ।

## [ २४ ]

पाँच छः दिन से मोहन की तबियत ठीक न थी। मजदूरों की बस्ती में एक 'क्वार्टर' उसने पाँच रुपए महीने पर ले लिया था। सुबह से लेकर ग्यारह बजे तक घर में पड़ा पड़ा लिखता पढ़ता। तब बाहर निकलता और होटल में खा पीकर बारह बजे के लगभग दफ्तर पहुँच जाता। वहाँ जब तक इच्छा होती बैठता फिर इधर उधर घूमता और दूसरे काम करता। शाम को कभी घर आता— कभी बाहर ही बाहर क्लास लेने चला जाता। दस बजे के बाद क्लास खत्म कर होटल से खाना खाता हुआ घर लौटता और लालटेन जलाकर जमीन पर बिछे बिस्तर पर लेटता। थोड़ी देर तक पढ़ने के बाद (कभी कभी बिना पढ़े ही ) उसे नींद आने लगती और लालटेन की बत्ती गुल कर सो जाता। आस पास के मजदूर उसके आने की टोह लिए रहते—उसके आते ही वे पहुँच जाते। थका थका मोहन बिस्तर पर लेट जाता—वे लोग वहाँ बैठ कर तरह तरह की प्रासंगिक और अप्रासंगिक बातें किया करते। ज्यादातर बातें होने वाली हड़ताल को लेकर चलती थीं। मोहन तरह तरह से उनकी शंकाओं का समाधान करता।

इधर शाम से मोहन को ज्वर हो आया करता था। वह अपने शरीर और स्वास्थ्य की ओर से अत्यधिक लापरवाह था। शाम को खाना खाना उसने छोड़ दिया—कभी दूध और फल कभी कुछ नहीं। मगर आराम उसे न मिलता था। अक्सर अपने साथियों के क्लास उसे लेने पड़ते थे। कोई बीमार पड़ जाता—कोई बाहर चला जाता—कोई किसी अन्य आवश्यक काम में फँस जाता।

मोहन के पास वे लोग आते—मोहन सहर्ष उनका क्लास भी ले लेता। काम करने में वह घोर ईमानदार था। जितना वह कर सकता था उससे कम काम करने में उसे बौद्धिक बेईमानी जान पड़ती थी। दुनिया में वह सब से अधिक इसी चीज से घृणा करता था। आज शाम से मोहन को ज्वर अधिक हो आया था—हाथ पैर की उँगलियों में जलन हो रही थी। दफ्तर से वह सीधे घर आ गया। दरवाजा उसने खुला छोड़ दिया और बिस्तर पर लेट गया।

अँधेरा पूरे वेग के साथ आकाश से बरस रहा था। मोहन आँखें बन्द किए चुपचाप लेटा था। सिर में भारी पीड़ा थी। उसने तय किया वह आज क्लास न लेगा। सहसा दरवाजे पर किसी परिचित कंठ की आवाज सुनाई दी। "यह मकान है उनका"—कौन आया जिसे मकान बताया जा रहा है। दरवाजा खोलकर रामचरन और पीछे पीछे ममता ने प्रवेश किया। मोहन ने चौंककर कहा—"मम्मी! तुम!"

"हाँ भैया! मैंने सुना तुम बीमार हो। लेटे रहो न। बुखार है क्या?"

"बुखार तेज नहीं पर सिर में भारी पीड़ा है। भाई रामचरन। एक दरी अपने घर से लाकर बिछा दो। मुझे बैठने में तकलीफ होगी।" मोहन उठने की चेष्टा करने पर भी न उठ सका।

"जरूरत नहीं" कहकर ममता सिरहाने जमीन पर बैठ गयी और मोहन के माथे पर हाथ फेरने लगी। ज्वर से माथा तप रहा था। ममता ने कहा—"तुम्हें काफी ज्वर है। क्या रोज ऐसे आता है।"

"रोज हलका हलका रहता है। आज खुलकर आ गया। अच्छा है—दो एक दिन में साफ हो जायगा। तुम्हें किसने बताया?

"कल तारा बहन मेरे घर गई थीं। उनसे पता लगा। मैं ताँगा मँगाती हूँ। तुम मेरे साथ चलो। यहाँ तुम्हारे पास चारपाई तक नहीं

है। तुम्हें यहाँ नहीं छोड़ूँगी।"

"ऐसी क्या बात है। सुबह तबियत ठीक हो जायगी। तुम देर न करो। जल्द घर लौट जाओ। भाई साहब............"

ममता ने बात काटकर कहा—"मुझे उनकी परवाह नहीं। वे यहाँ हैं भी नहीं—व्यापार के काम से बाम्बे गये हैं।"

"मगर तुम आईं क्यों? वे सुनेंगे तो क्या सोचेंगे! तुम्हारा यह लड़कपन मुझे बुरा लगता है। आइन्दा तुम यहाँ आईं तो मैं कानपूर छोड़ दूँगा। जिस बात से मुझे नफरत है वही तुम करती हो।"

ममता ने दृढ़ता से कहा—"तुम्हें छोड़कर मैं न जाऊँगी। मेरे साथ न चलोगे तो मैं रात भर यहाँ बैठी रहूँगी। तुम्हें बुखार तेज है—रात में बढ़ सकता है। भाई रामचरन! तुम जाओ और ताँगा ले आओ।"

मोहन ने चिल्लाकर कहा—"मैं कहीं न जाऊँगा। मैं यहीं रहूँगा। रामचरन! दरी ले आओ जाकर। मम्मी! तुम्हारा इस प्रकार अकेले—बिना नौकरानी के—यहाँ आना ठीक नहीं हुआ। हैरान हो गया मैं तो। तुम्हें कितना समझाऊँ? आखिर क्या चाहती हो?"

ममता के चेहरे पर भयानक उदासी थी। मोहन भर नज़र देख भी न सका। बेचैनी से उठकर कमरे में टहलने लगा।

ममता ने झपटकर मोहन का हाथ पकड़ा और बिस्तर पर लिटा दिया।

"मैं कहाँ से तुम्हारे मन में पैठ जाऊँ? आँखों से मतवालों की सी बेहोशी उड़ेलते हुए मोहन बोला—"मैं मर नहीं रहा था। पति की अनुपस्थिति में इस प्रकार तुम्हारा घर छोड़कर चल देना उचित नहीं हुआ। तुम्हारी जरूरत होती तो मैं तुम्हें सूचना देता।"

"सूचना वह देता फिरता है भैया! जिसके हृदय में स्वयं बल नहीं होता। तुम मुझे खबर दोगे—तुमसे ऐसी आशा नहीं। मैं जो करती हूँ मुझे करने दो। मेरे कामों की जवाबदेही मुझ पर है। मुझे मत रोको। रुकने की सीमा होती है। यहाँ आकर मैंने कौन गुनाह

कर डाला !"

ज्वर और प्राणों की व्यापक उत्तेजना के कारण मोहन का मुँह तमतमाया हुआ था। खाली खाली आँखों से वह कमरे की छत देख रहा था।

ममता क्वार्टर के भीतर का दृश्य देख रही थी। छोटा सा आँगन था जिसमें एक ओर पाखाना और नल था। सामने एक बड़ी दालान और दूसरी ओर एक छोटी सी दालान थी जो शायद चौके के लिए थी। भीतर जो कमरा था उसमें मोहन लेटा था—मोहन के नीचे जमीन पर एक दरी और गन्दी चादर बिछी थी जो शायद जब से बिछी तब से बदली नहीं गई। ढेर की ढेर किताबें, कागज और पत्र-पत्रिकायें इधर उधर फैली थीं। कमरे और दालान में धूल ही धूल थी। एक ओर मोहन का बड़ा लोहे का ट्रन्क खुला पड़ा था। मैले कपड़े और बीड़ी सिगरेट के टुकड़े इधर-उधर बिखरे थे। दिन रात जो मजदूर मोहन को घेरे बैठे रहते वे सब पीते और वहीं फेंकते थे। ममता ने मकान एक निगाह से देख लिया। पूरा घर जैसे लज्जा से तना जा रहा था।

ममता ने कहा—"यहाँ आने पर लगता है मेरा सारा खोया अस्तित्व मुझे फिर मिल गया है। मुझे और कुछ न चाहिए। इससे अधिक की न जीवन में लालसा रही है—न तुम दे ही सकोगे। पर लगता है यह भी तुम्हें सहन नहीं। क्यों इतने चिन्तित हो भैया !"

सचमुच मोहन की चिन्ता का अन्त न था। हृदय में कठिन जीवन का समस्त पुन्जीभूत विषाद जैसे जाग उठा था। इस अपवाद का अन्त ममता के जीवन में कहाँ जाकर होगा ? मिथ्या का कितना बड़ा पर्वत न खड़ा हो जायगा और यदि ममता के पति ने उसके जीवन के इस सत्य का विद्रूप बनाकर एक दुखान्त नाटक खड़ा कर दिया तो·······

मोहन बोला—"तुमने भाई साहब से यहाँ आने के लिए पूँछा था !"

"मैंने जरूरत नहीं समझी। वे जहाँ जाते हैं वहाँ के लिए मुझसे पूँछते हैं? रानी रूठेंगी—अपना सोहाग लेंगी। साल में पेट भर रोटी और चार धोती की गुनहगार हूँ। घर से निकाल देंगे तो कहीं भी मेहनत मजदूरी कर लूँगी।.........." कहते कहते एक विचित्र मृतप्राय भाव ममता के चेहरे पर फैल गया—ठीक वैसा जैसा तूफान निकल जाने के बाद स्तब्ध और आवेगहीन वायुमंडल में फैल जाता है। ममता का गर्व-दीप्त कठोर मुखड़ा राख से ढकी आग की तरह हो गया था।

सारे शहर का—सम्पूर्ण सृष्टि का अन्धकार मानों ठूँस ठूँसकर बाहर मजदूरों के उस हाते में भर दिया गया था। कहीं रोशनी न थी। घरों में चिराग अवश्य टिमटिमा रहे थे पर सूर्य के ताप और प्रकाश के जहाँ अत्यन्त क्षीण दर्शन होते हैं उन क्वार्टरों के आँगनों और दालानों की नस नस में धँसा अँधियारा रात को अवकाश पाकर कोढ़ की तरह दीवारों पर फूट निकलता है।.........मोहन ने खिड़की से बाहर हाते की तरफ देखते हुए कहा—"तुम जाओ मम्मी! अब रात अधिक हो रही है। तुम्हारा मकान दूर है। रामचरन के साथ लौट जाओ! चलता मैं खुद पर मजबूर हूँ।"

"मैं रात भर रहूँगी—तुम मेरे साथ चलो। वरना मैं यहाँ जमीन पर पड़ी रहूँगी।"

"मुझे बुखार में जलाओ न मम्मी ......तुम रहोगी तो मैं रात भर सो न सकूँगा। ऐसे ज्वर में रात भर जागना क्या मेरे लिए हितकर होगा?"

"तुम सोओ न—मैं रोकती हूँ क्या? पास बैठी भर हूँ। तुम्हारा क्या लेती हूँ।"

"मेरे पास लेने के लिए है क्या जो तू लेगी। मेरे पास बैठकर कहीं अपना कुछ न खो दे—यह मैं डरता हूँ।"

"मेरा दिल फटफटा रहा है। तुम्हारी यह हालत देखकर मैं कैसे लौट जाऊँ? क्यों तुम मुझे बिलकुल पत्थर बना देना चाहते हो?"

"मैं तुम्हें क्या बना देना चाहता हूँ—क्या नहीं—यह जब मैं ही नहीं जानता तब तुम कैसे जान सकोगी ? पर मेरे भीतर विवेक है··· एक ज्वलन्त विवेक······दहकते लोहे की तरह लाल लाल·· ···"

"उसमें भस्म होने के लिए मैं ही हूँ ? मुझे जलाकर क्षार कर देना चाहते हो पर मैं इतनी आसानी से न जलूँगी। मैं तुम्हारी आग बुझा दूँगी—तुम्हारे विवेक को ठंडा कर दूँगी। मेरे लिए सबसे भयंकर क्षण वे होंगे जब मेरा विश्वास तुम पर डगमगाने लगेगा। अभी तक वैसा बुरा मुहूर्त नहीं आया।"

मोहन ने उठाकर अपनी चादर मुँह पर डाल ली।

"इस तरह मुझे आँख की ओट करने से काम न चलेगा। तुम्हें मुँह खोलना होगा—मैं इस प्रकार विमुख न होने दूँगी। तुम्हें पाने की साध बचपन से करती रही—नदी में जाकर तुम्हारे कल्याण के लिए असंख्य संध्यादीप बहाए—रोज तुलसी चौरे पर साँझ को दीपक जलाते समय तुमको पाने का रक्तभरा अरमान हृदय खोल·कर विराट अम्बर को दिखाती रही। तुम इस तरह नहीं भाग सकते। मैं बराबर यहाँ रहूँगी।"

मोहन ने मुँह बाहर निकाला। उसकी आँखों से एक विचित्र किरण निकल रही थी। ममता की आँखें नीचे झुक गईं। उसे लगा—यहीं आकर वह विवश हो जाती है—जैसे इसी प्रवाह को झेलने का सामर्थ्य उसमें नहीं। उसकी आत्मा फुफकारते फुफकारते सहम उठी। उसके नीचे झुके अनुगत नेत्रों की चमक सहसा स्थिर हो चली। ममता को लगा मोहन के कुछ कहने के पूर्व ही वहाँ निस्तब्ध और भीषण वातावरण छा गया। अपनी ही साँस लेने में उसे शरीर में काँटे उगते जान पड़ने लगे। साहस करके बोली—"कब तक गले की रस्सी को आलिंगन का पाश समझूँ ? तुम सामाजिक व्यवस्था का नाम लेकर बारबार मुझे यह वैधव्य का सा जीवन बिताने को कहते हो ! एक झूठी मर्यादा को छाती से चिपटाए रहकर मैं दिन काटूँ ? पवित्रता की यह भावना मुझे मंजूर नहीं। तुम्हें क्यों मेरी सूरत देखते ही भय लग

आता है ? जब तुम्हें संकोच नहीं तो दुनिया की राय की परवाह क्यों करते हो ? समाज का इतना निर्दय दबाव तुम क्यों मुझे सहन करने को कहते हो ...."

"व्यक्ति के विद्रोह पर मेरा विश्वास नहीं—समाज की क्रान्ति और परिवर्तन लाने की शक्ति पर मेरा विश्वास रहा है। अपनी बगावत को समाज की बगावत की ओर ले चलो। वहीं सच्चा रास्ता है। वही ठीक हल है।"

"तुम मुझे क्या करने को कहते हो ? सुनूँ अपने जीवन के समस्त आनन्दलोक के विसर्जन का बाजा मुझे कैसे बजाना होगा।"

"मैं तुम्हें जीवन का जयगान सिखा रहा हूँ। तुम केवल अपना सुख और पूर्णता देख रही हो। समाज की शृङ्खलायें तोड़कर जब तुम नवविधान रचने बैठोगी तब अपना हनन करना कठिन न लगेगा। सब के सुख और संतोष के लिए एक दो दस बीस का ध्यान तुम तब छोड़ दोगी। दिखा दो तुममें शक्ति है—संयम है—अपने को कुचलकर दूसरों को बनाने की क्षमता है। अपने असन्तोष और अतृप्ति को लेकर जीवन से लड़ने झगड़ने का अधिक मूल्य नहीं। न वे दिन हैं न वह स्थिति। समाज का नवनिर्माण करने से पहले हमें यह दिखाना होगा कि उसके बन्धनों में चलने—उसकी विधियों और निषेधों को मानने का हममें बल है। व्यक्ति की सहूलियत की माँग तो कभी कम न होगी। तुम ऐसे समाज की क्या कल्पना कर सकती हो जिसमें व्यवस्था और बन्धन न होंगे। पुरानी व्यवस्था को दूर कर उसके स्थान पर नयी व्यवस्था की माँग करने से पहले तुम्हें यह भी तो दिखाना होगा कि तुम उसके निर्देशों और नियमों का पालन कर सकती हो। मेरे पास रहकर तुम्हें क्या मिल जायगा ? अलग रहकर—मुझसे दूर जाकर—तुम्हें बोध नहीं होता ?"

"नहीं होता—कदापि नहीं होता। मैं साधारण, हाड़ माँस की बनी नारी हूँ। इस निकटता में जो दूरी है उसे लाँघने की प्रवृत्ति तुम मेरी कभी न होने दोगे—मैं जानती हूँ। पर मैं तुम्हारे पास

रहना चाहती हूँ। तुम अपने शरीर के साथ अत्याचार कर रहे हो। मैं यह नहीं सह सकती। मैं तुम्हारी सेवा करूँगी। मेरी यह साध क्या कभी न पूरी होने दोगे? मेरा इतना सुख भी तुम्हें सहन नहीं! मुझे दुख की—गलते हुए मोम की पुतली बनाकर ही दम लोगे। तुमसे दूर मैं कैसे रहती हूँ यह आश्चर्य है। मेरा अधिक तिरस्कार न करो। यह अकथनीय घृणा—यह बेलौस नफरत—मुझे खा जायगी।"

ममता ने गिलास में पानी लेकर पीते हुए कहा—"आज मुझे लगता है मेरे पास कहने के लिए असंख्य बातें हैं—मेरे बोलने का कहीं अन्त नहीं है। यह सब मेरी आत्मा का क्रन्दन है भैया! तुम्हारी बात मानकर मैंने जीवन के साथ यह प्रयोग किया। पर सहने की सीमा होती है! तुम यहाँ नर्क में पड़े बुखार की आँच में भुनो और मैं वहाँ ऊँचे गद्दे पर सोऊँ! मैं नहीं मानूँगी—मैं नहीं मानूँगी।" गिलास का सारा पानी ममता की हलक से लौटकर आँखों की राह फूट निकला।

"सोचो तो बहन!—तुम्हारे माता-पिता, पति—मेरे माता-पिता क्या कहेंगे? मैं कब तक तुम्हारे मकान में पड़ा रहूँगा? क्या मैं अपनेको और तुमको अपवाद के इस कीचड़ में डालूँगा? आज तक जिसे न ले सकी उसे लेकर देखो! जिससे सदा दूर रह कर रोया करती हो—उस देवता के चरणों के पास तृप्ति की पूजा करो। तुम देखोगी जीवन से अज्ञान कितनी जल्द दूर होता है—आत्मा पर छाया हुआ कुहरा कितनी जल्दी कटता है—प्रतीक्षा के युग कैसे पुलक के क्षण बन जाते हैं!"

"तुम पास रहोगे तो मैं तुम्हारे बल के सहारे अपनी नैया खे ले जाऊँगी। परदा फट सकता है—अज्ञान टूट सकता है—कुहरा मिट सकता है पर बीच में चीन की दीवार की भाँति जो दीवार खड़ी है वह कैसे टूटेगी? उसे गिराना—मिटाना नामुमकिन है। जो तुम्हें जानते हैं वे तुम्हारे प्रकाश में मुझे भी देख लेंगे। मैं

तुम्हारे साथ रहकर तुम्हारा जीवनमंत्र चारो ओर फूकूँगी। जो ज्वाला तुम देशवासियों के हृदय में धधका रहे हो उसमें मुझे भी आहुति देनी होगी—तुम्हारी बहन होने के नाते। मुझे मत रोको भैया !—जिन्दगी की छाती पर कठोरता से प्रहार करने दो।"

मोहन ज्वर में जैसे दिवास्वप्न देख रहा था। ममता कहती गई—"उस दिन तारा बहन कह रही थीं—तुम्हारे प्रेम की स्थिर गंभीरता के सामने संस्कृति और धर्म निस्तेज लगते हैं। तुम स्वतन्त्र विकास की पुजारिन अपना आदर्श स्वयं क्यों नहीं खोज निकालतीं? क्यों प्रत्येक बात में दासी की तरह मोहन का मुँह जोहा करती हो। मैंने किसी औरत की किसी पुरुष के प्रति ऐसी व्यापक निष्ठा—ऐसी कृतज्ञ लिपट पहले नहीं देखी.............." मैं सब सुनती रही। मेरे 'फ्रस्टेशन' की घुमड़न को कौन समझेगा? मैं एक न सुलझने वाली उलझन बनकर रह गई। अपनी छाती पर यह चट्टान रखकर कब तक अपने को बरबाद करूँ? उस दिन मैंने अपने को विधवा कहा तो तुम क्रोध से भर गए थे। पर आज ऐसा हो जाय तो मैं क्या सोचूँगी—एक रस्म अदाई थी जो हो गई। मैं विधवा पहले से थी।"

मोहन ने जैसे हैबतनाक सपने से चौंककर कहा—"यह सब ठीक नहीं बहन! ऐसा सोचना भी न चाहिए।"

"क्यों न कहूँ? याद है उस दिन मैंने कहा था—संसार का सारा अकल्याण और अमंगल आज से मुझे घेरकर लिपटा चलेगा। उठते बैठते लगता है मुझे सर्वनाश चारो ओर से छाए है। किसी दिन खुल पड़ेगा और मुझे निष्प्रयोजन की कठपुतली बनाकर छोड़ दूसरा घर खोजने चला जायगा। हमारे समाज में—हमारे देश में ऐसे घरों की कमी नहीं है भैया!"

मोहन बोला—"तुम्हें अकल्याण और अमंगल की रेखा कौन कहेगा बहन! तुम कल्याणी हो—भक्ति छोड़कर कर्म के कर्तव्य-पथ पर प्रवेश करो।"

"तुम्हारी भक्ति जिस दिन छोड़ दूँगी उस दिन पंगु हो जाऊँगी। कहीं किसी ओर फिर जा न सकूँगी। चारों ओर के रास्ते बन्द हो जाँयगे। जीवन का यह मार्ग खुला रहने दो जिस पर बढ़ते ही आत्मा का समस्त आलोक आप से आप बाहर निकल आता है। एक युग तक जीवन इसी रश्मिरेखा पर चल चुका है। तुम्हारी भक्ति का पथ मुझसे न छूटेगा। जीवन का सूत्र है यह। चाहते हो कटी पतङ्ग की तरह मैं इधर उधर टकराती फिरूँ।"

"पर जीवन में और बड़े लक्ष्य हैं—बड़ी समस्यायें हैं! समाज की वर्तमान पाशविक आर्थिक—असमता को देखो। पूँजीवाद ने हमारे समूचे जीवन को कैसा विकृत और अवाँछनीय बना दिया है। व्यक्ति की पूजा छोड़कर सामाजिक प्राण का मूल स्वर पकड़ो! कर्म की जलती शिखा बनकर समाज के ऊपर घिर आओ! केवल विगत के गीले प्रतीकों में न खोई रहो!"

आँधी की तरह तारा ने कमरे में प्रवेश किया। ममता बैठी मोहन के सिर पर तेल मल रही थी। लेम्प की ज्योति धीमी थी—दरवाजे से एक स्त्री की छायामूर्ति देखकर तारा कुछ झिझकी। ममता को इतनी रात को वहाँ देखकर उसे उतना आश्चर्य नहीं हुआ जितना तारा को देखकर ममता को हुआ। मोहन आँखें बन्द किए बात कर रहा था। तारा की चञ्चल पगध्वनि सुनकर उसने आँखें खोलीं—कौन तारा! कहाँ से आरही हो। इतनी हड़बड़ाई हुई क्यों हो? उधर से टाट उठा लो। बैठ तो जाओ।"

"बैठने का समय नहीं। आज शाम कहाँ गायब हो गये थे? शफात, खन्ना, रिज़वी, मोहिले और टन्डन को पुलिस ने घन्टा भर हुए गिरफ्तार कर लिया। अरोड़ा और सारस्वत पहले ही जा चुके हैं। इधर बराबर मिलमालिक जा जाकर पुलिस और डिस्ट्रिक्ट आफीसरों के कान भरते रहे हैं। हमें सतर्क हो जाना है। न जाने किस दिन सूर्य प्रभात में शान्ति का उपहार न देकर युद्ध का नारा सुना दे।"

मोहन झपटकर उठ बैठा—"चार ही बजे से मुझे तेज बुखार है। दो घन्टे से ममता यहाँ बैठी है। क्लास लेना मुझे नामुमकिन लगा। मज़दूरसभा के मेम्बरों की मीटिङ्ग बुलाओ। हम आगे का प्रोग्राम निश्चित करें।"

"आगे का प्रोग्राम सिवाय आम हड़ताल के क्या हो सकता है। 'अन्डरग्राउन्ड' जाने का प्रश्न नहीं। यदि पार्टी गैरक़ानूनी घोषित कर दी जाय तो उसका सवाल उठेगा। सरकार का ऐसा इरादा जान नहीं पड़ता। एक एक कम्यूनिस्ट नेता को जेल में बन्दकर वह हमारे क्रान्तिकारी मनोबल को तोड़ देना चाहती है। पर क्रान्ति की कराल अदम्य इस्पाती सुदृढ़ रेखायें हमारे साथियों के खूनी शब्दों में फूट रही हो। जानते हो शफात ने चलते समय क्या कहा है—हमारे श्रम की पैदावार हमें सन्तान की तरह प्यारी है—हमारी औलाद है वह। उस पर हमारा अधिकार है—हमारे लहू की एक एक बूँद का अधिकार है। जो सरकार—जो न्याय हमें उससे महरूम करता है वह आज़ाद और मुकम्मिल नहीं है। अपने दरवाजे पर इकट्ठा हो गए जन-समूह को उसने सन्देश दिया है—सरमायादारी का नाश करो—अपने तबके की आज़ादी के लिए कुरबानी का समुन्दर खोल दो। हमारे तबक़े की आज़ादी—किसान और मजदूर की आज़ादी हिन्दुस्तान की आज़ादी है।"

तारा का अब तक ममता की ओर ध्यान न गया था। ममता चिन्तित होकर मोहन को देख रही थी। मोहन को बहुत तेज बुखार था पर तारा ने आकर उसे एक बार फिर खड़ा कर दिया। बोला—"तुम अब घर जाओगी न! मम्मी! तुम भी तारा के साथ चली जाओ—रास्ते में उतर जाना।"

"और तुम! तुम मेरे साथ न चलोगे?"

"नहीं।" मोहन ने दृढ़ता से कहा—"मुझे आगे की बातें सोचनी हैं। मजदूरों ने जब इन गिरफ्तारियों की खबर सुनी होगी तो वे

उत्तेजित हो उठे होंगे। यों हड़तालें कुछ दिन रुक जातीं—अब न रुकेंगी। मजदूरों के धैर्य का प्याला पहले ही लबरेज़ था। उनके नेताओं की ठंडी विचारशीलता उन्हें रोके थी। एक एक कर उनके नेता उनसे अलग कर दिए गए। जेल में उन्हें यातनायें मिलेंगी—शारीरिक और मानसिक पीड़ायें दी जाँयगी—क्योंकि वे एक अधिक न्यायशील समाज का स्वप्न देखते थे—क्योंकि वे दिन भर अपना काला पसीना बहाकर काम करनेवाले श्रमजीवियों को उनके बचे समय में उसी समाज का मधुर स्वप्न दिखाया और सुनाया करते थे। उनके जीवन की मूलाधार जीवित यथार्थताओं का—जो पूँजीवाद की कुरूपताओं—ऊँची आत्मा और आध्यात्मिक असत्यताओं में दबी पड़ी है—खाका उठते बैठते खींचा करते थे। कोई बात नहीं तारा! प्रत्येक मोर्चे पर हमारे साथी तैयार मिलेंगे।"

तारा ने ममता से कहा—"बहन। अब खुलकर संघर्ष होगा। कानपूर की एक भी मिल—एक भी फैक्टरी चालू न रहेगी। फाटक फाटक—दरवाजे दरवाजे पर हम धरना देंगे। एक भी मजदूर काम पर न जाने पायेगा। हम विदेशी नौकरशाही और स्वदेशी पूँजीवाद दोनों का यह जघन्य बल अपने संगठन और अपराजेय कौशल मनोबल से कुचल देंगे। तुम नहीं जानती आज कानपूर का एक एक मजदूर-क्वार्टर घृणा से काला पड़ गया है। आम हड़ताल से हम इस गुस्ताख निरंकुशता का जवाब देंगे।"

ममता की हड्डियाँ आशंका से छीजने लगीं—भय की छूरियाँ छाती पर चलने लगीं। मोहन को आज उसने महीनों बाद देखा था और वह कितना दुबला लगता था। बुखार से टूटा हुआ शरीर और दिमाग—ऊपर से संघर्ष की आगभरी ललकार। संकोच करने से काम न चलेगा। बोली—"तुम अच्छे हो जाओ तब जो चाहना करना। जब तक बुखार नहीं दूर हो जाता और काम करने लायक बल नहीं आ जाता तब तक मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकती—चाहे तुम वहाँ चलो

चाहे मैं यहाँ रहूँ। तुम पर मेरा भी अधिकार है—मुझे भी कुछ मिलेगा या नहीं? कितनी बार तुमसे कहूँ? तुम्हारी कितनी मिन्नतें करूँ?"

मोहन ने बोझिल स्वर से कहा—"आज की असाधारण स्थिति में इसका कोई सवाल नहीं उठता। हमारी नागरिक स्वाधीनता का प्रश्न खड़ा हो गया है। हम अपने सिद्धान्तों को अमली रूप देंगे। तुम मेरे ज्वर की चिन्ता न करो। कल आप से आप उतर जायगा। जाओ मम्मी! मुझे अपने मार्ग से विचलित न करो। मेरे प्यारे साथी और नेता जेलों में पड़े सड़ें—मजदूर अपने अधिकारों की रक्षा के लिए मालिकों से लड़ाई छेड़ें—आम हड़ताल करें और मैं तुम्हारे यहाँ स्प्रिंगदार पलँग पर लेट कर अपना स्वास्थ्य सुधारूँ!

"मेरे भी बस की बात नहीं--मेरे अणु परमाणुओं की तृष्णा है—मैं करूँ तो क्या करूँ?"

"जानता हूँ। पर मैं आदर्शवादी रहा हूँ। समय की ठोकरों के आगे—हृदय के चीत्कारों के सामने—दुनिया की उलझनों में फँस-कर मेरा आदर्शवाद डगमगाया है पर वह मेरे प्रति और मैं उसके प्रति एकनिष्ठ रहा हूँ। यह किसी अज्ञात सार्थकता की तुष्टि नहीं है। मेरे सामने सब कुछ कठोर है—हिमालय की चट्टानों की तरह अप्रति-रोध्य। वे निर्जीव हैं—निष्प्राण हैं। मेरे सामने का मंज़र सत्य की तरह धड़कता है--साँसें भरता है।"

तारा ने अब ममता को एक विचित्र दृष्टि से देखकर कहा—"तुम्हारे पास रूप है—उस रूप के पोषक हृदय के असंख्य कोमल भाव हैं। तुम्हारे रूप और भावों को तुम्हारे मोहन भैया ने कल्पना के रंगीन लोक में सीमित कर अपने आकाश में उन्हें विशाल और भव्य रूप दिया है। जो उनके लिए आदर्श है और जिसे वे स्त्री के नाम के साथ जुड़ा देखना चाहते हैं वह कवि और कलाकार का स्वाम्य भाव हो सकता है—एक सुनहले बादल का स्वप्न हो सकता है पर एक सिपाही या जनसेवक के लिए यह दृष्टिकोण गलत है—समाज की

वर्तमान व्यवस्था के आमूल परिवर्तन में बाधक भी। इस दृष्टिकोण का फल क्या रहा? तुम्हारे स्वतन्त्र व्यक्तित्व के प्रति उनकी कोई सहानुभूति नहीं रह गई। ममता का अर्थ उनके लिए वह आदर्श और स्वप्नलोक है जो उनके व्यक्तित्व के स्थानिक मनोभावों को सन्तुष्ट करे। इसी स्वाम्य भाव का विस्तार मैं बराबर मोहन के स्वभाव में देखती हूँ। यह पीछे ले जाने वाला है। जीवन की प्रगति का पथ इससे भिन्न है। जब उसकी निश्चित प्रतिक्रिया तुम्हारे भीतर होती है और तुम पालतू दासी की तरह बात बात में उनका मुँह जोहती हो तब वे झल्लाते हैं। मैं चाहती हूँ तुम भी इस मुक्तपथ पर आओ—तुम्हारे अन्तःस्नेह को अधिक व्यापक और मानवीय बनाकर मैं तुम्हारे व्यक्तित्व की संकुचित सीमाओं को अधिकाधिक फैलाना चाहती हूँ। तुम अपने में संपूर्ण हो—यह क्यों भूल जाती हो?"

ममता ने शान्तिपूर्वक सुनने के बाद कहा—"इसी स्नेह का चरम रूप हमारे यहाँ की भक्ति है। यह भक्ति क्या स्वाम्य भाव का व्यापक रूप नहीं है जहाँ उसके संकुचित अर्थ का आग्रह नहीं रह जाता? आत्मसमर्पण वहाँ अगला कदम है। मेरी आस्था का केन्द्र अब बदल नहीं सकता। निज का आग्रह मैं कहाँ से ले आऊँ? व्यक्तित्व की स्वतंत्रता में ही उसका विकास होता है मैं नहीं मानती। व्यक्तित्व की स्वतंत्रता किसी भी मूल्य पर—सम्मानित हो या असम्मानित—प्राप्त करना ही चाहिए—ऐसा क्यों कहती हो! भैया को चाहे जो कह लो—उनकी ओर से जवाब देने का पूरा अधिकार होते हुए भी मुझे उसका आग्रह नहीं—पर अपना अन्तर्दर्शन मैं कैसे छोड़ दूँ!"

तारा ने कहा—"किन्तु यह समझना छोड़ना होगा कि यह अन्तर्दर्शन तुम्हारे व्यक्तित्व के सम्पूर्ण रूप का है। वह केवल एक व्यक्तित्व-स्थिति का है। जिस भारतीय संस्कृति का प्रतीक तुम्हें बनाने की चेष्टा की गई है और अब भी मोहन द्वारा की जायगी वह गलत न होते हुए भी एकाँगी है—काना है—लँगड़ा है—बहरा है। क्यों नहीं तुम चारो ओर से अपने को देखतीं? आत्मज्वाला में एक

ज्योति है—मैं माने लेती हूँ। पर समाज की वास्तविक समस्याओं पर आना ही होगा। अपने को कुछ न दिखाने वाली दृष्टि आखिर है क्या ? जीवन को खुले और मूल रूपमें क्यों नहीं देखतीं ? सत्य के नग्न दर्शन के लिए अपने एकान्तिक आग्रह छोड़ने होंगे !"

ममता ने वैसी ही स्थिरता से कहा—"मगर स्त्री को छोड़कर स्त्री समस्याओं को खोजते और सुलझाते रहना ही क्या जीवन का क्षेत्र है ? स्त्री-व्यक्तित्व की स्वतंत्रता भला मैं कैसे न मानूँगी। पर नारीत्व ही हाथ से छूट गया तो शेष क्या रहा ! तुम इसे मेरी दास मनोवृत्ति कहोगी जिसे तुम समाजनीति से वहिष्कृत करना चाहती हो। पर आत्मा की शुद्धता भी एक चीज है और आत्मा की दासता तो प्रेम की अन्तिम परिणति है ही।"

"मैं प्रेम का यह रूप ही गलत मानती हूँ। प्रेम दासत्व का प्रवर्तक नहीं होता। वह जीवन में आगे बढ़ने के लिए किया गया एक हार्दिक समझौता—एक साथीचारा है। यह मैं मान लेती हूँ कि यह प्रबोध दिया नहीं जाता। वह आप से आप भीतर फूटता है और जितना गहरे से फूटता है उतना ही सार्थक और साकार होता है। पर एक कल्पित श्रेष्ठता के पीछे तिलतिल कर अपने को खपाना और उसी को जीवन का आदर्श मानना मेरी समझ में नहीं आता। मोहन को जब मैं इस तरह की बातें करते सुनती हूँ तो उनका ऊपरी आवरण हटकर यथार्थ रूप मेरे सामने आ जाता है। वे बुरा मानेंगे पर मैं कहूँगी ऐसे लोग भी समाजी व्यवस्था में आमूल परिवर्तन करने के लिए विप्लव का समर्थन करते हैं—उसका स्वप्न देखते हैं !!"

ममता ने मोहन से कहा—"तुम न्याय करो भैया ! बिना किसी अपराध के मैं क्यों दुख सहती रहूँ ? मेरा विश्वास नहीं है—कि एक का दुख अपने ऊपर लाद लेने से—जबर्दस्ती ठूँस लेने से न्याय होता है। मैंने तुमसे अन्याय ही पाया है पर मेरी पुकार है अब न्याय करो—मेरे साथ चलो।"

"इन्साफ करने वाला मैं नहीं—तुम नहीं—ईश्वर भी नहीं है। इन्साफ करेगी सामाजिक व्यवस्था—समाजी संगठन। व्यक्ति के सुख दुख या व्यक्ति पर किए गये न्याय अन्याय से समाज बड़ा है। समाजवादी होने के नाते मैं मानता हूँ कि व्यक्ति का विद्रोह समाज के सामने एक व्यर्थता है—कमजोर मानव की क्षीण और अधूरी पुकार है। हम इस समाज को ही बदल देना चाहते हैं जिसमें व्यक्ति की शिकायतें शेष रह जाती हैं। यह सारा संघर्ष समाजवादी व्यक्ति और व्यक्तिवादी समाज के बीच है। मुझे ले चलकर तुम अपना दुख—अपनी फरियाद भूल सकती हो पर समाज में दुख और शोषण अपार हैं। उनकी ओर ध्यान दो। विवेक भी तो.............."

"मैं ऐसे विवेक को बेमानी और झूठा समझती हूँ। वह जीवन को पंगु बना देता है। एक एक कर जब व्यक्ति पंगु होते चले जाँयगे तो समाज कैसे उठेगा? एक बाँझ जीवनभूमि पर दुख भोगते भोगते मानव के शरीर धारण का उद्देश्य ही खो जायगा।"

"व्यक्ति के स्तर से ऊँचे उठो—व्यक्ति के 'टर्म्स' में न सोचो। प्रेम और आसक्ति व्यक्ति की चीजें हैं। समाज के 'टर्म्स' में सोचो—समाज के चौड़े धरातल पर लाकर उनकी जाँच करो। यदि ऐसा न करोगी तो विश्व की सामूहिक जीवनीशक्ति को झूठा बनावोगी।"

"तुम कब तक सत्य का गला मुझसे घोंटवावोगे? मैं नारी हूँ—नारी धमकी नहीं देती—पर मुझे अब जीवन का मोह नहीं रह गया है। मेरे संस्कार पर कितने आघात करोगे! तुमने मुझे मजबूर किया कि पति को तन मन से अस्वीकार करने पर भी मैं उसकी गरदन जकड़कर उसके सामने नग्नता के अनुष्ठान का नाटक रचूँ।"

ममता की आँखें शिखा की तरह जल रही थीं।—"तुम्हारे कहने पर मैंने अपना—तुम्हारा और संसार के सब से बड़े और पावन सत्य का मुँह काला किया। तुम चाहते हो मैं कुछ न पाऊँ—इस छूँछे जीवन में भी कुछ न पाऊँ! एक प्यासा आत्मसन्तोष भी मुझे नसीब न हो"—ममता के गले की स्वाभाविक मृदुता उसके भीतर की रिक्तता

न छिपा सकी ।"

ममता की ओर से चलने का कोई आसार न था। तारा उठकर चली गई। मोहन पुकारता रह गया। रात को बारह बजे थे। मोहन बात करते करते थक गया था। बोला—"मम्मी! क्या इरादा है। अपने घर क्यों नहीं जाती।

"ममता ने उच्छ्वसित कंठ से कहा—मैं न जाऊँगी। मुझे धिक्कार है यदि मैं तुम्हें ऐसी हालत में अकेला छोड़ दूँ।"

"तुम यहाँ कहाँ लेटोगी। दूसरा बिस्तर भी नहीं है—चारपाई की कौन कहे।"

"तुम सोओ भैया! मैं बैठी रहूँगी। नींद न मानेगी तो पैरों के पास लुढ़क जाऊँगी। ( माथे पर हाथ फेरते हुए ) तुम्हें १०४ से कम ज्वर नहीं है भैया! ज्यादा ही हो सकता है।

"घर में तुम्हारी बुआ और जेठानी क्या सोचेंगी! लौटनेपर श्यामा बाबू से कहेंगी तो क्या वे यह सहन कर सकेंगे।"

"मैं घर में बता आई हूँ कि भैया बीमार हैं—उनके पास जा रही हूँ—वे आये तो यहाँ ले आऊँगी वरना वहीं रहूँगी। मैं अब किसी को नहीं डरती भैया! लगता है जैसे इस्पात में ढल गयी हूँ।"

रामचरन ने बाहर से दरवाजा ठेला। ममता चौंक पड़ी पर सँभल गयी।

"कैसी तबियत है भैया! बीबी अभी बैठी है। अब रात को तो जाँयगी नहीं। आपने आज की गिरफ्तारियों का हाल सुना या नहीं। अभी लछमन सुना कर गया है। सोचा आपको बता दूँ।"

"सुन चुका हूँ रामचरन—तारा आई थी—बतला गई है।"

"अब मोर्चा ललकार दो भैया! जब होता है दोनों जुलुम करने वाले एक हो जाते हैं। सरकार भी उन्हीं लोगों की है जो हमारा खून चूसकर अपने राजमहल भरते हैं। सुना है क्लासों पर रोक लगने वाली है।"

"तब हम छिपकर क्लास लेंगे। तुम लोग तो आवोगे ही—औरतें-बच्चे न आ सकेंगे। हम जो बतावें उसे घर में जाकर समझा दिया करना। चाहे जितनी बलवान और सुव्यवस्थित सरकार हो—हमें ही तो कैद करेगी—हमारी आग को थोड़े पकड़ पावेगी। हम जहाँ भी भागकर जाँयगे वह हमारे साथ शोले फेंकती फिरेगी। है न रामचरन !"

रामचरन की धँसी आँखों में एक अनहोना साहस—एक कठोर पदार्थवादी विश्वास चमक उठा। एक रचनात्मक—इन्द्रियगम्य विश्वास—चीड़ के चौड़े तने वाले वृक्ष और चट्टान का सा विश्वास। बोला—"इस बार भैया! जब तक हमारी माँगें मालिकान पूरी न करें तब तक समझौता न हो। हम भूखों मरें—चाहे हमारे बदन के कपड़े तार तार हो जाँय पर हम पीछे न हटें। लाशों पर लाशें गिरे—माँ के सामने भूख से तड़प तड़पकर औलाद दम तोड़े पर समझौता तभी हो जब हमारी माँगें पूरी हों।"

ममता चकित होकर रामचरन को देखने लगी। रामचरन ने स्थिति की कठिनता को समझ लिया। बोला—"दूसरा बिस्तर तो तुम्हारे पास है नहीं भैया! मैं जाकर भेज देता हूँ। बिटिया को नींद तो उस पर न आयेगी पर गरीबों के पास जो है—हाजिर है। तुम दूध पीलो भैया! दूकान खुली होगी—बीबी के लिए खाना लादूँ।"

"सिर्फ बिस्तर भेज दो। यह कुछ न खायगी—खाना खाकर आई है। मुझे तेज बुखार है। खाने से नुकसान ही होगा! मैंने बहुत समझाया पर जाती नहीं। रात भर रहेगी और मच्छड़ों और डाँसों का मज़ा पायेगी तब मानेगी।"

रामचरन घर से लाकर एक मोटी दरी—मैला-सा चादर और तकिया दे गया। ममता ने लेकर चुपचाप वहीं जमीन पर बिछा लिया। भीतर से साँकल बन्दकर वह मैले फटे बिस्तर पर लेट गई—घन्टों से बैठे बैठे कमर दुखने लगी थी।

घन्टाघर की घड़ी ने एक का घन्टा बजाया।

# [ २५ ]

कपड़ा मिलों की हड़ताल आरम्भ हुए एक सप्ताह हो गया। मिलें बेरौनक और सूनी मालूम पड़ने लगीं। पाँच मिलों में हड़तालियों ने काम बिलकुल ठप कर दिया था। शहरव्यापिनी उथलपुथल में मजदूर हाथ पर हाथ रक्खे प्रतीक्षा कर रहे थे। और भी कई कारखाने बन्द पड़े थे। शहर में या तो मजदूर बस्तियों और मध्यवर्ग के घरों में खाना बनने पर धुँआ होता था या अस्तबलों में लीद जलने पर। श्रेणियों और व्यवसायों के आधार पर होने वाले जनता के वर्तमान शोषण को न चाहते हुए भी देश की राजनीति हाथ पर हाथ रक्खे बैठी थी। मजदूर प्रजा पर होने वाले अन्याय को—पारस्परिक स्वत्वों के विरोधी जाल को एक विदेशी औपनिवेशिक शासनप्रणाली भला क्या महत्व देती! मजदूर शान्त और दृढ़ भाव से हड़ताल किए जा रहे थे। संघर्ष का क्रान्तिकारी स्वरूप प्रतिक्षण उनकी आँखों के सामने नाचता रहता था। रात में और अधिक शान्त, स्वच्छ, सभ्य, संस्कृत, आलोकित और बिलासप्रिय प्रतीत होने वाला कानपूर दिन में हृदयविदारक उदासी और क्लान्ति से ग्रस्त दिखता था। पर वह जाग्रत था—एक क्रियात्मक हवा में सजगता चारो ओर छहर उठी थी।

राजनैतिक और आर्थिक आधार की चेतना से शहर का विशाल श्रमजीवी वर्ग प्रबुद्ध और आन्दोलित हो उठा था। मजदूरों की छोटी छोटी टोलियाँ बन गई थीं—उनमें चौबीस घन्टे प्रचार होता था। प्रचार केवल मजदूरनेता और कार्यकर्ता ही न करते थे वरन वे मजदूर जिनके श्रम को चूसकर पूँजीवाद पग पग पर नफ़ा उगलता है—जिनके परिश्रम से सब कमाई होती है पर जिन्हें खुद भरपेट खाने को अन्न—पूरा तन ढापने को कपड़ा नहीं मिलता—जानवरों की तरह जमीन के नीचे बनी माँदों में जो पैदा होते—जीते और मर जाते हैं—अपने साथियों के उखड़ते दिलों को हिम्मत बँधाते थे। हड़ताल के जवाब में मालिकों

ने कुछ मिलों में 'लाकआउट' घोषित कर दिया था और कुछ को बाहर देहातों और छोटे शहरों से मजदूर बुलाकर चालू रखने की योजना चल रही थी। दूसरी ओर मोहन, तारा और अन्य कार्यकर्ता आर्थिक न्याय और सामाजिक स्वतन्त्रता के नारे लगाकर मजदूरों को हड़ताली क्रान्ति के लिए उत्तेजित करते फिरते थे। देश की वर्तमान स्थिति देखते हुए रक्त-वाहिनी हिंसा पर उनका विश्वास न था। उनके देश की सब से बड़ी राजनैतिक संस्था जो पिछले पचास वर्ष से देश की भूखी-नंगी जनता की आज़ादी की लड़ाई लड़ती आ रही थी अहिंसा के सिद्धान्त पर अटल थी। मजदूरों को काँग्रेस की परम्परा पर अभिमान था और उनके नेताओं में अधिकाँश काँग्रेस कार्यकर्ता थे। उठते बैठते चलते फिरते वे मजदूरों के शान्त और अहिंसक सत्याग्रही बनने पर जोर देते थे। अहिंसा की लड़ाई द्वारा वे उस नये युग का सूत्रपात करना चाहते थे—अपने को मिटाकर—अपने बलिदानों की बुनियाद पर वे उस नवयुग की अवतारणा का स्वप्न देखते थे जिसमें श्रम और उत्पादन में एक नवीन, सुखद, न्यायपोषक और सब का हित करने वाला साम्य स्थापित हो जायगा—जिसमें पूँजीवादी छल और स्वार्थपरता का कहीं लेश न रहेगा। उनके लाल सिर में अपने को मिटाकर इस अहिंसक संग्राम को जारी रखने का विचार धधका करता था। समुदाय का उन्माद व्यक्ति के उन्माद के समान विकृत और दूषित नहीं होता। उसमें त्याग की सर्वश्रेष्ठ चेतना रहती है—आत्मदान का—स्वविसर्जन का उत्कट मानवीय प्रवाह बहता है।

जिनमें हड़ताली आन्दोलन को बलशाली बनाने की क्षमता थी वे जेल में बन्द कर दिए गए थे। फिर भी पिछली हड़तालों और संघर्षों के गौरवशाली अनुभवों ने मजदूरों को बता दिया था कि क्रान्ति के मार्ग में कोई यत्न कभी व्यर्थ नहीं जाता—स्वतन्त्रता की लड़ाई में कभी हार नहीं हुआ करती। एक बार

असफल होने पर फिर यत्न करना चाहिए। साधन नहीं—मार्ग नहीं—पथप्रदर्शक नेता नहीं पर भूखों मरने पर भी अडिग रहने वाले—अधिकाधिक दृढ़ होने वाले क्रान्तिकारी मनोबल के सहारे आशा की तेज शराब पीकर उन्मत्त हो पूर्ववत संघर्ष करना चाहिए। कुछ ऐसे मजदूर भी थे जिनकी आत्मा पहले ही लकवा खा चुकी थी क्योंकि अपनी श्रेणी के हितों के विरुद्ध मिलों में इस समय जाकर काम करने में विश्वासघात की चेतना की चोट से वह आहत न होती थी। उन्हें डराने और धमकाने का प्रश्न न था। प्रतिक्षण बलवान होने वाले संघर्ष को वे अपने स्वार्थ में अन्धे होकर कितनी बड़ी क्षति पहुँचा रहे थे यह उन्हें ज्ञात न था। मजदूरनेता कहते थे यह उनका नहीं हमारा दोष है। हम उनके अन्दर वह इन्कलाबी ज़हनियत नहीं पैदा कर पाए जो अपने और अपने सीमित परिवार के स्वार्थ के ऊपर उठना सिखाती है।

शहर के पूँजीवादियों और उनकी विकृत विचारधारा के प्रभाव में रहने वाले—उनके पैसे पर पलने वाले थोड़े से लोगों को छोड़कर शेष सब की सहानुभूति मजदूरों के साथ थी। काँग्रेस विशेष रूप से मजदूरसभा की सहायता कर रही थी। यूथलीग, छात्रसंघ, यहाँ तक कि जातीय संस्थाओं में नवयुवकोचित प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने वाले दल भी घूम घूमकर जनता को मजदूरों की माँगों की न्याय-भूमि और औचित्य समझाते थे। काँग्रेस के दक्षिण-पन्थी गान्धी-वादी नेताओं की चिन्ता और दौड़धूप का अन्त न था। पर साम्राज्यवाद की कुत्सित छाया के नीचे पलने वाले—उसकी गाँठों को मजबूत करने वाले—पूँजी की नंगी कुरूप दानवता को शासन-व्यवस्था का नाम देनेवाले और बात बात पर उसकी पुकार मचाने वाले मिलमालिकों की हठधर्मी जारी थी। मजदूरों का खून चूस चूसकर धन बटोरनेवाले और उस धन का एक नगण्य अंश गोशाला, मंदिर, अनाथालय और धर्मशालाओं को दान देकर परोपकारशीलता और धर्म के मिथ्याभिमान में डूबे रहने वाले—विश्वनियन्ता को भी धोखा

दे देकर अगले जीवन के मिथ्या स्वप्न देखनेवाले धनिकों को मजदूरों के भूख से मरते स्त्री बच्चों पर रहम न आता था। रोज मजदूरों के संकट का ख्यालकर उनकी माँगों पर सहानुभूति से विचार करने की अपील कॉंग्रेस नेताओं द्वारा निकाली जाती थी पर मालिकों के न्याय और सद्भाव मर चुके थे। जनता भारी मन से हड़ताल का दावानल की भाँति बढ़ता रूप देख रही थी। जो समर्थ थे वे मजदूरों की सहायता के लिए रसद इकट्ठा करनेवालों को कुछ दे देते थे—जो न दे सकते थे वे मन ही मन निर्बल हृदय और असहाय कंठ से उनकी जीत की कामना करते थे।

धीरे धीरे एक महीना बीत गया। शहर की मिलें तो पहले ही बन्द हो चुकी थीं अब बाकी कारखाने वालों ने भी लगे हाथ अपनी माँगों का निपटारा करने की बात सोचकर हड़ताल कर दी। हमारा अन्तिम लक्ष्य क्या है—हमारे संघर्ष का उद्देश्य क्या है—यह प्रश्न प्रत्येक श्रमिक के दिल और दिमाग में घूमने लगा। पूँजीवादी आधिपत्य के विनाश के लिए आखिर ऐसी कितनी लड़ाइयाँ आवश्यक हैं? मजदूरों की टुकड़ियों में जहाँ तहाँ घोषणा पत्र पढ़े जाते थे—वादविवाद चलते थे। उत्पादन को मूलाधार बनाकर वे एक नये समाज-धर्म का निर्माण करेंगे जिसकी समस्त क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का उद्गम-स्रोत सम्मिलित श्रमयोजना में होगा। यह सारा संघर्ष एक दिन उपलब्ध होने वाले समानाधिकार और आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए किया जा रहा है। उसी सुदृढ़ और सारगर्भित कार्यक्रम की यह भूमिका है। यही छितरी हुई विप्लववृत्तियाँ एक दिन संगठित युद्ध का रूप धारण कर लेंगी। तब क्रान्ति की द्विविधा और स्वप्नशीलता एक क्रियात्मक लक्ष्य की नवीन प्रेरणा और शक्ति का रूप ले लेगी। क्रान्ति की यही गहरी धारणा मोहन और उसके साथियों द्वारा मजदूरों की हड्डियों में भरी गई है—जो उनके जीवन और विश्वास का आधार हैं।

पूँजीपति भी निश्चेष्ट नहीं हैं। उनकी ओर से दलाल नियुक्त हैं

जो मजदूरों में फूट डालने की कोशिश किया करते हैं—उनके सामने उनके नेताओं के चरित्र और ईमानदारी पर आक्षेप करते हैं—उन्हें मजदूरों के पैसे पर पलनेवाला और उनके यूनियन के धन पर ऐश करनेवाला बताते हैं। सरकारी क्षेत्रों में उन्हें रूस से पैसा पाने वाला और यहाँ भी 'बोलशेविक' क्रान्ति का षड़यन्त्र रचनेवाला कहा जाता है। मज़दूरों के नाम तरह तरह के परचे निकाले जाते हैं जिनमें इन नेताओं को उनकी जड़ काटनेवाला कहा जाता है—उन्हें मजदूरों की वर्तमान दुर्व्यवस्था और तबाही का जिम्मेदार ठहराया जाता है क्योंकि उन्होंने ही हड़ताल कराई है। मज़दूरों को उकसाया जाता है। कि वे अपने नेताओं के जीवननिर्वाह का जायज़ तरीका पूछें। गरीब मजदूरों के पैसे पर होटलों और 'बाथलों' में गुलछर्रे उड़ाने वाला—बेरोज़गार मज़दूरों के रुपये पर जीने वाला और हर प्रकार के अमानवीय और अकरणीय तरीकों पर अपनी नेतागीरी कायम करने वाला बताकर मज़दूर नेताओं के विरुद्ध आक्षेपभरे परचे निकाले जाते हैं।

मज़दूरों के जीवनयापन की समस्या दिन पर दिन जटिल होती जाती थी। रोज जुलूस निकाले जाते—मज़दूरों की सहायता करने की दर्दनाक शब्दों में अपीलें की जातीं पर पैसा अधिक न मिलता। हड़ताली मज़दूरों को उनके परिवार के लोगों की संख्या के अनुसार सहायता दी जाती पर वह नाकाफ़ी होती। मज़दूरों की मदद के लिए रुपया कहाँ से आवे? पाँच सप्ताह तक मज़दूरों ने भूख का संकट झेला। अब उनकी टुकड़ियों में दबे कण्ठ से हड़ताल तोड़ देने की आवाज उठने लगी। कहीं कहीं बेकारी और भूख से परेशान मज़दूरों में फूट भी पड़ने लगी। कुछ मज़दूर काम पर भी जाने लगे।

अहसान, जयनाथ और नायडू बिजलीघर और वाटरवर्क्स के अपेक्षाकृत गिने चुने मज़दूरों के संगठनकर्ता और नेता थे। कपड़े की मिलों और अन्य बड़ी फैक्टरियों की हड़ताल में कमज़ोरी आते देखकर इन मज़दूरों ने ऐलान कर दिया कि अगले सप्ताह से

उन्होंने भी हड़ताल करने का निश्चय किया है। शहर में खलबली मच गई। कपड़ा मिलों में काम करने वाले मज़दूरों को नया बल और उत्साह मिला। शाम को मज़दूरों की विराट सभा हुई। लगभग सभी प्रमुख मज़दूरनेता उसमें बोले। जयनाथ ने जो कानपूर के प्रमुख और पुराने नेता थे और दो बार बड़े रहस्यात्मक तरीके से रूस हो आए थे—बोलते हुए कहा—जो मज़दूर इतने दिन अड़े रहने के बाद काम पर जा रहे हैं—यह जाने और समझे बिना कि वे क्यों और किसके लिए काम करते हैं—वे भूख से जान बचाने के लिए ही काम में लग गए हैं। यह भी सच है लड़ाई के तनाव के बाद शिरायें सुस्त पड़ जाती हैं—इन्सान विश्राम के लिए लालायित हो उठता है। लेकिन क्या हमारा संघर्ष समाप्त हो गया? क्या हमारे उन भाइयों को यह चिन्ता नहीं कि उनके काम से हमारे वर्ग को कितनी हानि पहुँचती है? क्या रोज़ाना मज़दूरी के नियम ने उन्हें मशीन बना दिया है? वे सरल और अविचारशील—नासमझ और कमज़ोर निगाहवाले हैं जो अपने भविष्य को भूलकर काम पर टूट पड़े हैं। माना—वे केवल पेट भरने के लिए मेहनत कर रहे हैं पर हम उन्हीं के पेट के लिए लड़ रहे हैं। यह केवल उनका नहीं उन जैसे सबके पेट का सवाल है। भूख से हमारी नसें भी जल रही हैं पर उनकी तरह हम क्यों जल्लाद सरमायादारी की मेहनत करने नहीं जा रहे? हमारी हालत हमेशा उन जैसी रही है। जहाँ औरों का खून बह रहा हो वहाँ जानवर की तरह अपने पेट का खन्दक भर लेना—अपने भाइयों को भूल जाना—इन्सानियत नहीं। हम उनसे इसका जवाब तलब करेंगे। वे मालिकों की बन्द लारियों में महफ़ूज़ होकर मिल के अन्दर जाते हैं। हम उन्हें जाने न देंगे। उनकी लारियों के नीचे हम लेट जाँयगें। उन्हें हमारी लाश पर होकर जाना होगा।"

मोहन ने दीप्त स्वर में कहा—"आसमान जैसे बादलों को उगलता

और निगलता रहता है उस तरह हमें तबाही, भूखमरी और मुसीबतें घेरे हुए हैं। लेकिन हमारे इरादे पिघले फौलाद के पानी में डूबे हैं। हमारी उमंगें जवान हैं—उन पर ठेस नहीं आई। हम नवयुग की सृष्टि कर रहे हैं—हम प्रगति हैं—भविष्य की पैनीधार—आनेवाली पीढ़ी के संकल्पों की तेज नोक हैं—अधःपतन और विश्वासघात—मृत्यु और दैन्य हमसे दूर हैं। हम पाँच हफ्ते से ज़िन्दगी और मौत के झूले में झूल रहे हैं। हम अपने भूखे और रोते बच्चों को खाना नहीं दे सकते—बीमार बीबियों—माँओं—बहनों और बेटियों के लिए दवा नहीं जुटा सकते। पर हमारी जमात का दम वैसे ही पुख्ता और इस्पाती है—हमारी संस्था—हमारी पार्टी का नाड़ीस्पन्दन मन्द नहीं पड़ा। हमारे तबके में सबसे बड़ी खूबी यह है कि उसे कभी जीता नहीं जा सकता—वह अपराजेय और हिमालय की तरह अप्रतिरोध्य है। हम पर जितने ज्यादा जुल्म किए जाते हैं—जितना अधिक हमें सताया जाता है—भूखों मारा जाता है—जितना अधिक हमारा रक्त बहाया जाता है उतने ही हम मज़बूत होते हैं—हमारी शक्ति बढ़ती है। सरकार और उसके पूँजीवादी हिमायतियों का काम है हम पर अत्याचार करना—हमें कुचलना। हमारा काम है इस बरबादी को ठुकराकर—क्रान्ति की जलती लुकाठी लेकर नई ज्वालायें फूँकना—नये सैन्यदल तैयार करना—नई मञ्जिलों की तरफ कूच करना। यही कष्टसहन और आत्मत्याग हमारी शक्ति का रहस्य है। यही सरफरोशी हमारा सहारा है। सरमायादारी का एक बार हारकर सिर उठाना नामुमकिन है। हम जितनी बार हारते हैं उतने ही शक्तिशाली होकर बाहर निकलते हैं। मज़दूर उतनी ही अधिक संख्या में हमारे साथ आ मिलते हैं। कामरेड जयनाथ ने अभी जो कहा है मैं उसका समर्थन करता हूँ। मज़दूरों की जो लारी मिल के अन्दर जायगी हमारी छाती पर होकर जायगी। सभी सभ्य देशों में

आर्थिक सुधार की इच्छा मात्र पर मज़दूरों के साथ कठोर बर्ताव किया गया है। हमारे देश में दोहरा शोषण है। एक विदेशी सरकार के 'कालोनियल' शोषण और देशी पूँजीवाद के घृणित शिकंजे के हम दोहरे शिकार हैं। पर हमारे दुख का प्रत्येक दिन लालक्रान्ति का विजयदिवस है। ........"

नायडू ने शुद्ध हिन्दी में बोलते हुए कहा—"हमारे साथ होने वाले कठोर व्यवहार की सीमा नहीं है। जब चाहा हमारे केन्द्रों को बन्द कर दिया—हमारे समाचार पत्रों पर प्रतिबन्ध लगा दिया—हमारे साथियों को ले जाकर जेल में सड़ने के लिए बन्द कर दिया। हम उत्पादक श्रम का समाजीकरण चाहते हैं—उसे चारों ओर से घेरनेवाले—लूट खसोट—छीनाझपटी मचाकर बीच में ही हड़प जाने वाले व्यक्तिगत पूँजी और मुनाफे का अन्त चाहते हैं। यही इन्क़िलाबी समाजवाद हमारे सपनों का प्रेरक है—वह मानवता के भविष्य की ओर संकेत करता है—वह हमें जेल के भीतर भी स्वतन्त्रता की अनुभूति देता है। हम पूँजीवाद के ढहते चौखट पर—गिरती दीवारों पर वज्र-प्रहार करेंगे। हम स्वतन्त्रता और मृत्यु में एक चाहते हैं। चाहे वह मृत्यु सीने पर गोली खाकर—छाती पर लाठी सहकर एकबारगी हो या भूखों मर मरकर—तिल तिलकर। क्रान्ति का घड़ा इसी तरह बलिदान की बूँदों से धीरे धीरे परिपूर्ण होता है।"

बिजलीघर और वाटरवर्क्स के मजदूरों की घोषणा से प्रत्येक हड़ताली मजदूर की शक्ति दुगनी हो गई थी। तारा इस मीटिंग में न थी। वह इस समय हड़तालियों की बस्ती में श्रीमती मेहरा, खन्ना, सरला और अन्य साथिनों के साथ रसद बाँट रही थी। मजदूरों के घर केवल शाम को रसद मिलने के बाद खाना बनता था। तारा दिन भर दरवाजे दरवाजे जाकर चन्दा माँगती थी—एक एक चुटकी आटे के लिए इसरार करती थी। श्रीमती मेहरा अपने चन्द महीने के बच्चे

को घर पर छोड़कर दिन दिन भर तारा के साथ घूमती थीं। बीच में तीन बार ममता के घर जाकर तारा सैकड़ों रुपए ले आई थी। ममता की अक्षुब्ध पृथकता, मानसिक अव्यग्रता और शान्ति पर तारा हैरत करती थी। श्रीमती मेहरा से उसने मोहन की मुँहबोली बहन बता कर ही उसका परिचय दिया था। मज़दूरसभा हड़ताल को सफल बना कर छोड़ेंगी। वह नहीं चाहती श्रम और उत्पादन का वही पुराना शोषक ढर्रा फिर चले। इस बार मजदूर अपनी माँगे मनवाकर छोड़ेंगे। जब हजारों--आदमियों के प्राण संकट में डालकर वे भिड़ गये हैं तब उन्हें प्राणभूत सफलता मिलनी ही चाहिए।

मीटिङ्ग के मैदान के सामने सड़क के दोनों ओर सिपाही तैनात रहते थे—पैदल और घुड़सवार—जैसा मेलों—तमाशों में हुआ करता है। सूर्यरश्मियों से जगमगाती सन्ध्या में जैसे लकड़ी—लोहा--कपास और काँच—उत्पादन के समस्त कच्चे मालों को अपने निर्माताओं पर होनेवाले अत्याचार के विरुद्ध आत्मा मिल गई थी—खून को खौलाने वाली--हड्डियों को धधकाने वाली—अंग प्रत्यंग को विद्रोह से पागल कर देने वाली। कामरेड मालती ने जो बम्बई से आई थीं और रास्ते में घूम घूमकर कानपूर के हड़ताली मजदूरों की सहायता के लिए चन्दा इकट्ठा करती रहीं थीं कहा—"अपने श्रम की पैदावार का शोषण अब हम बरदाश्त न करेंगे! मजदूरसभा और कम्यूनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में हमारा विश्वास बराबर समाजवादी क्रान्ति पर दृढ़ होता गया है। इस विश्वास के इस्पाती तनाव से हमारी सदियों की झुकी कमर सीधी हो गई है। आज हफ्तों से आधे पेट खाकर रहने वाले एक एक मजदूर के होठों पर खूनी शब्द हैं—मुँहों पर क्रान्ति की दृढ़ और अविजेय रेखाएँ हैं। हमारा केवल एक नारा है—हमारे साथ होनेवाला तथाकथित न्याय पूर्ण और स्वतन्त्र नहीं है। हमारे निरक्षर मजदूर भाई दिन दिन भर पसीना बहाकर जिस न्यायशील समाज का स्वप्न देखा करते हैं उसके चरितार्थ होने का सूत्रपात हो चुका है।"

सचमुच उसका आरम्भ हो चुका था। आम हड़ताल के

लाभ और उसे जारी रखने के निश्चित परिणाम पर किसी को सन्देह न था। मजदूरों की आँखों में भविष्य का मद था—उनके सूखे पर अकंपित चेहरों पर असफलता का अवसाद नहीं वरन् अपनी विजय का अडिग आवेश था—पिछली हड़तालों में शहीद हुए अपने साथियों का ऋण चुकाने का कृतज्ञ उन्माद था—एक अनन्तकालीन क्रान्ति की ओर अग्रसर होने का जीवनसंदेश था—पूँजीवाद की निरंकुश, अन्धी और स्वच्छन्द शक्ति को परास्तकर अपनी न्यायोचित माँगों को मनवाने का 'निहलिस्ट' आग्रह था। उनके हृदयों के संघर्ष की आग उन्हें बराबर जलाती रहती थी। वे अपने विचारों, सिद्धान्तों और भविष्य के लिये युद्ध कर रहे थे। उन्हें मालूम हो गया था कि वे अपने संघर्षों के बल पर ही जीवित रहे हैं और जीवित रहेंगे। एकता—केवल एकता से ही वे विजय प्राप्त करेंगे—सब मिलकर विजय प्राप्त करेंगे—यह विजय सब की होगी—सब के सुख का कल्याणकारी विधान इस विजय में होगा। उनकी यह विजय क्रान्ति की योजना की ओर बढ़ने का एक कदम होगी। वे पूँजीवादी दल की निर्बलता और अपनी दिन पर दिन बढ़ती हुई शक्ति को भली प्रकार जान गए थे। उनके दिमाग में उस आने वाली गौरवमय समाजव्यवस्था की तस्वारें थीं जब सारी सम्पत्ति—सब की इच्छाशक्ति, प्रतिभा, क्रियाशीलता, मस्तिष्क और सृजनपटुता, उत्पादक श्रम एक श्रेणी विशेष का धन न रहकर सारे समाज—सारे देश का धन हो जायगा।

पूँजीवादी मिलमालिकों और उनको पीठ पर रहने वाली सरकार के अत्याचारों ने मजदूरों की सब श्रेणियों को मिलकर एक हो जाने के लिए बाध्य कर दिया था। मोहन और अन्य नेताओं का अधिक समय मजदूरों की अराजकवादी विप्लववृत्तियों को शान्त करने और मजदूरों को कोई भी ऐसा काम जिससे सरकार को दमन करने का बहाना मिल जाय न कर बैठने के लिए समझाने में जाता था। वे जानते थे पूरे शहर में यदि एक भी घटना इस प्रकार की हो गई

तो सरकारी आतंकवाद की सीमा न रहेगी। यह सैद्धान्तिक विवेचन का नहीं वरन व्यावहारिक विश्लेषण का समय था। दिन भर मजदूरों की प्रत्येक बस्ती में—मुहल्ले मुहल्ले में–टुकड़ी टुकड़ी में शान्त और पूर्ण अहिंसक बने रहने की आवाज उठाते ये नेता घूमते थे। वे मजदूर जनता के आदमी थे—मजदूरों को गुमराह न होने देने की जिम्मेदारी उन पर थी। भूख से निर्बल—काम से दूर—दिन भर खाली और चौबीस घन्टे उत्तेजना में डूबने उतराने वाले मजदूरों को हिंसा की चिनगारी से दूर रखना था। अहिंसावादी काँग्रेसी जनता की पूरी सहानुभूति अभी उनके साथ थी—उसका सारा नैतिक बल और सहयोग उन्हें प्राप्त था। यदि एक भी दंगा हो गया—कहीं किसी भूखे हड़ताली मजदूर ने भूले से भी किसी पर हमला कर दिया तो हत्या-कान्ड को रोकना मुश्किल हो जायगा। मजदूर नेताओं की जिम्मेदारियों और जवाबदेहियों का अन्त न था। पूँजीवादी मिलमालिकों को हड़ताल दबाने और सरकार की निरंकुश दमनशक्ति के उपयोग करने का सुनहला अवसर मिल जाता। वे और उनके दलाल तरह तरह से मजदूरों को भड़का भी रहे थे।

## [ २६ ]

श्यामाचरण फिर अपने व्यापार के काम से बम्बई चले गए। इधर महीने में एक दो बार बराबर उनका वहाँ जाना लगा रहता था। व्यापार इस समय जोर पर चल रहा था और बम्बई के एक सट्टे के फर्म की सोल एजेन्सी उन्होंने कानपूर में ले ली थी। ममता अकेली रहा करती थी। उस दिन के बाद वह फिर मोहन के क्वार्टर में न गई। उसके पति ने उसके रात भर बाहर रहने की खबर सुनी थी—क्रोध में जो उसके मुँह से निकला था उसने कहा था। ममता का रुख वह समझ गया था। मोहन को उसने जान बूझ कर कुछ न कहा—ममता को ही भद्दी भद्दी गालियाँ देता रहा। ममता सिर झुकाए बैठी चुपचाप सब सुनती रही। बीच

बीच में उसने दो चार बार पति की बात का कड़ा विरोध किया पर श्यामाचरण की निर्लज्जता की सीमा न थी। ममता ने अपने असभ्य पति के मुँह न लगना ही उचित समझा। बीच बीच में तारा से मोहन का संवाद मिलता रहता था। हड़ताल की उत्तेजना सारे शहर में फैली थी। ममता रोज प्रताप पढ़ती—उसे हड़ताल की गतिविधि का समाचार मिलता रहता। मोहन को क्षण भर की भी फुरसत नहीं—वह सुन चुकी थी। तारा उसके पास आकर कई बार चन्दा ले जा चुकी थी। सेफ की चाभी अब भी ममता के पास रहती थी। जब जब तारा ने माँगा उसने चुपचाप सेफ से निकाल कर दे दिया। पर सौ रुपए से कम किसी बार न दिए।

श्यामाचरण ने ममता से बात करना छोड़ दिया था। अपने बढ़ते हुए काम के कारण वह रात को बारह एक बजे के पहले लौटता भी न था। ममता का हृदय अपने जीवन से बहुत ऊब गया था। श्यामाचरण ने मारने की धमकी भी दी थी पर न जाने क्या सोचकर वह उस दिन रुक गया था। शायद ममता की खामोशी और उदासीन मुद्रा ने उसे वैसा करने से रोक दिया हो। ममता अपने उस दिन के व्यवहार और सहनशीलता पर स्वयं विस्मित थी। उसके अवचेतन मन में—अज्ञात आत्मिक स्तर में मोहन की सौम्यता और शान्त आत्मतल्लीनता उसे जकड़े थी। उसने दो चार बातों के बाद पति की किसी बात का—उसके किसी आक्षेप का प्रतिवाद न किया। उसे लगता था जैसे पति की गालियाँ—उसके चरित्र पर किए गए भोड़े प्रहार—उसे छू भी नहीं पाते—दूर से ही लौट जाकर श्यामाचरण के मुँह पर छा जाते हैं।

रात का समय था। आज फिर कुछ दिन के बाद ममता ने अपने को अकेला पाया था—बिलकुल अकेला। पति के घर रहने पर वह ऐसे ही अकेले होने के लिए फड़फड़ाया करती है। ग्यारह बज चुका था। घर में दबा दबा सा सन्नाटा चारों ओर से उमड़ कर एक अकुलाहट भरी चीत्कार कर रहा था। सड़क का कोलाहल शान्त हो चला था।

नीचे जमीन पर दासी गहरी नींद में पड़ी थी। उसकी साँसों का स्वर रह रहकर ममता के कान में भर जाता था। जीवन में सहसा क्या से क्या हो गया यह ममता सोच रही थी। अपनी नई परिस्थिति की वह अपने आप पूरी आलोचना भी न कर पाती थी। अपनी पूरी छानबीन वह करना चाहती थी—अपने अन्तस्तल को भी ठीक ठीक समझना चाहती थी पर उसकी चेतना बेहोश होने लगती थी। पति के पास रहने पर उसे दुख क्यों होता है—पहले कुछ दिन पति का उदार और स्फटिक की तरह उज्ज्वल स्वरूप उसने जब देखा था—सोहागरात के बाद—तब उसे एक क्षणिक विस्मय और गर्वयुक्त रोमान्च हुआ था। आज पति के दूर चले जाने पर गहरी और स्थाई व्यथा उसे क्यों नहीं होती? आज उसके पति की मृत्यु हो जाय तो······ तो क्या उसे दुख होगा? पति के मर जाने पर नारी निस्तेज और निष्प्राण—बाँझ और निष्प्रयोजन हो जाती है। पर उसे लगता है वह एक बार वेदना से मूर्छित भी न होगी। उस दशा में क्या उसके नेत्रों से सावन भादों की मूसलाधार वर्षा न होगी? दुनिया की दृष्टि में पति से उसका निकटतम संसारी सम्बन्ध है। पर उसे लगता है पति के न रहने पर भी वह अपने को विधवा न मान सकेगी। आज भी उसकी इच्छा माँग में सिन्दूर लगाने की नहीं होती। पति के जीवित रहने पर ही जीवन के सारे सौख्य उसके लिए बन्द हो चुके हैं—इन सब बातों की ओर उसका ध्यान रह रहकर जा रहा है। सोचने का व्यसन उसे बचपन से लग चुका है—जिसके नशे में अपने को भूल जाने की क्षमता उसके अन्दर पैदा हो गई है। पर विवाह के बाद क्यों वह बिना सोचे समझे अपने को—अपनी ट्रेजेडी को भूली बैठी है! पति के निकट वह अपने को कभी न पा सकी। मोहन भैया के लाख समझाने पर भी एक कभी न भरने वाली दूरी का भाव बराबर दोनों के बीच खड़ा रहा जो बराबर बढ़ता गया। इसके लिए वह अपनी दृष्टि में कभी गिरी नहीं—उसकी आत्मा ने कभी अपने को किसी से हीन न समझा—अपनी आँखों में वह कभी छोटी न दिखी। आज

पति की मृत्यु की कल्पना पर उसके हृदय का एक कोना तक सजल नहीं होता ! !

उसका ब्याह कैसा ? यह कल्पित वैधव्य कैसा ? उसने देखा है औरत को विधवा होने पर पागल होते—रोते रोते अपनी आँख फोड़ते। विधवा की छाती दहक दहक जाती है—रोम रोम क्रन्दन करता है। उसने यह सब देखा है—सुना है—पढ़ा है। लेकिन इस विनाशक कल्पना पर भी उसका हृदय इतना शान्त क्यों है ? ऐसी अचिन्त्य भावना से उसके अन्दर एक खलबली क्यों नहीं मच जाती ? पर उसका विवेक पवित्र है। जिसके जीवनकाल में वह अपने को सधवा न मान पाई उसके मरने पर कैसे अपने को विधवा स्वीकार करेगी ? वह अपने को विधवा न मानेगी। वह न कभी सधवा है न कभी विधवा। वह क्या है क्या नहीं यह चेष्टा करने पर भी समझ नहीं पाती। पर यह विचार हृदय में क्यों उठा ? विधवा हो जाने पर ही उसे क्या मिल जायगा ? जो सचाई से विधवा हो जाती हैं उनके पास सदियों का पुन्य-प्रताप शेष रह जाता है। पर उसका नारीत्व अपनी उपलब्धि के लिए कहाँ और किसे पुकारे ? कौन उसकी गोहार सुनेगा ? वह सधवा होकर भी न सधवा है न विधवा। विधवा होकर भी वह न विधवा रहेगी न सधवा। वह क्या है यह जब वह जान पाती है तब कह नहीं सकती। दुनिया इसे जानती है पर सुन नहीं सकती। दुनिया की अपनी धारणायें हैं—अपने संकल्प हैं। लेकिन उसके सोए जीवनतल पर जागती हुई—उसके प्राण को तड़पाते रहने वाली—बेचैनी से जिनका सीधा सम्बन्ध है वे भी उसे देखना सुनना पसन्द नहीं करते। जब आज नहीं करते तो तब क्या करेंगे ? तब तो वह लौकिक दृष्टि से विधवा हो जायगी—पवित्रता की एक लहर में डूबी हुई—शुचिता की एक परिधि में बँधी हुई। तब काहे को उन्हें उसका क्रन्दन सुनना सहन होगा। पर वह आजीवन क्रन्दन करेगी—ऐसे ही अस्वीकृत और तिरस्कृत रोती चलेगी। जब तक चाँद है—सूरज है—आसमान में सितारे हैं तब तक वह...............

ममता उठकर खड़ी हो गई। कमरे में हल्के नीले रंग का बल्ब जल रहा था। नीचे फर्श पर दासी लेटी थी। उसकी चोली का बटन खुल गया था। ममता को लगा जवानी का—साँवले सौन्दर्य का अम्बार सामने पड़ा है। दिन भर काम करने के बाद इन्सान जिस गहरी नींद में सो सकता है उसमें वह सो रही थी। ममता आकर खिड़की के पास खड़ी हो गई। सड़क पर बिलकुल सन्नाटा था। कभी कभी दूर पर कोई मानव आकृति दिख जाती थी। कुछ देर वहाँ खड़ी रहकर ममता बत्ती बुझाती हुई कमरे से बाहर दालान में निकली। उसकी इच्छा हुई आज अपना पूरा मकान देख डाले। हर कमरे और दालान की बत्ती जलाती हुई वह आधी रात को मकान के भीतर घूमने लगी। नीचे के कमरों में सास पतोहू और दूसरी नौकरानी पड़ी थीं। सब सो गए थे। जागने के लिए क्या वह पर्याप्त न थी? प्रत्येक कमरे में जाकर ममता ने वहाँ की आलमारियाँ और खिड़कियाँ खोलीं। यही तो उसका संसार था—और कैसा संसार था। नीचे से वह ऊपर आई। उसने अपने कमरे की बत्ती फिर जला दी। सारे मकान में एक वही कमरा प्रकाशित था—जैसे ममता के हृदय में केवल एक कमरे में प्रकाश था--उस कमरे में जो कौमार्य्य की संचित स्मृतियों की धूल से भरा था—जिसका अब धोखे से भी खुलना दुनिया को बुरा लगता। दुनिया भूल जाती है पर नारी के जीवन में अपरितृप्ति से खंडित परितृप्ति अधिक उन्मादक हुआ करती है।

ममता सोचती है उसके जीवन में कितनी घटनायें द्रुतगति से अभी—अपने समय से पहले ही घटित हो गईं। यदि उसकी ही मृत्यु हो जाय तो क्य: वह इस नारकीय यन्त्रणा से छूट जायगी? दस महीने से ममता जिस भयानक मानसिक विप्लव से गुज़र रही है उसमें पड़कर मानव की सुख की लालसा उग्र हो जाया करती है पर ममता की वृत्तियाँ क्यों इतनी जड़ हो गई हैं? क्यों उसके भीतर इस वैभव और विलास को भोगने की इच्छा नहीं उदित होती? क्यों उसकी इच्छाशक्ति एक अचीन्ही अनन्तता को उपलब्ध करने और

उसका भी अतिक्रमण करने को विह्वल हो उठती है? उसकी आत्मा क्यों इतनी सचेत हो गई है जो क्षण भर सो भी नहीं पाती? यह किस की प्रतिच्छाया है— किसका प्रसाद है? उसके जाग्रत आत्म-भाव को क्या क्षण भर विश्राम की दरकार नहीं? ममता फिर खिड़की के पास खड़ी हो गई। प्रेम जीवन के अज्ञात विवेकचक्षु को खोलकर कितना बड़ा अभिशाप नारी के हृदय में सुलगा देता है! ऊपर आकाश में चाँद कभी चाँदनी और कभी अन्धकार में चल रहा था। जब वह छाया में चलता था तब उसे कोई न देख सकता था पर कुमुदिनी तो देख लेती होगी। ममता भी मोहन को सिर से पैर तक सामने खड़ा देख रही है। शिशुता और पवित्रता के सूक्ष्माकाश में मेघ की तरह घुलघुल जाने वाली भैया की मूर्ति अब उसके लिए कल्पना का चाँद बन चुकी है। नारीजीवन की सारी प्रतिक्रियात्मक शक्तियाँ उसे चारों ओर से घेरे हैं। उसके और उसके सुखस्वप्न के बीच में है विचारशून्यता—बर्फ़ की तरह सर्द—संघर्ष की तरह ठोकरों से ताल देनेवाली। ममता ने अपने से पूँछा—क्या उसका प्रफुल्ल मुँह—उल्लासपूर्ण हृदय सदैव ही इस दारुण निराशा से मलिन रहेगा? उसकी आत्मा हमेशा इसी प्रकार कभी प्रवृत्ति कभी निवृत्ति का खेल खेला करेगी? किसी प्रेम पीड़ित वृद्ध कवि की कल्पना सा इस रेगिस्तानी प्यास से दग्ध उसका जीवन क्या कभी अपनी अन्तर्प्रेरणा के अनुकूल खिंच न सकेगा? अशान्ति की कितनी बड़ी बाढ़ उसने बाँध डाली है? उसे गाँव से चलते समय मोहन के शब्द याद आने लगे—वे शब्द जिन्होंने उसकी जुबान को बन्द कर दिया और सदा के लिए उसके भविष्य को घृणित और वीभत्स बना दिया—

"तुम्हारे आँसुओं का मुझ पर प्रभाव नहीं पड़ता—उनसे मेरा हृदय नहीं पसीजता। मेरी आँखों में वे आँसू नाचते रहते हैं जो भूख के अन्धकार से काले और शोषण की छूरियों से छिदे घरों में—ज़ालिम सरकार के अन्यायी कारागारों में बहे हैं। तुम्हारी चाँदनी-रात सी भावुकता मुझे मर्माहत करने में असमर्थ है। यथार्थ संघर्षों

के बीच में सहेलियों के आँसुओं का मूल्य नहीं होता। मुझे उन आँसुओं में भीगने दो जो भूखी माँ भूखे बच्चे को सुलाने की असफल चेष्टा में बहाती है—जो सूली पानेवाले पुत्र का अन्तिम सन्देश सुनकर बूढ़े पिता की घोड़े जैसी विस्फारित, विरत और निष्कंप आँखों से गिरते हैं। मुझे उन आँसुओं की सौगन्ध कोई उठते बैठते खिलाया करता है जो जेल में भूख हड़ताल करनेवाले राजबन्दी की निरीह आँखों से छटपटाहट के बीच गिरते हैं जब उदासी छाती पर चढ़कर उसे जबर्दस्ती खाना खिलाया जाता है। सचमुच ममता के आँसुओं का मोहन के निकट क्या मूल्य है? उसे मोहन से मिले डेढ़ महीना हो गया था। स्मृतियों के दाह को ममता क्या करे? लोग कहते हैं दुख से बुद्धि का विकास होता है पर ममता के दुख से बड़ा दुख किसने झेला होगा! उसे तो लगता है जैसे उसकी बुद्धि को लकवा मार गया है। निष्क्रियता की कैसी घनीभूत वायु उसकी प्राण-शिराओं में भर गई है!

आज ममता को लगता है नींद न आयेगी। तारा से उसने सुना है मोहन भैया आजकल रात रात भर जगकर काम करते हैं—अपीलें, पैम्फलेट, नोटिस और रिपोर्टें लिखते हैं—चन्दे का हिसाब तैयार करते हैं और अगले दिन का कार्य-क्रम बनाते हैं। एक एक हड़ताली को वे दूरबीन जैसी सूक्ष्म दृष्टि प्रदान कर देना चाहते हैं। वह क्या उनकी सुधि में एक रात भी नहीं जाग सकती!

## [ २७ ]

हड़ताल समाप्त होने के आसार नहीं दिखाई देते। चारों ओर आन्दोलन हो रहा था। रोज़ सभायें होती थीं—प्रस्ताव पास किए जाते थे पर मालिक लोगों को सरकार का भीतरी बल प्राप्त था—वे तनिक भी न पिघले। जयनाथ, अन्सारी और खन्ना हड़ताल कमेटी की ओर से मालिकों से लिखा-पढ़ी कर रहे थे पर कोई नतीजा निकलता न दीखता था। अब तो बाक़ायदा संघर्ष चल रहा था। बिजलीघर और

वाटरवर्क्स की हड़ताल शुरू होने के बाद एक सप्ताह के अन्दर टूट गई। पूरी हड़ताल न होकर वह आशिंक हड़ताल ही रही। बिजली और पानी की व्यवस्था में थोड़ा सा खलल ज़रूर पड़ गया पर किसी न किसी प्रकार काम चलता रहा। अब मज़दूर नेताओं का सारा ध्यान कपड़ा मिलों की हड़ताल पर केन्द्रित था। सुबह शाम गलियों में जुलूस निकाले जाते—हड़तालियों और उनके बालबच्चों की सहायता के लिए द्रावक अपीलें की जातीं—कई कई दिन के भूखे बच्चों की दर्दनाक हालत के चित्र खींचे जाते और जनता को प्रतिदिन स्थिति की भीषणता से परिचित कराया जाता। बाजार-कर्मचारी संघ के कार्यकर्ता, यूथलीग के सदस्य और कालेजों के विद्यार्थी भी मजदूरनेताओं के साथ घूमते और चन्दा इकट्ठा करते। मिलों के फाटक पर लगातार धरना दिया जा रहा था। मिलमालिकों ने इस बीच अपने जाबरों को भेजकर सैकड़ों मजदूर बाहर से बुलाए जो दूसरे शहरों में भर्ती किए गये थे। वे मिलों में काम करने के लिए जाना चाहते थे। मिलों में अच्छी मजदूरी पानेवाले मिस्त्री, फिटर आदि भी काम करने के लिए तैयार थे पर पुराने मजदूर मिलों के दरवाजों पर दूर दूर तक लेटकर उन्हें भीतर जाने से रोकते थे। लेटने के लिए मजदूरों की ड्यूटी घंटों के हिसाब से बँधी थी। बाहर से किराये पर लाए गए मजदूर हड़ताली मजदूरों के शरीर बचाकर भीतर जाने की कोशिश करते। रोज झगड़ा होता—पुलिस लाठीचार्ज करती। बहुत से मजदूर जेल भेज दिए गए। उनकी जगह धरना देने के लिए दूसरे मजदूर आ जाते। झगड़ा बढ़ता ही जा रहा था।

मिलमालिकों ने एक महीना तक 'लाकआउट' घोषित करने के बाद अपनी नित्य हो रही लाखों की हानि का विचारकर अब मिलें खोल दी थीं—बाहर से लाए गये मजदूरों के बल पर–जाबरों के आश्वासन पर। पर क्रान्ति के हामी कानपूर के मजदूर अपनी माँगों से पीछे हटने को तैयार न थे। दिन प्रतिदिन उन्हें मत्यु का सन्देश निकट

आता सुन पड़ता था पर अपने क्रान्तिकारी मनोबल के कारण वे टिके हुए थे। वे प्रतिक्रियात्मक शक्तियों से चारो ओर से घिरे थे—पग पग पर उन्हें हतोत्साहित होना पड़ता था। दिन भर धरना देने—तेज धूप में सारे शहर की खाक छानने और लू के झोंके बरदाश्त करने के बाद जब शाम को घर पहुँचते थे तब बीबी बच्चों के मुरझाए चेहरे देखकर—रोटियों के लिए बिललाना सुनकर उन्हें सिर पर गाज गिरने का बोध होता था। पर यह अधिकारों की लड़ाई थी—सब के सिर पर एक सी बीत रही थी और अपने नेताओं का चरित्रबल उन्हें थामे था। वे अपना सब कुछ बलिदान करने पर कटिबद्ध हो गए थे। असफल होकर भी वे आगे बढ़ना और मिटते मिटते दूसरों के लिए मार्ग बनाना चाहते थे। वे घुटने टेक देना—हिम्मत हारकर बैठ जाना नहीं जानते। इस बार भूखों मर जाँयगे पर काम पर न जाँयगे। मालिकों को बाहर से किराए पर आए हुए विश्वासघाती—अपनी श्रेणी के साथ गद्दारी करनेवाले मजदूरों का बल है। वे देखेंगे कब तक वे इनके द्वारा अपनी मिलें चालू रखते हैं।

मजदूर बड़ा बेबश और मायूस प्राणी है। वह न तो अपनी इच्छा शक्ति को हड़ताल की ओर जाने से रोक सकता है—न उसे उसकी ओर प्रेरित ही कर सकता है। एक बार हड़ताल शुरू हो जाने पर वह मृत्यु की नीली छाया प्रतिक्षण आँख के सामने नाचते रहने पर भी उधर से हट नहीं सकता। जब तक हड़ताल शुरू नहीं होती तब तक वह शोषण के शिकंजे में अधिकाधिक कसे जाने पर भी मुँह से उफ़ नहीं निकालता। धर्म, शान्ति, ईश्वर और राजभक्ति चाहे जिसकी दुहाई देकर उसे दासता की जन्जीरों में जकड़े रहो। पर एक बार यदि उसकी विघ्नात्मक वृत्ति जाग उठती है—यदि उस विप्लववृत्ति को कुशल नेतृत्व द्वारा एक क्रियात्मक लक्ष्य का रूप मिल जाता है तो वह मार्ग की बड़ी से बड़ी बाधा की परवाह नहीं करता। अपनी विजय के मूल स्रोत पर उसका विश्वास घना होता जाता है। पूँजी के आधिपत्यवाद ने सदियों उसका खून चूसा है। व्यक्तिगत लाभ के लिए

बनी इन बड़ी बड़ी मिलों और कारखानों ने उसे नीबू की तरह निचोड़कर पीले छिलकों सा नीरस बना रक्खा है। इस श्रमशोषक समाजसत्ता का नाश करना है।

ऐसे संघर्षकाल में ही मजदूरों के सच्चे और झूठे नेताओं की परीक्षा हो जाती है। जो नेता उन्हें इस संकटावस्था में झोंककर फिर निस्सहाय छोड़—एक सुदृढ़, धैर्यशाली और सारगर्भित कार्यक्रम के अनुसार मोर्चेबन्दी न कर पूँजीवादियों के चकमे में आ जाते हैं और हड़ताल बन्द करने का आग्रह करते हैं उनसे मजदूर सदा घृणा करता है। जो उठते बैठते मजदूरों को उनके परिवार के दुखों का स्मरण दिलाकर पुरोहितों की तरह आगा पीछा समझाया करते हैं और उनके जमे मन को विचलित कर देते हैं वे उनके दुश्मन हैं—केवल कहने के लिए वे श्रमजीवियों के पक्ष में हैं। वे वास्तव में इस महाजनी सभ्यता और आधिपत्य के पोषक हैं। उन्हें वर्गयुद्ध के कार्यक्रम में एक सतत संलग्न विश्वास नहीं है। उनके मुँह से उठते बैठते निकलने वाली मानव हितों की सारी बातें झूठी हैं। ऐसे नेताओं और कम्यूनिस्टों का आचरण सब देशों में—सब कालों में श्रमजीवी वर्ग को पतन के गर्त में ढकेलता है। ये लोग मिलमालिकों के द्वारा तनिक मुँह लगाए जाने पर ही उनके समर्थक बन बैठते हैं।

मजदूरों की इस विराट हड़ताल ने कानपूर की सामाजिक व्यवस्था के अंग अंग में कील ठोंक दी—उसे अस्तव्यस्त कर दिया। एक मजदूर पकड़ा जाता है तो उसके स्थान पर दो आकर खड़े हो जाते हैं जो भविष्य का पक्ष लेकर वर्तमान और उसके आधारभूत शोषण को मिटा देना चाहते हैं। वे मानवता में निहित शक्ति को ऊपर उठाते हैं—समाज में लीन किन्तु अवशेष क्रान्ति की शक्तियों का सच्चा प्रतिनिधित्व करते हैं। भूख की मार से त्रस्त अपने चेहरे लिए वे आगे आते हैं—धरना देते हैं—पुलिसवालों की लाठियाँ सहते हैं और जेल की चहारदीवारी के भीतर बन्द कर दिए जाते हैं। वे जानते हैं उनके वर्ग के सच्चे हितों का मूलाधार व्यवस्था और शक्ति है। वे

कभी क्षण भर को उत्तेजित भले हो लेते हों पर तत्काल सँभल जाते हैं। भूखों मरते मरते और जीवन का पुन्जीभूत दैन्य, दारिद्र और अभावों की हिंसक मार सहते सहते उनका अपने मनोवेगों पर असाधारण अधिकार हो गया है। उन्हें सबसे अधिक क्रोध आता है उन जाबरों पर जो दूसरे शहरों से उनके ही भाई बन्धु मज़दूरों को फुसलाकर लाए हैं। पर वे पूर्णरूप से शान्त और अहिन्सक है। जो मार खानेवाला है—जो शान्त बदले की भावना मन में लेकर मार खाता और सब प्रकार के अत्याचार सहन करता है उसकी क्या कभी हार हुई है!

मजदूरों की माँगें साधारण थीं—किसी भी स्वतन्त्र देश में ज़ालिम से ज़ालिम पूँजीवादी दल भी उन्हें मान लेता। पर हमारे ऐतिहासिक महादेश की बात दूसरी है। यहाँ की जनता विदेशी शोषण और देशी पूँजीवादी अत्याचार—सामाजिक असमानता और श्रेणीजन्य विषमता के दोहरे चक्र में पिसती है। मजदूर कहते हैं जितने मजदूरों को मन्दी के बहाने निकाला गया है उन्हें मिलों में काम देना होगा—मजदूरी में किसी प्रकार की कमी उन्हें सहन नहीं—समय के साथ वेतनवृद्धि की दर मुकर्रर करनी होगी। मजदूरों को सजा मिलमालिक नहीं वरन् 'जाब' पञ्चायत देगी। उनके काम के घन्टों में कमी करनी होगी और छुट्टियों का नियमित विभाजन भी करना होगा। साथ ही साथ मिल के अफ़सरों के बर्ताव में भी परिवर्तन होना आवश्यक है। मज़दूर भी आदमी हैं। गाली सुनकर उनकी मर्यादा का सिर भी नीचा होता है। उन्हें भी औरों जैसा आदर और सम्मान दिया जाय। पूँजी से श्रेणी का उद्गम हुआ है इसका अर्थ यह नहीं कि मानवके पारस्परिक सम्बन्धों में पशुता का रूप छा जाय।

मालिकों के तर्क बिलकुल व्यक्तिवाद पर आधारित थे। ये मिलें उनकी हैं—उनकी खानदानी सम्पत्ति का व्यय उन पर हुआ है। वे अपनी शर्तें और वेतन-व्यवस्था बनाने के लिए स्वतन्त्र हैं। वे मजदूरों

को बुलाने नहीं जाते—उन्हें काम करने के लिए मनाते नहीं फिरते। उनके मिलों में काम करना है तो उनकी मर्जी से—उनके बनाए नियमों को मानकर करना होगा। जिसे काम न करना हो वह न करे। पर दूसरे मजदूरों को काम से रोकने का उन्हें अधिकार नहीं। यदि मजदूरों की हेकड़ी है तो उन्हें भी अपनी शान का ख्याल है। यह धन और पूँजी उनके पास कहां से छप्पर फाड़कर नहीं फट पड़ी। उनके बापदादों ने अपना खून पसीना एक कर उसे हासिल किया है। ये पढ़े लिखे लोग—थोड़े से कालेज की शिक्षाप्राप्त नौजवान उनसे इस लिए ईर्षा करते हैं कि यह सम्पत्ति—यह पूँजी उनके पास क्यों नहीं। सीधे सादे मजदूरों को भड़काते हैं—उन्हें नफरत की आँच में भूनते हैं। फिर भी मजदूर बिना शर्त के हड़ताल खत्म कर दें तो वे उनके साथ सख्ती न करेंगे। हड़तालें होती हैं तो हड़ताल विरोधी प्रदर्शन भी तो होते रहते हैं। ये कम्यूनिस्ट अपनी लीडरी चाहते हैं—उसी का ढोल पीटते हैं। लेकिन सब मजदूर इनके साथ होते तो मालिकों को काम करनेवाले आदमी कहाँ से मिलते? सरकार भी बलवाइयों का पक्ष लेती है। मालिकों की उम्रभर की खिदमात का यह इनाम उन्हें मिल रहा है!

कॉंग्रेस के नेता हड़ताल समाप्त करने के लिए सतत चेष्टायें कर रहे थे। वे जानते थे मजदूरों को असह्य कष्ट मिल रहा है। वे दिन भर मिलमालिकों के पास दौड़ते रहते थे। मिल-मालिक कहते—हड़ताल समाप्त होने के लिए हमने क्या उठा रक्खा है? हमारी ओर से तो वह पहले ही खत्म हो चुकी है। हड़ताल मजदूरसभा ने आरम्भ की। लम्बे अरसे तक मिलों को नुकसान से बचाने, हड़ताल विरोधी और मजदूरसभा के लोगों का झगड़ा बरकाने, के लिए हमने पाँच हफ्ते मिलों के फाटक बन्द रक्खे। दूसरे मजदूरों की ओर से ही हम पर मिलें चालू करने के लिए दबाव पड़ा। हड़ताली मजदूर काम करना चाहें तो मिलें पूरे तौर पर आजखुल जाँय। बाजार में कपड़ा न पहुँचने से जनता को जो कष्ट होता है उसे आप लोग समझ सकते हैं—आप लोग त्याग

और सेवा की मूर्ति हैं—जनता के सच्चे सेवक हैं—मजदूरों को बहका-कर अपना महत्व बढ़ानेवाले नहीं। हमें क्या मजदूरों के बाल-बच्चों का ख्याल नहीं—जैसे हमारे बाल-बच्चे वैसे उनके। लेकिन मिलों को हम मजदूरसभा को कैसे सौंप दें ? उन्हें हम लोग जनता की धरोहर समझते हैं... ..'' ये सोशलिस्ट और कम्यूनिस्ट काँग्रेस पर कब्जा करने के लिए मजदूरों को भड़का रहे हैं—खमियाज़ा उठाना पड़ता है सारे देश को। मजदूरों की मजदूरी का दर हम घटा रहे हैं तो क्या बेजा करते हैं ? उस समय कपड़े का भाव आज से ड्योढ़ा था। सब चीजें मँहगी थीं। अब भाव गिर रहे हैं—शिलिङ्ग और येन' का भाव गिरता जा रहा है। आखिर अन्तर-राष्ट्रीय बाजार का भाव भी हमें देखना है। मजदूरों को भड़का देना सहल है पर भड़कानेवाले यह नहीं सोचते कि कहीं ये सब मिलकर एक साथ बिगड़ गये तो कानपूर को लूट पीट कर बराबर कर देंगे। वह तो कहिए ब्रिटिश सरकार का इक़बाल कायम है.........''

मजदूर नेताओं के दिल में काँग्रेस नेताओं के लिए पूरी इज्जत थी—उन्हें वे अपना राजनैतिक नेता और बड़ा भाई मानते थे जो देश के व्यापक राष्ट्रीय संगठन और संस्था के कर्णधार थे। पर अपनी पार्टी और सभा उन्हें काँग्रेस से कम प्यारी न थी क्योंकि वे उनके वर्ग संगठन थे। उसके सिद्धान्तों की अवहेलना और हत्या करके वे काँग्रेस के आश्वासन पर मिलमालिकों के सद्भाव और सहयोग-भावना पर विश्वास न कर पाते थे। आखिर मिलमालिकों के प्रेम, दया और न्याय पर भरोसा करते करते मजदूर फ़ना हो गए थे। उसकी भी एक सीमा है। मजदूरों के हौंसले अब जाग पड़े थे। लाख काँग्रेस के नेता उन पर आक्षेप करें और उनके नेताओं पर अभियोग लगायें पर मजदूर टस से मस न होंगे। मिलमालिक चाहते थे मजदूर काँग्रेस नेताओं को अपना प्रतिनिधि मान लें और उन्हीं के द्वारा समझौते का प्रश्न हल हो। वे जानते थे काँग्रेसनेता कभी मजदूर को मालिक से लड़ने की सलाह न देंगे वरन उसके प्रतिद्वन्दी उत्साह और

संघर्ष के बल को कम करेंगे। मालिकों को काँग्रेस के नेताओं की सदाशयतापर अधिक विश्वास था। कांग्रेस नेताओं में बहुतों का ईमानदारी से यह विचार था कि इन हड़तालों से देश के नए अभ्युदयशील उद्योग धन्धों को--उगते हुए राष्ट्रीय व्यापार को धक्का पहुँच रहा है। यदि मिलें शान्तिपूर्वक चलें तो इन्हीं मिलों के मुनाफे से दूसरी मिलें बन सकती हैं। केवल अपनी पार्टी को मजबूत बनाने के लिए कम्यूनिष्ट देसी मिलों को नुकसान पहुँचा रहे हैं। बिना पूँजीपतियों की सहायता के कोई राष्ट्रीय आन्दोलन कभी चल सका है? भले कम्यूनिस्ट उन्हें मजदूरों का खून बेंचकर रुपया कमानेवाला कहते हों पर काँग्रेस के आन्दोलन में अधिक से अधिकचन्दा वे देते रहे हैं। उनका विरोध करना राष्ट्र की रीढ़ को कमजोर करना है। बेचारे अपनी शिशुवत देशभक्ति में राष्ट्रीय आन्दोलनों की सफलता का मुख्य कारण पूँजीपतियों की आर्थिक सहायता को समझे बैठे थे। नहीं जानते थे कि हर युग की सब से क्रान्तिकारी शक्ति जनता मनोबल से फूटती है।

मजदूरसभा के नेता पूँजीपतियों को मजदूरों का बली या संरक्षक मानने के लिए कभी तैयार न हो सकते थे। गरीबों की कमाई पर मोटे होने वालों का जब तक भारतवर्ष से नाम निशान न मिट जायगा तब तक शोषण की समस्या नहीं हल हो सकती। वे प्रत्येक मिल के दरवाजे पर रोज दो तीन लेक्चर देते--उनके लेक्चरों की रिपोर्ट पुलिस लेती जो जनता के जान माल की रक्षक थी और पारस्परिक घृणा और हिंसा की भावना को न फैलने देने का भार जिसके मज़बूत कंधों पर था। लेकिन मजदूर कार्यकर्ता भीतरी स्थिति को जानते थे और मजदूरों के पैर उखड़ने के डर से काँप रहे थे। महाजन और बक्काल मोदी और पसारी अब मजदूरों को बेकार हो जाने के कारण उधार भी न देते थे। स्वयंसेवक चन्दा और झोलियों में आटा माँग माँगकर कहाँ तक लाते? मजदूरसभा द्वारा चलाए गए लङ्गर भी टूटते नजर आते थे। चना चबेना पर मजदूरों को कब तक रक्खा जा सकता था? मजदूरों में बदल बदल कर कभी आटा बाँटा जाता कभी भुना चना।

लेकिन यह कब तक चलेगा ? हड़तालियों का मनोबल टूट आया था। वे जल्द से जल्द इस संघर्ष का अन्त चाहने लगे थे।

मजदूरों की संस्थायें—जिला, मंडल, स्थानीय तथा ग्रुप कमेटियाँ और छोटे छोटे ज़ोन—सब बड़ी मुस्तैदी और सावधानी से अपना काम कर रही थीं। पर भूखे पेट की रोटियों की समस्या तक़रीरों और पैम्फलेटों से नहीं हल होती। मिलमालिकों ने मजदूरों को बुलाने का समुचित प्रबन्ध कर रक्खा था। जब बन्द और खुली लारियों में उन्हें लाया जाता था तब जमीन पर लेटे हुए हड़तालियों को पुलिसवाले उठाकर—खींचकर बलपूर्वक किनारे पर डाल देते थे। शासनसत्ता और निरंकुश नौकरशाही के मद में चूर वे न जानते थे कि हड़तालियों के विरोध-प्रदर्शन की ये घड़ियाँ संघर्ष की शताब्दियों में परिणत हो सकती हैं। मजदूर इन लारियों के नीचे अपने शरीर को कुचलवा भी न सकते थे। शान्तिपूर्वक सत्याग्रह करते हुए उन्हें अपनी जान देने तक का अधिकार न था !

काँग्रेस नेता हड़तालियों और उनके नेताओं को समझाते—आखिर देश की आर्थिक व्यवस्था को ये चुने हुए पूँजीपति ही तो चलाते हैं। जनता के प्रति—मिलों के हिस्सेदारों के प्रति उनकी गम्भीर जिम्मेदारी है। उन्हें एक व्यापार का दूसरे व्यापार से सम्बन्ध देखना होता है—सिलसिला कायम रखना पड़ता है। पैदावार का बाजार से मिलान मिलाना पड़ता है। उनकी कठिनाइयों को समझो और हड़तालियों को आदेश दो कि वे हड़ताल बन्द करें। हम यह नहीं कहते कि मज़दूर अन्याय या गलत मार्ग पर हैं। हम बराबर उनकी सहायता करते रहे हैं और कर रहे हैं। हमारे अहिंसा के सिद्धाँत का सोलहो आने पालनकर वे हमारे बहुत निकट आ गये हैं। क्या आप समझते है गाँधीजी मजदूरों की दुर्दशा से व्याकुल और चिन्तित न होंगे ? पर समाज में हर मनुष्य का स्थान—कर्तव्य और अधिकार जुदा जुदा है। काँग्रेस जिस स्वराज्य के लिए लड़ रही है उसमें पूँजीवादी रहेंगे—मजदूर भी रहेंगे—देशी राजे

और रियासती प्रजा भी—ज़मीदार भी—किसान भी। समाज सदैव एक कायदे से चलेगा—अपने कायदे से चलेगा। सम्पूर्ण समाज को चलाने की जिम्मेदारी--सम्पूर्ण अर्थनीति को संचालित करने का भार एक ही वर्ग को नहीं सौंपा जा सकता। मजदूर नेताओं की समझ में ये बातें न आती थीं यद्यपि वे मुद्दत से इन्हें सुनते आरहे थे। मजदूरों के मेहनत के फल को छीनकर यह जिम्मेदारी पूँजीपति श्रेणी ने ले ली है जो आज उनकी विरासत बन गई है! क्यों नहीं समाज में पैदा होनेवाली वस्तुओं का बँटवारा पैदा करनेवालों की इच्छानुसार होता? समाज की इस व्यवस्था को—शोषण की इस आदमखोर इमारत को खड़ा करनेवाले उसकी दीवारों को डोलते देखकर बेचैन हो जाते हैं—अपनी विरासत को अपनी और अपनी श्रेणी की संतान के लिए वे आक़बत तक सुरक्षित रखना चाहते हैं!

## [ २८ ]

हड़ताल शुरू होने से लेकर अब तक मजदूरों ने काफी जोश दिखाया था। अब उनका उत्साह ठंडा होने लगा है। इस बीच में कई बार लाठी चार्ज़ हो चुका था और मजदूरों के शान्त, सहिष्णु और अहिंसक होने के कारण ही पुलिस को अधिक कारगुज़ारी दिखाने का अवसर न मिला था। मजदूरों के पुराने, अनुभवी और प्रभावशाली नेता जेल में बन्द थे। सरकार उन पर मुकदमा चलाने की तैयारी कर रही थी—पुलिस केस पूरा करने के लिए शहादतें इकट्ठा कर रही थी। मुहल्ले-मुहल्ले गली-गली मजदूरों की आवाज़ पहुँचानेवाले सारे के सारे पुराने कार्यकर्ता इस ऐतिहासिक संघर्ष के समय जेल की बैरकों में बन्द फटफटा रहे थे। तारा, मोहन, श्रीमती मेहरा, श्रीमती खन्ना इत्यादि जो बाहर थे वे सब अपेक्षाकृत नए थे और मजदूरों में लोकप्रिय होते हुए भी अभी उनका प्रभाव इतना नहीं बढ़ पाया था कि हड़ताल की ऐसी विकराल स्थिति को सँभाल सकते। अन्सारी और नायडू पकड़े जा चुके थे और कामरेड मालती की गिरफ्तारी की खबर रोज सुनाई पड़ती थी।

यही नहीं मजदूरों में अब पहले से कहीं अधिक फूट पड़ चुकी थी और बाहर के छोटे शहरों से जाबरों द्वारा लाए गए मजदूरों के साथ बहुत से पुराने मजदूर भी काम पर जाने लगे थे। बन्द लारियों में ये मजदूर मिल के फाटक पर आते—पुलिस से घिरा हुआ मिल का फाटक खुलता और लारियाँ अन्दर दाखिल हो जातीं। हड़ताली मजदूरों के झुण्ड लारियों की ओर झपटते और चीखते चिल्लाते—नारे लगाते पर फौरन पुलिस आकर उन्हें तितर बितर कर देती। कुछ मजदूर इस तरह के प्रदर्शन करते समय गिरफ्तार भी किए गए पर दस बीस घंटे हवालात में रक्खे जाने के बाद वे छोड़ दिए गए। काम पर जाने वाले मजदूरों की लारियों के सामने ये लोग जब लेट जाते और फाटक से उनका गुजरना दुश्वार कर देते तब पुलिस कैसे चुप रहती? लाठी और ठोकरों द्वारा बल पूर्वक पुलिस के जवान इन्हें घसीटकर एक ओर डाल देते। पर मज़दूर बाज़ न आते और पुलिस को बराबर बलप्रयोग करना पड़ता। इस खींचतान में मजदूरों को चोटें लगतीं—उनके शरीर का चमड़ा छिल जाता और बहुतों का अंग-भंग होते होते बचता।

शाम को आठ बजे तारा के मकान पर मजदूर नेताओं की मीटिङ्ग शुरू हुई तो ग्यारह बज गए। किस प्रकार मिल मालिकों को मजदूरों की शर्तें मानने पर मजबूर किया जाय। बिजलीघर और वाटरवर्क्स के मजदूरों की शर्तें तो करीब करीब मान ली गई थीं—मजदूर अन्सारी और नायडू के छूटने की प्रतीक्षा में थे। रोज दोनों के छोड़े जाने की खबर उड़ती थी जो बाद में झूठी साबित होती थी। उनकी शेष शर्तें भी मान ली गयीं तो उनकी हड़ताल शुरू न हो सकेगी और शाषकों पर उन्हीं की हड़ताल का विशेष प्रभाव पड़ सकता था। मजदूर अब ज्यादा भूख और बेकारी सहने में असमर्थ थे। कपड़ामिलें आधी के लगभग चालू हो चुकी थीं और

पूर्णरूप से न सही तो आँशिक रूप से उनका 'लाकआउट' खत्म हो चुका था। क्या यह सारा संघर्ष बेकार जायगा? सब के चेहरे पर चिन्ता—दिल में आशंका की धड़कनें थीं। हड़ताल के शुरू में उत्साह दिखाने वाले, चन्दा इकट्ठा करने वाले और तरह तरह से आँदोलन करनेवाले लोगों की बहुतायत थी। अब काम करनेवाले केवल थोड़े से कम्यूनिष्ट और मजदूरसभा के कार्यकर्ता रह गये थे। पहले के तमाशबीन हमदर्द अब हवा हो चुके थे। हजारों मजदूर-परिवारों के लिए चन्दा इकट्ठा करना आसान न था। काम बहुत था—आदमी थोड़े थे। वे रात रातभर जागते थे—ठीक से खाना तक उन्हें न मिलता था। सब की तन्दुरुस्ती बिगड़ रही थी। फिर भी हिम्मत बाँधे वे अपने काम में लगे थे। लेकिन अब भविष्य कठिन जान पड़ता था। यदि इसी गति से मजदूर काम पर जाने लगे तो हड़ताल खत्म होने में कितने दिन लगेंगे?

दिन भर के थके कामरेड धीरे धीरे खिसकने लगे। रमेश प्रकाश, बाक़र, जूलियन, ज्ञानेश्वर पहले ही जा चुके थे। अविनाश ने मिसेजमेहरा के पास दीवाल से लुढ़कते हुए कहा—"भाभी माफ़ करना—मैं बहुत थका हूँ।"

मिसेजमेहरा ने अपना झोला उठाते हुए कहा—"लेट भाई! जितना जी चाहे लेट—मैं अब चली। मोहन! कल सुबह 'आइडियल' मिल में भेंट होगी।

मोहन ने कहा—"मैं चलता हूँ—आप इतने जल्द न जाने पायेंगी।"

मिसेजमेहरा ने कहा—"काम ही क्या है? यों क्या कभी बातों का खात्मा होता है! आठ घंटे से बेबी से अलग हूँ—देखूँ जाकर। मुझे भी नींद लग रही है।"

मिसेज मेहरा उठकर चली गईं। श्रीमती खन्ना पहले जा चुकी थीं। मोहन ने उठकर चलना चाहा। तारा ने हाथ पकड़कर कहा—"आज मैं जाने न दूँगी। खाना खाओ और

यहीं सोओ। अविनाश भैया! उठो खाना खाओ। रमई!—ओ रमई! सो गया क्या? शाम से ही इस बूढ़े को साँप सूँघने लगता है।"

सोते हुए रमई और ऊँघते हुए अविनाश की आँख खुल गई। अविनाश ने जेब से साइकिल क्लिप निकालकर पतलून में लगाते हुए कहा—"मैं तो ऊँघने लगा। चलूँ घर—खाना वहीं खाऊँगा—नहीं तो अम्मा भी भूखी रह जायगी। मैं तो पूरा सी क्लास 'प्रिज़नर' हूँ। ऐसी बन्दिश किसी लड़के पर न होगी।" अविनाश बाहर निकल गया।

मोहन ने कहा—"मैं चलूँगा। कल सुबह मुलाकात होगी।"

तारा ने कहा—"आज तुम्हारा जाना नामुमकिन है। यही कमरा है जिसमें तुम रहते थे। कहाँ इतनी दूर जाओगे! यहाँ सोने में क्या कुछ हर्ज़ है! अभी तुम्हारा पुराना गुस्सा दर नहीं हुआ!"

रमई खाने की थालियाँ रख गया। मोहन शाम को खाना न खाता था पर आज तारा का आग्रह जैसे असाधारण था। दोनों ने खाना शुरू किया। खाते खाते मोहन ने कहा—"तारा! इतने बड़े संघर्ष में—इस भीषण हड़ताल में—जब हजारों मजदूर परिवार एक बार भी भरपेट भोजन न पाते हों क्या हम व्याख्यान देकर और क्रान्ति के हड़ताली नारे लगाकर ही चुप रह जाँयगे? मुझे लगता है यही सब पर्याप्त नहीं। बलिदान की पीठ पर जनता भी लड़ाइयाँ जीती जाती हैं। जब तक हम जान देकर कर्तव्य की उष्ण प्रेरणा न पैदा करेंगे तब तक हमारी लड़ाई में प्राण न जगेंगे। लगता है जान का मोह अब भी हमें जकड़े है—जितना हम कहते हैं उतना करके दिखा नहीं सकते।"

तारा ने कहा—"ठीक कहते हो—हम लोगों को अब अपनी जिन्दगी की कुर्बानी के लिए तैयार रहना चाहिए। व्याख्यान और हड़ताली नारे भी अपना महत्व रखते हैं पर मैं मानती हूँ जो मरकर अपने आदर्श को अमली जामा नहीं पहना सकता वह

व्यर्थ समाजसेवा का दम भरता है……………”

रमई अपनी कोठरी में सोने नीचे चला गया। लगभग घन्टे भर बात करने के बाद तारा ने एक गहरी और लम्बी अँगड़ाई ली। मोहन क्लान्त सौंदर्य के इस घुमड़ते अवरुद्ध घटाटोप को देखता रह गया……।

चाँदनी रात थी। बाहर छत पर गोरी गोरी ज्योत्स्ना चमाचम चमक रही थी। मुग्ध तारा उठकर छत की मुन्डेर के पास खड़ी हो सामने सामने दृष्टि के उस छोर तक छिटकी चाँदनी देखने लगी। उसके दिल पर बसन्त की लुनाई झर रही थी। लगता था सारा शरीर फूलों से ढँका है। एक अर्धजागृत स्वप्न उसके नेत्रों को मदालस किए दे रहा था। दोनों व्याकुल बाहें फैलकर किसी को बाँध लेना चाहती थीं।

वहीं खड़े खड़े उसने कहा—“तनिक बाहर तो आओ। देखो कैसी उन्मादक चाँदनी है—लगता है रातभर खड़ी देखती रहूँ।”

मोहन ने कहा—“मैं नहीं आता। तुम्हें चाँदनी से छेड़खानी करने की सूझी है—मैं सोना चाहता हूँ।”

तारा ने बड़े भावुक स्वर से कहा—“चाँदनी और चाँद दोनों से। लेकिन मेरे दो चाँद हैं। एक दूर—बहुत दूर है—पहुँच से परे। दूसरा पास है—मेरे कमरे में।”

अविजानित आनन्द से विभोर हो तारा इठलाती हुई चली आई और मोहन के दोनों हाथ बड़ी कोमलता से पकड़कर बोली—“चलो! उठो बाहर—देखो तो कैसी संगमरमरी रात है।”

तारा की अस्तव्यस्त केशराशि प्रणयिनी की भाँति चंचल हो उठी थी। आँखों में वह मतवालापन था जो चैत की वसंती रात में बौरती नीम के सौरभ में होता है। मोहन चुपचाप उठ बैठा और तारा उसके दोनों हाथ पकड़े उसे बाहर खींच लाई।

मुन्डेर के पास खड़े होकर दोनों आकाश की ओर देखने के बजाय एक दूसरे को देखने लगे। मोहन ने मुस्कराते हुए कहा—“अब! अब क्या करूँ?”

तारा के अधर सिहरन से भरे थे। भावावेश के कारण मुँह से आवाज़ न निकलती थी—एक अत्यन्त तरुण निश्वास छोड़ते हुए वह मोहन से सटकर रह गई।

मोहन ने तारा के रूखे बाल छिटकाकर अपने कन्धे पर डाल लिए और उसके कंधे को थपथपाता हुआ बोला—"और कितनी कवायद करनी होगी ?"

"मेरे मन के सुख में हाथ डालकर ऐसा कहते हो !—मैं कुछ नहीं चाहती·······कुछ नहीं चाहती······"

"मगर मैं चाहता हूँ। क्या मेरी चाह का कोई मूल्य नहीं ?"

"तुम में यदि चाह होती···········यही तो रोना है।"

"ऐसी तरंगभरी रात में रोने की बात नहीं करते। कहो—यही तो हँसना है·········।"

तारा ने खिलखिलाकर अपनी ठोढ़ी मोहन के कंधे पर रख दी और दोनों हाथों के पाश में घेरकर उसे अपनी दुगने वेग से धड़कती छाती के नज़दीक खींचा········।

मोहन को लगा है आज वह चेष्टा करने पर भी अपनी पराजय से भाग न सकेगा। अपने दर्द से वह अब तक भागता आया है पर अपनी भूख प्यास से आज कैसे भागे ?—भाग कर जाय भी तो कहाँ ? यदि जीवन से नहीं भागा जा सकता—जीवन की गति और विस्तार से नहीं भागा जा सकता तो चाँदनी की मदहोशी में पड़ती हुई यौवन की इस गहरी छाप से कहाँ भागे ? नहीं—वह विजेता है—चाँदनी रात की प्रत्येक परिस्थिति का स्वामी। उसके हृदय का समस्त सोया कौतूहलतारा के अंक में भरे जाते ही जैसे जाग पड़ा—एक जिज्ञासु किन्तु निरुद्देश्य आवेग की तरह।

तारा झुकी हुई निःशब्द स्तब्ध खड़ी थी। मोहन की कँपाती हुई हिचकी उसकी शिथिल देह को हिला गई। वह वीणा के तार की तरह लहरीली हो गई। उसकी अधखुली और अधमुँदी आँखें जीवन के पुन्जीभूत विलास का रेशमी स्वप्न देख रही थीं !

तारा ने सामने आकर मोहन की छाती से अपना सिर सटाते हुए कहा—"तुम नाराज तो नहीं हो गये।"

"चाँद से पूँछो—वह सब देख रहा था! मुझे होश ही नहीं तुमने क्या किया जो नाराज होऊँ!"

"जब धरती का चाँद नहीं मिलता तो आकाश का क्या मिलेगा! बोलो—नाराज तो नहीं हो गये! मैं अपने आपे में नहीं हूँ मोहन!"

मोहन प्यार से तारा की पीठ थपथपाता रहा। तारा को लगने लगा आज उसके सुख का अन्त नहीं है। उसी तरह एक दूसरे से सटे दोनों कमरे में आये। सामने पड़ी आरामकुर्सी पर तारा को लिटाकर मोहन पलँग पर बैठ गया। अब भी वह अपने कंधे के ऊपर से आती हुई—रोमान्चकारी स्पर्श से छूनेवाली तारा की आन्दोलित साँस का स्वर अपने कानों में सुन रहा था। तारा आत्मविसंज्ञ अवस्था में कुर्सी पर लेटी थी। उसकी अधखुली आँखों से अतृप्त लालसा का तार फूट रहा था।

पन्द्रह मिनट तक तारा उसी तरह निश्चेष्ट पड़ी रही। मोहन टक-टकी लगाये तारा के वक्षस्थल का उतार चढ़ाव देख रहा था जो बीच बीच में गहरे और गर्म निश्वास से फूलकर उठ उठ आता था। तारा के होठों पर एक गहरे सुख की अपरितृप्ति की आलस्यभरी रेखा थी। मोहन उन्मत्त सौंदर्य्य की इस स्थिर लहर को जितना देखता था उतना ही उसके दिल में पुलक और उन्माद बढ़ता आता था।

दोनों एक दूसरे को देख रहे थे—निर्निमेष आँखें—निष्कम्प दृष्टि! मोहन का वेदना से मँजा दीप्त चेहरा तारा को आज पागल किए देता है। तारा को लग रहा था यह वेदना—मोहन के चेहरे पर घने संकोच की यह पीतिमा बाहर की चाँदनी की तरह ही हिलानेवाली और कँपानेवाली है। मोहन ने कहा—"तारा!"

"मोहन!"

"क्या देख रही हो? छुईमुई की तरह सिकुड़ी हुई तुम्हारी गर्दन—किंचित खुले हुए ओंठ और रुखसार पर नाचता हुआ बालों का यह झुलनीदार गुच्छा! तारा! तारा!! तारा!!!... ...."

"मुझे अफ़सोस है—उससे भी बड़ी शर्म है—मैंने तुम्हें जूठा कर दिया। मैं बेहोश थी मोहन! मेरी छाती में एक आग जल उठी थी—लाल लाल—दहकते अंगारों की तरह। मैं उसकी गरमी से परेशान थी मेरे सरताज......!"

"क्या मैं जानता नहीं—समझता नहीं......।"

"तुम क्या नहीं जानते—क्या नहीं समझते? बाहर की बर्फीली चाँदनी—भीतर दिल की हरियाली को छीजती हुई गरम गरम आन्धी! मैं पामाल हो गयी......।"

तारा ने उठकर सुराही से पानी पिया और सिर को पानी से तर करते हुए मोहन की ओर पीठ कर अपना ब्लाउज उतार फेंका। सौन्दर्य की नंगी चट्टान सी गोरी पीठ......मोहन को लगा बिजली की रोशनी में चाँदी का एक घुलता हुआ बादल उसकी तरफ बढ़ा आता है!........तारा ने धोती के आँचल को सामने से ले जाकर पीछे खोंसते हुए मख़मूर आँखों से मोहन को देखा—आकर कुर्सी पर बैठ गई। उसकी मादकता से मुँहबन्द गीली पलकें नीचे छाती की ओर झुकी थीं।

मोहन ने कहा—"तुम सोवोगी या नहीं। सुबह आठ बजते बजते मिल के फाटक पर पहुँच जाना है। दो बज रहा है।"

तारा की आँखें बिलकुल बन्द हो चुकी थीं पर उसकी देह एक सूक्ष्मतम कंपन से काँप रही थी। मोहन चुपचाप आकर कुर्सी के पीछे खड़ा हो गया। तारा के गोरे मस्तक पर पसीने की बूँदें मोती की लड़ी गूँथ रही थीं। मोहन ने कुछ मिनट चुपचाप—अचंचल खड़े रहकर धीरे से हाथ बढ़ा तारा की कमर से खुँसा हुआ उसके आँचल का छोर खोलकर एक ओर फहरा दिया। गले से लेकर कमर तक नग्न तारा अपने वक्ष का सौन्दर्य छिपाने के लिए अपने हाथों से दोनों पैरों को जकड़कर दोहरी हो गई। उसका सर साड़ी में छिप गया था—पीठ पर मोहन की चपल अँगुलियाँ प्यासी किरणों की तरह घूम रही थीं।

तारा ने मुँह नीचे छिपाए छिपाए कहा—"आपने मेरा आँचल

क्यों खोल दिया ? बाहर जाइये…… ……मैं अपना ब्लाउज पहन लूँ ।"

"मेरे सामने पहन लो ! क्या लाज लगती है ?"

"नहीं लाज तो नहीं है पर ……लाज ही समझिए !"

मोहन उठकर छत पर चला गया । तारा झपटकर कोने पर पड़ा ब्लाउज उठाकर पहनने लगी । मोहन ने बाहर से कहा—"एक बार और देखना चाहता हूँ—अभी जी नहीं भरा……फिर देखना चाहता हूँ ।"

तारा बटन बन्दकर कुर्सी पर सँभलकर बैठ गई । कुछ मिनटों तक सही गई इस आन्तरिक व्रीड़ा ने उसके मुँहकी शुभ्र त्वचा को और भी शोधकर एक आन्तरिक कान्ति दे दी थी । इस दीप्ति में जो संकोच का—मोहन के आगे उन्नत उरोजों के खुल जाने का घना लज्जा था वह उसके पारदर्शी चेहरे पर और गुलाबीपन रँगता आता था ।

मोहन ने मनुहारभरे स्वर में कहा—"अभी मेरा दिल नहीं भरा तारा ! मैं तो भर नज़र देख भी न पाया !"

तारा ने उस मुस्कान के साथ जो दूसरे ही क्षण दीप्त वेदना बन जाती है—कहा—"क्या करोगे देखकर ! जितना देख चुके वह क्या प्रर्याप्त नहीं ?"

"कुछ नहीं था वह ! तुमने यह कैसी नई बेचैनी पैदा कर दी तारा ! एक भागती मुस्कान—सौन्दर्य के प्रत्यूष में घुलती हुई किरण सा सब सामने आया और चला गया । मेरा सारा आदर्शवाद आज तुम्हारे विद्रोह की आग में पड़कर कुन्दन हो गया ! मेरी 'मम्मी' सुनेगी तो क्या कहेगी ! कभी न कभी उसे सब बताऊँगा । मैं अपना ही विरोधी बन गया—मेरे विद्रोह को कहाँ की धार मिल गई जो मैं अपना ही प्रतिद्वंदी हो उठा ।"

तारा नीचे जमीन पर मोहन के पैरों के पास बैठ गई ।

मोहन ने कहा—"तारा ! मैंने अपना श्रेष्ठतम आज तुम्हें दे दिया—तुम्हारे श्रेष्ठतम की जो अनुभूति मुझे मिली है वह जीवन भर के लिए काफी है । मैंने तुम्हारी अपने आपसे बाहर प्रधावित होने की—विसर्जनमयी प्रसरणशीलता की शक्ति देखी है……यह मेरे

जीवन का एक प्यारी अनुभूति न बन जायगी........तुम्हारी आत्मा तुम्हारे रूप की तरह विशाल है। मेरे भाव की तन्मयता तुम चाहो तो समझ सकती हो........"

तारा से अधिक जागा न गया। वहीं जमीन पर लुढ़ककर सो गई।

## [ २६ ]

'आइडियल' मिल का 'लाकआउट' टूटे दो हफ्ते हो गए थे। उत्तरी भारत की सब से बड़ी मिलों में वह प्रमुख मानी जाती थी और उसके प्रभावशाली मालिकों ने जाबरों और श्रमसंयोजक दलालों की सहायता से सैकड़ों मजदूर बाहर के छोटे छोटे शहरों और देहातों से बुलवा लिए थे। उनके रहने और खाने पीने का मालिकों की ओर से विशेष प्रबन्ध किया गया था। कानपूर के हड़ताली मजदूरों के संपर्क से उन्हें हर प्रकार बचाया जाता था। बन्द मोटरलारियों में उन्हें मिल के भीतर लाया जाता और शाम को बन्द लारियों में ही उनके सम्मिलित डेरे पर पहुँचा दिया जाता। उनमें अधिकाँश गाँवों के अशिक्षित नवयुवक और अर्धवयस्क प्रौढ़ थे जो देहातों में खाते पीते किसानों के खेतों पर मजदूरी करते थे और अब शहर में अधिक मजदूरी पाने के लोभ में चले आए थे। सुबह सात बजे से ही मिल का फाटक खुल जाता था और मजदूरों की लारियों का आना जाना शुरू हो जाता था। फाटक के बाहर दूर तक हड़ताली मजदूरों की जमातें हँसिया-हथौड़ा-युक्त लाल झंडे हाथों में लिए खड़ी रहती थीं और आन्दोलक नारे लगाया करती थीं। पुलिस का पूरा इन्तजाम रहता था। लारी के सामने मजदूरों का झुन्ड इकट्ठा होते ही उसे बलपूर्वक तितर बितर कर दिया जाता था। बीसों बार लाठी-चार्ज हुआ था—मजदूरों को गहरी चोटें लगी थीं। हड़ताली मजदूर एक बार फिर 'आइडियल' मिल का चलना बन्द कर देना चाहते थे। पर जाबरों की धूर्तता और पुलिस के बलप्रदर्शन के सामने उनकी चल न पाती थी। मिल इतनी बड़ी थी कि आँशिक

काम ही बाहरी मजदूरों द्वारा हो पाता था और मालिकों को अब भी भारी नुकसान हो रहा था पर इस मिल का चालू रहना ही मजदूर-सभा के लिए खुली चुनौती थी। मुश्किल यह थी कि इन नए मजदूरों के बीच हड़ताली नेताओं को धँसने भी न दिया जाता था। एक बड़ी इमारत में फिलहाल उन्हें ठहराया गया था जहाँ मिल-मालिकों के आदमियों और पुलिस के जवानों का जबर्दस्त पहरा रहता था। मजदूर नेता कठिन से कठिन चेष्टा करने पर भी उसके अंदर न धँसने पाते थे। भीतर ही भीतर उनका खून खौलकर रह जाता था।

'आइडियल' मिल के फाटक पर सुबह होते होते तारा, मोहन, श्रीमती मेहरा, श्रीमती खन्ना, ज्ञानेश्वर, बाक़र, हनीफ़ आदि मजदूर कार्यकर्ता पहुँच गये थे और उनके क्रान्तिकारी नारों से मिल के बाहर का रक़बा गूँज रहा था। फाटक खुलने का समय होते होते पुलिस भी आ गई और वातावरण में तनातनी के चिन्ह दिखाई पड़ने लगे। पहली लारी आई उस समय थोड़े से हड़ताली मजदूर ही आ पाए थे—केवल उनकी सभा के कार्यकर्ता वहाँ मौजूद थे। जो थे वे लारी के सामने गोल बनाकर खड़े हो गये। पूरी गति से आती हुई लारी रुक गई और ऊँची टर्किश टोपी लगाए पठान ड्राइवर ने कड़क कर कहा—"सामने से हट जाओ!"

"हम नहीं हटेंगे"—हनीफ़ ने शान्त किन्तु दृढ़ स्वर से कहा।

ड्राइवर के अगल बगल बैठे जाबरों ने दोहराया—"आप लोग सामने से हट जाइए। आपको हमारी लारी के सामने गोल बनाकर खड़े होने का कोई मजाज़ नहीं। कोई वाक़या हो गया तो जिम्मेदारी आप पर होगी।"

मोहन ने आगे आकर कहा—"जिम्मेदारी हमारी नहीं उन बेरहम मालिकों की है जो हमारा खून चूसते हैं। वे हमारी शर्तें मान लेते तो इस सब की नौबत न आती। हम नहीं हटेंगे।"

पुलिस इन्सपेक्टर और कान्सटेबिल वहाँ आ गये। इन्स-पेक्टर ने भीड़ को चीरते हुए लारी के इन्जन के पास आकर कहा—

"क्या बात है ? कौन झगड़ा कर रहा है ?"

पुलिस के जवानों ने लाठियाँ सँभालते हुए कहा—"तुम लोग हट जाओ—रास्ते में इस तरह भीड़ न लगाओ !"

मोहन ने कहा—"हम लारी फाटक के अन्दर न जाने देंगे। हमारी लाशों को रौंदकर लारी भीतर जायगी। हमारी जिन्दगी और मौत का सवाल है। हम मरकर भी फ़तह हासिल करेंगे।"

इन्सपेक्टर ने स्वर को यथासंभव नरम बनाते हुए कहा—"आप लारी के आगे गिरोह बनाकर खड़े नहीं हो सकते। आपको हटना पड़ेगा।"

ज्ञानेश्वर और तारा ने एक साथ कहा—"आप हमें अपनी जान देने से नहीं रोक सकते। हम लारी के आगे लेटकर सत्याग्रह करेंगे।"

लारी का इन्जन भक् भक् कर रहा था। हड़ताली मजदूरों का दल एक एक दो दो कर इकट्ठा हो आया था। जाँनिसार नाम के एक कद्दावर मजदूर ने जो अब आधा पेट खाते खाते सचमुच आधा रह गया था पीछे से चिल्लाकर कहा—"तोड़ दो इन्जिन को—देखें कैसे लारी आगे बढ़ती है! हम लारी फूँक देंगे।"

दूसरा मजदूर पीछे से बोला—"हम लारी के टुकड़े टुकड़े कर देंगे।"

मोहन ने पीछे घूमकर कहा—"नहीं! हमारा रास्ता यह नहीं है। खबरदार! कोई लारी पर हाथ न लगाये। हिंसा नहीं अहिंसा हमारी तलवार है। आप लोग खामोश रहें। हमारी अक्ल और कूवत पर यकीन रक्खें। हम यहाँ मारने नहीं मरने आए हैं।"

बाक़र ने आवाज़ लगाई—"इन्कलाब जिन्दाबाद"

तारा ने आवेशपूर्ण स्वर में कहा—"लाल झंडे की जय"

पुलिस इन्सपेक्टर ने कहा—"आप दो मिनट के अन्दर

नहीं हटते तो मैं इन जवानों को हुक्म दूँगा। मैं लाठीचार्ज नहीं करना चाहता—हमें जबर्दस्ती आपको हटाना पड़ेगा।"

वही हुआ। पुलिस के पूरे दल ने आकर निशस्त्र और अहिंसक मजदूरों और उनके नेताओं को जो जमीन पर अड़कर बैठ गए थे या पास घेरकर खड़े थे बलपूर्वक घसीट घसीटकर किनारे हटा दिया। ड्राइवर विजय के गर्व में अपनी खड़ी मूँछ पर ताव देने लगा। दोनों जाबर जो ऊबी हुई भोंड़ी मुद्रा से बीड़ी पी रहे थे प्रसन्न हो उठे। लारी भक् भक् करती फाटक के भीतर चली गई।

मोहन ने तारा से कहा—"मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता। मजदूरों का इस तरह भीतर पहुँच जाना मुझे सहन नहीं। मुझे प्राणों का मोह नहीं। दूसरी लारी आने दो—मैं ऐन वख्त पर कूदकर आगे लेट जाऊँगा।"

तारा का सर्वाङ्ग अब तक रात के मोहन के नशीले स्पर्श से पुलकित हो रहा था। आँखों में जागरण और उत्तेजना—निग्रह और खुमारी की लाली थी। दोनों ३-४ घंटे से अधिक न सो पाए थे। बोली—"और मैं! मैं तुम्हारे बगल में लेट जाऊँगी! तुम समझते हो मैं पीछे हटूँगी!"

मोहन ने कहा—"यह सामूहिक नहीं व्यक्तिगत सत्याग्रह का अवसर है। पुलिस समूह को लारी के आगे खड़े होने से रोक सकती है पर व्यक्ति यदि सड़क पर लेट जाय तो उसे नहीं उठा सकती।

दूसरी ओर से तीन-चार मजदूर उत्तेजित अवस्था में चले आ रहे थे। रघुवीर ने मोहन से कहा—"भैया! आप व्यर्थ हम लोगों को रोकते हैं। आने दीजिए लारी को इस बार—हम उसके टुकड़े टुकड़े कर देंगे। जेल ही तो होगी—यहाँ से फिर भी अच्छे रहेंगे।"

"नहीं रघुवीर"—जयनाथ ने जो अब आ गए थे कठोर स्वर से कहा—"यह रास्ता गलत है। तुम क्यों भूल जाते हो हमारा देश पराधीन है। गुलाम देश में हिंसा करना दमन और सरकारी अत्याचार को निमंत्रण देना है। हम सत्याग्रह करेंगे और विजयी होंगे। तुम लोग

तनिक भी उत्तेजित हुए तो बना बनाया खेल बिगड़ जायगा।"

"ऐसी बातें कह कहकर ही आप लोगो ने हमें चौपट कर रखा है। आप लोगों के हुक्म के खिलाफ़ जाने को दिल नहीं करता और आपकी बात मानकर हम बरबाद होते जाते हैं"—जाँनिसार ने बफ़रते हुए कहा।

मोहन उसके कन्धे पर हाथ रख उसे दूसरी ओर ले जाकर समझाने लगा? जयनाथ रघुबीर को शान्त कर रहा था।

रघुबीर ने कहा—"तुम चाहे जो कहो अबकी बार मैं एक ईंटा घसीटकर ड्राइवर साले को ऐसा मारूँगा कि उसकी आँखों का सारा खून बहकर उसकी तनी मूँछ पर गिर जायगा। मैंने बराबर फाटक पर धरना दिया है। जाबर, बुनाई मास्टर, फिटर सबसे मेरी लड़ाई हुई पर और किसी से मुझे इतनी नफ़रत नहीं होती। मैं उसे ज़रूर मारूँगा भैया!"

जयनाथ ने कहा—"हरगिज़ नहीं। यह तुम्हारा खाम ख्याल है। वह बेचारा क्या करे? हमारी तुम्हारी तरह वह भी तो अपनी रोटियों का गुलाम है। और तब मालिकों की सम्पत्ति पर आनेवाली आशंका और शान्तिरक्षा के लिए तैनात पुलिस क्या तुम्हें आसानी से छोड़ देगी। एक एक बूँद खून के लिए तुम्हें घड़ों खून देना होगा। ऐसी नादानी मत करना। हमारी हड़ताल को डेढ़ महीने से ऊपर हो गए। अब तक पूरे शहर में कहीं भी पुलिस को गोली चलाने की उत्तेजना नहीं मिली। तुम क्या हड़ताल की सफेद चादर पर धब्बा लगाओगे? नहीं नहीं! ऐसी बात भी न मन लाना में!

दूसरी लारी की आवाज सुनाई दी। मजदूरों का दल जो अब बहुत बड़ा हो गया था (इसी मिल के हड़ताली मजदूरों की संख्या हजारों थी) फिर फाटक के सामने सड़क पर इकट्ठा होने लगा। मोहन ने पास आकर कहा—"इस तरह इकट्ठा होने और लाठी खाकर तितर बितर होजाने से लाभ नहीं। तुम लोग सब बीच से हट

जाओ—मैं सड़क पर लेटूँगा—लारी मेरे सीने को चीरकर जायगी······।”

"हम सब लेटेंगे"—मोहन के साथियों ने एक स्वर से कहा······।

"हम सब लेटेंगे"—मजदूरों ने मेघगर्जना के हड़कम्पी स्वर से कहा······।

"सब के लेटने की जरूरत नहीं—पहले मुझे लेटने दो।"

मजदूर और साथी कार्यकर्ता नहीं माने। मोहन जमीन पर लेट गया पर सैकड़ों मजदूर और कार्यकर्ता उसे चारो ओर से घेर सड़क रोककर खड़े हो गये। लारी आकर फिर रुक गई।

शहर का अँगरेज़ पुलिसकप्तान घटनास्थल पर आगया था। पुलिस का दारोगा अब कुछ बोल न सकता था। पुलिस भी अधिक संख्या में आ गई थी। जुलूस की शक्ल में खड़ा मजदूर समुदाय प्रतिक्षण बढ़ता जाता था। दिन अधिक चढ़ आया था और शान्तिकाल में आठ बजे मिल के अन्दर पहुँच जानेवाले मजदूर फाटक पर आते जाते थे।

पुलिसकप्तान ने भीड़ को तितर बितर हो जाने की आज्ञा दी। दारोगा मुस्तैदी से कान्सटेबिलों को लाठीचार्ज के लिए तैयार करने लगा। दूसरा कोई उपाय मजदूरों को हटाने का न था। मोहन बीचोंबीच शान्त भाव से पड़ा था।

इस बार लाठीचार्ज अधिक ईमानदारी और उत्साह के साथ शुरू हुआ। अँगरेज़ अफसर के सामने आते ही देसी पुलिस के कर्तव्यपालन का पारा ऊँचा चढ़ता है। अहिन्सा को अपना हथियार मानने वाले काँग्रेसजनों के प्रभाव में जागे और संगठित हुए मजदूर लाठियों की चोट खाकर भी अविजित रहने का दृढ़ संकल्प लेकर बैठ गये। कुछ लोगों ने जो मिलमालिक के दलाल थे और झगड़ा बढ़ाना चाहते थे पुलिस और अफ़सरों को गालियाँ देना शुरू किया। मानसिक हिंसा के संकेत शुरू हो गए। मजदूरों का मजमा बहुत बड़ा हो गया था। चारो ओर से घिरे मजदूर कार्यकर्ता और नेता ठीक तरह से स्थिति का आभास न पा रहे थे। जिधर देखो उधर सिर ही सिर दिखाई पड़ते थे।

......सहसा उसी कोने से दो चार ईंटे आए। लारी के सामने का मोटा शीशा चूर चूर हो गया—काँच के टुकड़े ड्राइवर और आगे बैठे जावरों के मुँह पर पड़े पर उन्हें अधिक चोट न आई। जब तक मजदूर नेता खड़े हो कुछ कहने के लिए बढ़ें तब तक ईंट और पत्थरों की संख्या बढ़ गई। दो चार पुलिसवालों पर भी ईंटे पड़े। मिल-मालिक के एक 'खास' आदमी ने ताककर एक बड़ा ईंट का टुकड़ा फेंका जो पुलिस कप्तान के सिर का टोप उड़ा लेगया। दूसरा ईंटा तत्काल उसके सिर पर आकर लगा। उसका गुस्से से उबलता हुआ सिर चोट से भन्ना गया। उसने उत्तेजित हो हथियारबन्द पुलिस को गोली चलाने का हुक्म दे दिया........

मोहन और जयनाथ स्थिति की भीषणता समझ गए। गोलियों की आवाज होते ही वे भीड़ को चीरते हुए पुलिसकप्तान से बात करने के लिए आगे बढ़े। गोली चलने पर भीड़ के एक कोने में भगदड़ शुरू हो गई। भूखों मरने पर भी इन्सान से प्राण का मोह नहीं छूटता। लाठीचार्ज तक गनीमत था—उसमें जान का खतरा न था। चोट की सम्भावना और मृत्यु की आशंका में अन्तर होता है। मोहन और जयनाथ ने यह सब देखा। तारा और मिसेज खन्ना हनीफ़ और ज्ञानेश्वर ने हाथ के लाल झंडे ऊपर उठा भीड़ को जमे रहने के लिए ललकारा........

जयनाथ और मोहन भीड़ से बाहर निकलकर पुलिस की बन्दूकों के सामने आगए जिनकी लाइनों के पीछे कप्तान रिवाल्वर हाथ में लिए खड़ा क्रोध से होठ चबा रहा था। भागनेवालों के धक्कों से दोनों जख्मी होते होते बचे। पुलिसकप्तान आज पहले दिन हड़ताली 'मिल-एरिया' में आया था। वह कांग्रेस आंदोलन में कई बार जनता के गैरकानूनी करार दिए जाने वाले जुलूस पर गोली चलवा चुका था। उसकी दृष्टि में कांग्रेस के सत्याग्रहियों के जुलूस की अपेक्षा यह 'बोल-शेविकों' का मज़मा ज्यादा खतरनाक था। वे धर्मयुद्ध करते थे पर ये...
......ये कमबख्त ब्रिटिशसाम्राज्य की धुरी पूँजीशाही का ही नाश

चाहते थे। अँगरेज नौकरशाह को पूँजीवाद पर कोई खतरा बरदाश्त नहीं होता। महाजनी शोषण—पूँजीवादी जुल्म के गढ़देश की परम्परा उसकी प्रत्येक सुसन्तान को विरासत में मिलती है.......

गोलियों की बौछार हुई। मोहन और जयनाथ दो मजदूरों के साथ जो इधर उधर कुछ फासले पर थे कटे रूख की तरह गिर पड़े। भागने-वालों को मरे और घायल साथियों की ओर देखने का अवकाश न था। भीड़ को भागते देख तारा के मन में उबाल आगया। उसने मोहन और जयनाथ को सीने पर गोली खाकर गिरते देखा। गरम तन्दूर की तरह अपने आप में वह भन्नाने लगी.............

लारी से उतरकर ड्राइवर और जाबर मिल के फाटक के भीतर घुस गए थे। गोली चलना शुरू होते ही मिल के भीतर के मजदूर अपना काम छोड़ फाटक के पास आकर इकट्ठ हो गए थे। लारी के भीतर बैठे मजदूर मन ही मन दहल रहे थे पर नीचे न उतरते थे। गोली चलना बन्द होने पर वे उतर आए। घटनास्थल पर चार लाशें पड़ी थीं जिन्हें घेरकर दस बारह शोक की मूर्तियाँ सन्नाटे का स्यापा कर रही थीं। विराट मजदूर समुदाय इधर-उधर भागकर तितर बितर हो चुका था पर उसके स्थान पर मिल और लारी के भीतर के सारे मजदूर आ जुटे थे.............

जाबरों ने आकर नए मजदूरों को भीतर काम पर जाने के लिए कहा—ड्राइवर लारी लेकर फिर अपने काम से चला गया। दोनों जाबर इस बार वहीं रह गए। पुलिस कप्तान कार पर बैठ दूसरी मिल की तरफ चल दिया। उसके पीछे पुलिस की अतिरिक्त लारी चल पड़ी।

चारों लाशें विभिन्न स्थितियों में पड़ी थीं। दोनों मजदूर मुँह के बल औंधे पड़े अपने ही रुधिर का चुम्बन कर रहे थे। मोहन का मुँह ऊपर की ओर था। जयनाथ पीठ के बल घसिटता कुछ दूर चला गया था—अधिक नहीं—पन्द्रह बीस गज.........

तारा ने मृत मोहन का सिर उठाकर अपनी जाँघ पर रख लिया। श्रीमती मेहरा जयनाथ का सिर गोद में लेकर बैठ गईं। जो

मजदूर गोली चलते ही तितर बितर हो गए थे वे एक एक कर लौटने लगे। काम पर जानेवाले मजदूरों की लारी उस समय वहाँ न थी इसलिए भीड़ लगाने का प्रश्न न था। दोनों मजदूरों का मुँह सीधा कर रघुबीर और जाँनिसार ने प्यार के साथ अपनी गोद में रख लिया और सजल नयन उनके माथे पर हाथ फेरने लगे ·······

बिजली की तरह खबर शहर में फैल गई। सामने से दो लारियाँ आ रही थीं जो भीतर बैठे मजदूरों के आग्रह पर आनेवाले जाबरों ने घटनास्थल से दूर—काफी पीछे रुकवा दीं। मजदूर उतरकर फाटक की ओर चले पर अपने साथियों को हड़ताली मजदूरों में मिला देख वहीं रुक गये। जाबरों के कहने सुनने समझाने बुझाने—धमकाने तक का असर न हुआ·········

लाशों से खून बराबर बह रहा था। तारा, श्रीमती मेहरा, रघुबीर और जाँनिसार के कपड़े खून से तर थे। तारा की आँखों से रुलाई उमड़ चली पर वह बहादुरी से अपने को रोक रही थी। रात की सारी बातें उसकी स्मृति के पीछे पीछे चल रही थीं। मरने के पहले क्या इन्सान की जीवन भर की संचित तृष्णा एकबारगी उभर आती है! तारा को मोहन की मृत्यु पर अब भी विश्वास न होता था। रह रहकर वह उसमें जीवन का लक्षण पाने की चेष्टा करती थी पर···········रह रहकर दिल और नाड़ी टटोलती थी पर उष्ण रक्त के बहते हुए झरना-प्रवाह में उनका कहीं पता न चलता था। मोहन की आँखें मरी न थीं। उनके भीतर का उदार निर्भय आलोक एक अलौकिक अतिमानवी परिव्याप्ति लेकर········तारा को लगा जैसे वह मोहन के मुख की सारी म्लान माधुरी आज पी जायगी। रात की एक एक बात—एक एक साँस—मोहन की एक एक अनुगति उसे याद आ रही थी। यदि आज तुम्हें चले जाना था तो क्यों मेरे अंगारों के देश में रात भर जलते और आग देते रहे! मेरी तृष्णा की मशाल को तोड़कर ······कुचलकर······मटियामेट कर चले गए·········

तारा ने मोहन के रक्त की रेखा में अपनी ऊँगली सिक्त कर उसके

माथे पर तिलक लगा दिया। मस्तक की प्रशान्ति में सिमटी इस लालिमा में जीवन के रंग का उन्मत्त आलोक फूटने लगा। तारा को लगा इस आलोक की प्रत्येक किरण आग फेंक रही है—ऊर्ध्वमुख—निष्कंप! रात को मोहन ने तारा का अनावृत वक्ष देखने की इच्छा प्रकट की थी! क्यों न तारा ने उसे अपनी असम्वृता सुषमा देखने दी? तारा को अब लगता है वह मोहन का चेहरा—उसका यौवन के अहंकार से मंडित मुखड़ा उठाकर अपनी छाती के बीच की घाटी में भरले········हाय! तारा क्या करे! कैसे उसके वैफल्य, कुन्ठा, निराशा और रुदनशील खन्डन से भरे हृदय को शान्ति मिलेगी! पर······पर···पर······क्या तारा जानती थी! क्या कोई जानता था!! क्या ममता जानती थी!!! ममता···ममता····ममता······तारा को लगा जैसे ममता संसार में नहीं है। मोहन अपने साथ उसे भी लेता गया है और निरन्तर जलने वाली ज्वाला—ज्वालामुखी के लावा की आन्धी······ जेठ की दोपहर के दहकते सूरज की किरणों की माला जैसी तारा जीवन भर इस दुसह ज्वाला में जलने को रह गई है·······

शहर के काँग्रेस कार्यकर्ता, मजदूर और जनता धीरे धीरे एकत्र होने लगी। पर अपने दिल से उठते हुए धुएँ से अंधी और जलहीन आँखें बन्द किये नीले रंग की पथरीली धूमिल साँझ जैसी तारा 'लाल' मोहन को गोद में लिए बैठी है। ज्यों ज्यों आनेवालों की पदचाप और सवारियों की विडम्बनापूर्ण हलचल धुँधले धुँधले निकट आती है त्यों त्यों तारा भीतर भीतर एक ठंडी, बोझिल किन्तु तेजाब की तरह चुभनेवाली अनुभूति से विह्वल होती रहती है। उसकी आँखें दुख से झेंप गई हैं—अंगों में पक्षाघात के विष से उत्पन्न जड़ता और निष्क्रियता आकारहीन प्रेत की तरह फैलती आती है—जिस पर उसके उद्भ्रांत यौवन का कफ़न एक आन्तरिक शिथिलता को लिपटाए पड़ा है·········इसके बाद कब क्या हुआ—कैसे इन शहीदों की अर्थी सजाई गई और तुमुल जयघोष के बीच चारों लाशें 'आइडियल मिल' के सामने से उठकर पुलिस के संरक्षण में शहर की ओर—

मजदूरसभा के दफ्तर की दिशा में चल पड़ों इसका तारा को होश नहीं। वह मौन है—जीवन और भविष्य की सारी जिज्ञासायें—सारे प्रश्न इस मौन में लीन हैं। उसके मन की संकल्पशक्ति—ज्ञानपेशियों की प्रेरणा-वन्हि—क्रान्तिकारी उद्योगों से भरी उसकी कौंधती बिजली सी आत्मा—सब इस बर्फीले आघात की द्रवित मनोवेदना में निस्पन्द पड़ी हैं। जुलूस आगे बढ़ता है—जय जयकार होती है—गगनभेदी संघर्षसूचक नारों के बीच तारा आगे बढ़ती हुई श्रीमती मेहरा के कंधे पर हाथ रक्खे स्वप्नविजड़ित—पराजित सी आगे बढ़ती जाती है—उसे लग रहा है वह अपनी श्रद्धा और उत्कट उत्ताप से प्रतिक्षण नीचे धँसती धँसती आत्मा की गहराई में दफ़न होती जाती है। उसकी रुधिररंजित चेतना उसकी इच्छाशक्ति को—उस अपदार्थ मानसिक छाया को जो विश्वास की परिपूर्णता, साहस, उदारता और दृढ़ता में मृत्यु को वर्षा के मेघजल से धुले प्रत्यूष जैसा रचनात्मक और स्निग्ध—सुखद और रंजक बना देती है—इस समय मोहन की लाल कनेरों जैसे बड़े बड़े रक्त के धब्बों से ढकी देह पर लपेटती चली आती है! हर चालू मिल में जाबरों द्वारा लाया गया एक एक मजदूर बाहर निकलकर बलपूर्वक बाहर निकलकर अपने उन चार साथियों की अन्तिम विदाई का साक्ष्य दे रहा था जो जीवन की यथार्थता के सामने मृत्यु को कोई महत्व न देते थे—जो भविष्य के विश्वासी मद से उन्मत्त उनकी स्मृतियों और दिल की धड़कनों में समाजवादी क्रान्ति के पीछे पीछे चल रहे थे ·······

मजदूरसभा के दफ्तर के सामने अपार भीड़ थी। लाल और तिरंगे झंडों से ढके मोहन, जयनाथ और दोनों मजदूरों के शरीरों को हजारों स्थिर और दीप्त आँखें देख रही थीं। बलिदान के इस अभिनव मद में सप्ताहों के भूखे मजदूर पेट की जलन और आतों की अकुलाहट—भूख से तड़पते बच्चों की बेचैनी और बीबियों की अवसन्न मुद्रायें—सब भूल चुके थे। आज उनके सामने केवल शहादत के इन चार अगारों का—जो मरकर भी दहकते ईंधन की तरह समस्त वाता-

वरण में लोहित उष्णता का संचार कर रहे थे—बलिदान की चार लुकाठियों का—जीवनदान था—जो कुछ घंटे पहले उन्हीं की तरह हँसते बोलते रोते गाते थे—उठते बैठते अपने अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्ष और आमहड़ताल की उपादेयता उन्हें समझाया करते थे ···आज ये कमकर उन्मत्त थे—जीवन और मृत्यु के संकीर्ण वादविवाद के ऊपर उठ गए थे। उन्हें लगता था यह समुद्र की तरह उमड़ा विराट जनसमूह—चढ़ती धूप सा यह मानवता का महानद उनका है·······एक एक पुरुष—एक एक स्त्री—बच्चा बच्चा उनके साथ है······उनकी माँगों को अपने कठोर स्वीकार के संकल्प से अपरिमेय बल प्रदान कर रहा है·········

"हम इसका बदला लेंगे" हजारों कंठों को कँपाती हुई मानव-हुंकार······दुख के श्वासावरोध से अवरुद्ध गलों से निकलते हुए जीवनमंत्र ने कहा·····

"हम सरकार का—उस ज़ालिम हुकूमत का नाश हो जाने पर दम लेगें जो हमारे भाइयों को गोलियों से भूनती फिरती हैं·········" मजदूरों के दूसरे दल से ललकार उठी जिसमें भोर की पहली किरणों जैसा आलोकित विश्वास था ······

"हम सरमायादारी की मगरूर इमारत को फ़ना कर देंगे······" जाँनिसार ने भीगी आँख·····निर्भय गले से कहा······मजदूरों में सबसे ज्यादा वह रोया था अपने साथियों की गौरवशालिनी मृत्यु पर··

"इन्कलाब जिन्दाबाद····· "

"लाल झंडे की जय......"

"तिरंगे झंडे की जय······।"

"कामरेड मोहन की जय·····"

"कामरेड जयनाथ जिन्दाबाद......"

"सरमायादारी का नाश हो······"

···चारो ओर हवा में ये स्वर उड़ते फिरते थे। तारा बिना कुछ बोले अपनी खोई मनःस्थिति को भरपूर अपनाती हुई ऊपर जाकर आफिस के

कमरे में पड़ी थी। जुलूस जब वहाँ से आगे बढ़ गया तब उसे होश आया। नंगे पैर पीछे भागते भागते वह एक फर्लाङ्ग आगे जाकर भीड़ में घुस गई ........

चलते गए—चलते गए—जैसे इस पथ का अन्त न होगा...... अज्ञात महाशून्य की यात्रा की तरह यह यात्रा भी असीम और अनन्त थी......तारा ने चलते चलते देखा सामने खिड़की पर खड़ी ममता उद्-ग्रीव दृष्टि से जुलूस देख रही थी। तारा की आत्मा को नया बल मिला —जैसे नई आहुति से होमाग्नि दीप्त हो उठे। उसका दिल असाधारण वेग से धक् धक् करने लगा—आवेश की अधिकता से वह कठिनता-पूर्वक रुक रुककर साँस लेती थी—उसकी मुट्ठियाँ कसकर बँधी थीं—सम्पूर्ण सत्ता जैसे लाल स्फटिक...... तीव्र विरोध और प्रहार थी ......उसके रोम रोम से तत्काल जला देनेवाले संक्रामक रोग के कीटाणु लहरा रहे थे...... उसे ममता को सँभालना है—जैसे मरते समय एक शब्द बिना कहे और सुने मोहन की खुली आँखों से निकलते तेज के पीछे सिमटी छाया के साथ सटी कातरता पुकार पुकारकर आदेश दे रही थी—ममता को सँभालना........ममता को सँभालना...तारा ने अर्धचेतन अवस्था में ममता के दरवाजे की ओर बढ़ते हुए ऊपर देखा—संगमरमर के एक सुन्दर स्वप्न सी ममता खिड़की के सामने वैसी ही खड़ी थी—चौखटे के साथ सटकर उसने दोनों बाहें बाहर फैला दी थीं।.........सहसा उसके मृदु, सौम्य और विश्रान्तिपूर्ण नेत्र मर्मभेदी हो उठे......सुनील आकाश सी नीली आँखों से भयानक तारे टूट चले......ममता को मोहन की अर्थी पहचानने में देर न लगी......

हाँफती हाँफती तारा ने ऊपर पहुँच खिड़की के पास खड़ी ममता को जाकर कृतज्ञ आशीर्वाद की तरह जकड़ लिया.....सामने से धूप का चढ़ता आलोक दोनों को कुन्दन की तरह मढ़ रहा था........

ममता ने घूमकर देखा—तारा विक्षिप्त की तरह—सिर से पैर तक एक रन्ध्रहीन वेदना से नहाई हुई पीछे खड़ी है......ममता ने फूट फूट-

कर रोते हुए कहा—"भैया—भैया—मेरे मोहन भैया ! मेरे देवता—स्वामी ! ·······

············कुछ नहीं बहन ! कर्म की वेदी पर एक वीर की तरह उन्होंने अपने जयी प्राण दिए······यह रोने की नहीं आनन्दित होने की घड़ी है ···उनकी मृत्यु पर फरिश्ते हसद करेंगे·····जहाँ जहाँ उनके खून के क़तरे गिरे हैं वहाँ आकर सूरज ··· चाँद·· सितारे सिज़दा करेंगे······तुम्हारा जीवन धन्य है बहन···· तुम उस त्यागी महाप्राण की अखन्ड स्नेहपात्री हो······ ममता···· मेरी बहन ! शोक न करो······जिनकी मृत्यु पर इतिहास हर्ष मनाता है उनके लिए हमारा रोना गुनाह है ! ····

···· मैं लुट गई ! हाय ! मेरे भैया चले गए चले गए······ चले गए··· अब कहाँ देखने को मिलेंगे···पूरे जन्म को चले गये ·····मैं कहीं की न रही···· मेरा सोहाग मिट गया····· मेरी आत्मा कट गई······मेरा जीवन विधवा हो गया !······ ··

···· मोहन की महायात्रा मानवता की यात्रा का परवर्ती जीवन-प्रवाह है—अविच्छिन्न अप्रगति है ·····वह प्रगतिशील मानवता के अशेष अखन्ड की ही परिणति है······मत रोओ ममता ·····रोने में सार नहीं ······आज कानपूर के मजदूरों और युगों से शोषक शाषकों से लड़ती सर्वहारा का मस्तक ऊँचा हुआ है······अभी बड़ा लम्बा रास्ता पार करना है बहन ! ····न जाने कितने ऐसे साथी बलिकुन्ड में झोकने होंगे ·······

"अन्त समय उन्हें देख न पाई······बात भी न कर पाई······कहाँ हो भगवान······तुम कहाँ हो······क्या कर रहे हो स्वामी····· मैं यहाँ अटारी पर बैठी रही······मेरे भैया पुलिस की गोलियों से भून दिए गए······मैं कहाँ जाऊँ······किसे अपना काला मुँह दिखाऊँ······ भैया······भैया . ...

शोक में उन्मत्त ममता ने मस्तक का सिन्दूर पोंछ डाला—हाथ की चूड़ियाँ एक एक कर तोड़ने लगी··· ·····

तारा ने बलपूर्वक उसका हाथ पकड़ लिया···विश्वास चारपाई पर

बैठाती हुई बोली—"अधीर न हो बहन! यह सब क्या कर रही हो ......इन चूड़ियों ने क्या बिगाड़ा है......"

"मैं विधवा हो गई······यह सब अब न पहनूँगी······पहनूँगी तो······पागल हो जाऊँगी······"

"तुम चिर सधवा हो बहन······तुम्हारा सोहाग अजर अमर है ········देश का इतिहास तुम्हारे सोहाग की अविरलता का चिर साक्षी बनकर रहेगा······मजदूरों की लड़ाई का यह गौरवशाली संघर्ष युग युग तक तुम्हें सधवा बतायेगा······तुम्हारे भैया—तुम्हारे देवता—तुम्हारे तन, मन, जीवन के स्वामी मरे नहीं······अमर हो गए हैं······अमरों के लोक को गए हैं······उनकी याद में दुख मनाकर उनकी महान आत्मा को कष्ट न दो······"

जुलूस ममता के मकान के सामने से आगे बढ़ चुका था। हड़-ताली मजदूर और शोकमग्न जनता के नारों की प्रतिध्वनियाँ रह रहकर आती थीं जो तारा को कर्तव्यपालन का आह्वान दे जाती थीं······ जुलूस पचास साठ गज आगे चला गया था······तारा और ममता नंगे पैर नंगे सिर पीछे पीछे दौड़ पड़ीं······रास्ते के दोनों ओर की सड़कें, पटरियाँ और दूकानें ठसाठस भरी थीं। भीड़ को चीरना आसान न था······ममता ने रोकर कहा—"क्या मैं भैया के पैर का अन्तिम चुम्बन भी न कर पाऊँगी······"

"चली चलो बहन······आगे मौका मिलेगा······लाख दो लाख के जनसमुदाय को चीरना आसान भी तो नहीं······कहते कहते तारा घटना का वृत्तान्त सुनाने लगी······उसका एक हाथ ममता की कमर में था—दूसरे से वह आँख में उमड़ती जलधार के छलकते कण पोंछती जाती थी······ममता फिर भयानक स्वर से क्रन्दन करने लगी ······जैसे कोई जीवित समाधि सड़क पर विलाप करती जा रही हो······

तारा ने खामोश हो ममता के आँसू आँचल से पोंछ लिए······रास्ते भर वे बहते गए········तारा पोंछती गई······पर तारा के आँसू··

...बहनेवाले......न बहनेवाले......कभी कभी कोरों पर लुढ़क आनेवाले पर अधिकतर छाती की भाफ़ में ही सूख जाने वाले...... उन्हें केवल इतिहास और स्वतन्त्रता की शक्तियाँ पोंछ सकती थीं...... कब......कौन जाने......

श्मसान पहुँचने में घंटों लग गए...\...जुलूस बराबर बढ़ता गया था और लाखों पैरों से रौंदे गए रेतीले नदीतट पर झाऊ के उदास मर्मर और धूल के बगूले उड़ रहे थे......मार्ग भर ममता मोहन की अर्थी के पास पहुँचने के लिए फड़फड़ाती रही......तारा उसे बगल से चिपटाये उसकी विक्षिप्त चेष्टाओं को सँभालती आई......मैं तुम्हारे साथ चलूँगी......मुझे यहाँ न छोड़ो......कहते कहते ममता जुलूस के रुकते ही आँधी की तरह बढ़ती... धक्के देती......धक्के खाती आकर मोहन की अर्थी के पैर के पास बेहोश हो गई......उसके दोनों हाथ मोहन के पैरों को न पा बाँस के टुकड़ों को ही बलपूर्वक पकड़े थे......उत्तेजना और दुख से विस्फारित नेत्र बन्द हो गए थे...... तारा पास बैठी उसे होश में लाने का यत्न कर रही थी......श्रीमती मेहरा ने ममता के मुँह पर पानी के छींटे देकर पूँछा—"कौन है यह......मैंने कभी देखा नहीं......मोहन की बहन है......

"हाँ भाभी......ताराने भीगे गले से कहा...बेचारी अन्तिम समय भी होश में न रही...लगता है घन्टों इसकी बेहोशी न टूटेगी......

चिताओं के आधे जलते जलते ममता होश में आ गई...... तारा और श्रीमती मेहरा को जोर से झटका देकर मोहन की चिता की ओर बढ़ी......उन्होंने बलपूर्वक पकड़ लिया... ज्ञानेश्वर और हनीफ़ ने आकर सिक्त स्वर में कहा—"उधर नहीं बहन... उधर नहीं...उधर अब क्या रखा है...इधर चलो जहाँ अखन्ड कर्म है...जहाँ तुम्हें शान्ति और मुक्ति मिलेगी......चिरन्तन प्रेरणा और आग की हुँकार बन-कर हमारे बीच रहो......यहाँ दो मुट्ठी राख के सिवा क्या है......उधर चलो......पीछे......जहाँ रहकर तुम प्रतिक्षण मोहन की ओर अग्रसर होती रहोगी......यहाँ अब मौत की छाया है......

अलग अलग······वहाँ जिन्दगी की धूप है·····चढ़ती हुई······ बढ़ती हुई······सम्मिलित······"

चारो ने मिलकर कुछ क्षणों के लिए उसे चिता के सिरहाने ला खड़ा किया·····आग मोहन की छाती तक जला चुकी थी ···चेहरा अब भी लपटों से कुछ इञ्च दूर भविष्य की ओर अकंपित दृष्टि से देख रहा था·····ममता बीच बीच में बिजली की तरह तड़क उठती थी ··· बादल की तरह मूसलाधार रो पड़ती थी ···बड़ी बड़ी स्वाती जैसी आँखों को क्षोभ से फाड़े डाल रही थी ····

"मुझे छोड़ दो······मुझे छोड़ दो······मुझे जाने दो······मेरा सर्वस्व जल रहा है······शरीर क्यों रह जाय··· ठहर जाओ भैया·····मुझे लेते चलो·····मरने के बाद तुम पहले से निर्मोही हो गए······कहते ममता फिर बेहोश हो लटक गई ···· चारो उसे सँभालते तट की ओर ले चले······

पानी से भीगी गरदन, सिर, छाती और मुँह लेकर ममता चारों के सहारे फिर लौटकर आई तब चितायें बुझ गई थीं। मजदूरों की और जयनाथ—मोहनकी कृश कायाओं को भस्मसात होते अधिक देर न लगी·····ऊपर आकाश में पक्षियों की चक्राकार पाँत उड़ी जा रही थी ······मरघट पर चुने लोग ही शेष थे। विराट जनसमूह धीरे धीरे जा चुका था ····छोड़ दो······मैं यहीं रहूँगी·····उस घर में लौटकर न जाऊँगी·····कहते कहते दो मुट्ठी गर्म राख लेकर ममता ने अपने सिर और चेहरे पर पोत ली······धाड़ मारमार फिर क्रन्दन करने लगी···चिता के चारो ओर घूम घूमकर वह मर्मभेदी विलाप कर रही थी। ज्ञानेश्वर अविनाश और हनीफ़ शोक की इस साकार मूर्ति को—धूलधूसर अनवरत पतवार की रूह इस निष्प्राण खिज़ाँ को देख रहे थे···श्रीमती मेहरा ने बढ़कर ममता का हाथ पकड़ते हुए कहा—"चलो बहन! तुम मेरे साथ चलो····· तुम्हें अपने पुराने घर जाने की जरूरत नहीं········हमारे साथ चलो··· तारा ने तब तक आकर मनुहारभरी मुद्रा से दूसरा हाथ पकड़ लिया······

अविनाश नजदीक आ ममता के लटके जा रहे—पीछे की ओर ऐंठे सिर को कोमलतापूर्वक अपने कंधे पर लेते हुए उसकी काँपती खंडित होकर गिरने को उद्यत देह को सँभालता—अपने क्षोभ के अनवरत आग्नेय तीखेपन को दबाता—गले में गूँजती तरलता से जिसे ममता के दुख की शोधक अलंघ्यता ने असह्य बना दिया था बोला—तुम कहीं जाओगी नहीं······हारोगी नहीं······डरोगी नहीं······काँपोगी नहीं··· गिरोगी नहीं······तुम जीवित रहोगी······केवल जीवित रहोगी······और हम······हम शपथ लेते हैं·····तुम्हारी उल्का सी देह छूकर······तुम्हारे अग्निकीट जैसे एक एक आँसू के नाम पर······हममें से प्रत्येक उसका प्रतीक बनेगा······स्मारक बनेगा······चरण चिन्ह बनकर समय की रेत पर अंकित हो जायगा उठो चलो······रोना कायरता है·····दुर्बलता है······जीवन······अबाध और अजेय जीवन के नाम पर······चलो······इस अनुद्देश्य, भ्रान्ति भटकन को चीर कर······जलती और जलाती······दोनों सिरों पर आग लिए······हमारे बलिदानी रोष में······अपने प्रतिरोध का ईंधन देती हुई······विनाश के तरंगायित आरोह अवरोह सी······

"चलो बहन"—हनीफ़ और ज्ञानेश्वर ने एक एक कंधा पकड़ते हुए कहा—"तुम हमारे सबसे नौजवान शहीद की बहन हो····तुम्हें हम कहीं न जाने देंगे······तुम उस बहादुर साथी की रक्तबीज यादगार बनकर हमारे बीच रहोगी······चलो हमारे आग से सुलगते दिलों में प्रतिहिंसा की धौंकनी बनकर रहो·······हमें तुम्हारी बड़ी जरूरत है······तुम कितनी विशाल आत्मा की वरदानमयी देन हो·····क्या हम जानते नहीं······चलो—तारा—भाभी—अविनाश—चलो सब चलो······